ISSN : 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का
समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल

वर्ष 23 | अंक 2 | दिसम्बर 2025

www.mpissr.org

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

संरक्षक

प्रोफेसर गोपालकृष्ण शर्मा

सम्पादक

प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक

डॉ. आशीष भट्ट

डॉ. सुदीप मिश्र

सलाहकार मण्डल

प्रोफेसर अनिल कुमार वर्मा

समाज एवं राजनीति अध्ययन केन्द्र, कानपुर (उ.प्र.)

प्रोफेसर बदरीनारायण

टाटा सामाजिक विज्ञान संस्थान, मुम्बई (महाराष्ट्र)

प्रोफेसर राम शंकर

पं. एस.एन. शुक्ला विश्वविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

प्रोफेसर संजय लोढ़ा

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर संजीव कुमार शर्मा

चौ. चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उ.प्र.)

प्रोफेसर हिमांशु रॉय

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रोफेसर गणेश कावडिया

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

प्रोफेसर अरुण चतुर्वेदी

मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

प्रोफेसर उत्तमसिंह चौहान

मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.प्र.)

प्रोफेसर सन्दीप जोशी

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)

Previously in UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

वर्ष 23 दिसम्बर 2025 अंक 2

सम्पादक
प्रोफेसर यतीन्द्रसिंह सिसोदिया

उप-सम्पादक
डॉ. आशीष भट्ट
डॉ. सुदीप मिश्र

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान
(भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार
एवं उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन का स्वायत्त शोध संस्थान)
6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र
उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन द्वारा प्रकाशित ***मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल*** अन्तर्विषयक प्रकृति का समीक्षीत अर्द्धवार्षिक जर्नल है। जर्नल के प्रकाशन का उद्देश्य समाज विज्ञानों में अध्ययन एवं अनुसन्धान को बढ़ावा देना तथा समसामयिक विषयों पर लेखकों एवं शोधार्थियों को लेखन एवं सन्दर्भ हेतु समुचित अवसर प्रदान करना है।

पूर्व में यह जर्नल यूजीसी-कन्सोर्टियम फॉर एकेडमिक एण्ड रिसर्च एथिक्स - समूह-एक (UGC-CARE - Group-I) में सूचीबद्ध था।

समाज विज्ञानियों एवं शोधार्थियों से भारतीय एवं क्षेत्रीय सन्दर्भों पर सम-सामयिक विषयों यथा - सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, विकासात्मक, प्रशासनिक मुद्दों, समस्याओं एवं प्रक्रियाओं पर शोधपरक आलेख, पुस्तक समीक्षा आदि आमन्त्रित हैं।

निदेशक

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान

6, प्रोफेसर रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र

उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश)

दूरभाष - (0734) 2510978

e-mail: mpissrhindijournal@gmail.com

web: mpissr.org

जर्नल में प्रकाशित शोध आलेखों में प्रस्तुत किये गये तथा व्यक्त किये गये विचार और टिप्पणियाँ सन्दर्भित लेखकों की हैं। इन्हें सम्पादक अथवा संस्थान के विचारों के प्रतिनिधित्व के रूप में नहीं लिया जाना चाहिये।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक		प्रति अंक	
संस्थागत	**रु. 400.00**	संस्थागत	**रु. 200.00**
व्यक्तिगत	**रु. 300.00**	व्यक्तिगत	**रु. 150.00**

जर्नल के प्रकाशन हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद् (शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार) के प्रति संस्थान आभार व्यक्त करता है।

Previously in UGC-CARE-Group-I ISSN 0973-8568

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल

(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)

वर्ष 23 दिसम्बर 2025 अंक 2

भारतीय सन्दर्भ में उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण 1
- रश्मि कुमारी राजौरा एवं रेनु यादव

कुशल नेतृत्व विकास के लिए गाँधीवादी विचारों का अन्वेषण 29
- रुचि द्विवेदी

भारतीय जनसंघ/भारतीय जनता पार्टी : एक राजनीतिक विश्लेषण 39
- रूपेश रंजन एवं अंजनी कुमार

शासितों का हिन्दुत्व 51
- कुँवर प्रांजल सिंह

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद : सामाजिक न्याय आधारित एक समावेशी दृष्टि 62
- बिनय कुमार उपाध्याय

पालन-पोषण शैलियों में जेंडर की भूमिका और बाल विकास पर उनका प्रभाव 75
- गुरपिन्दर कुमार

भारतीय राजनीति में दल-बदल और दल-बदल विरोधी कानून की प्रभावशीलता और कमियाँ 84
- रोशनी खातून

ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थी स्वीकार्यता 94
- अभिषेक वर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा की सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता : पंच प्रण के सन्दर्भ में 107
- ईश शक्ति सिंह एवं अजयकुमार सिंह

'वेद पाठशाला' विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान प्रणाली का समन्वय 117
- भावना तिवारी एवं धर्मेन्द्र कुमार सर्राफ

फसल संरक्षण में पारम्परिक तकनीक की उपयोगिता : स्थिति एवं सम्भावना **130**
- मनीष मिश्रा

बिहार राज्य में प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) में एनीमिया की व्यापकता एवं आहार उपभोग की आवृत्ति पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव का अध्ययन **139**
- आँचल सिंह

माध्यमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में निहित मूल्यों का विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता पर प्रभाव **152**
- परमानन्द त्रिपाठी एवं शालू तिवारी

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता का अध्ययन **159**
- अनुष्का यादव एवं आर. पुष्पा नामदेव

भारतीय समाज के नैतिक पतन का लैंगिक अपराधों पर प्रभाव **173**
- अम्बुज कुमार शुक्ल एवं सुशील कुमार त्रिपाठी

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की महत्वाकांक्षा : सम्भावनाएँ तथा बाधाएँ **182**
- कमल कुमार एवं जोया

जल जीवन मिशन का सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास पर प्रभाव : मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र का एक अनुभवजन्य अध्ययन **194**
- मनु गौतम एवं अमित तिवारी

पुस्तक समीक्षा
कन्ज्यूमिंग लाइफ (जिग्मंट बाउमैन) **209**
- अरुण कुमार गोंड

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 1-28)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

भारतीय सन्दर्भ में उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण

रश्मि कुमारी राजौरा* एवं रेनु यादव†

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) एक ऐसा शैक्षिक दृष्टिकोण है जो सीखने की प्रक्रिया में शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को शामिल करने के महत्व पर बल देता है। यह आलेख सीआरटी के सैद्धान्तिक ढाँचे, उसके घटकों और भारत के उच्च शिक्षा क्षेत्र में इसके प्रभावों का विश्लेषण करता है। यह आलेख सीआरटी को राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020, राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा (एनसीएफ) 2022, और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) की 'नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधारों के लिए दिशा-निर्देश' (2022) के साथ सरेखित करने पर केन्द्रित है। इस लेख में भारतीय कक्षाओं में सीआरटी लागू करने के अवसरों और चुनौतियों का विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से यह बताया गया है कि कैसे सीआरटी भारत के उच्च शिक्षा क्षेत्र में समावेशिता, शैक्षणिक सफलता और सामाजिक न्याय को बढ़ावा दे सकता है। अन्त में भारतीय सन्दर्भ में उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा (सीआरटी) लागू करने के महत्वपूर्ण कदमों को पिरामिड द्वारा दर्शाया गया है।

*शोधार्थी, अध्यापक शिक्षा विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़
E-mail: rashmikumarirajora60@gmail.com
†प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़
E-mail: renuyadav@cuh.ac.in

परिचय

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की शिक्षा प्रणाली में एक प्रगतिशील परिवर्तन को दर्शाती है, जो 21वीं सदी की आवश्यकताओं के अनुरूप है साथ ही देश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत में गहराई से निहित है। यह नीति समावेशिता, समानता और शिक्षार्थियों के समग्र विकास पर बल देती है, जिससे भारत की विविध सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक पृष्ठभूमि को सम्मान और बढ़ावा मिलता है।

भारत विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों और परम्पराओं का संगम है, जिससे एक रंगीन और जीवन्त देश बनाता है। यह विविधता इसकी सबसे बड़ी ताकतों में से एक है (चौधरी और गोपाल, 2024)। प्राचीन काल से ही भारत में बहु-विषयक दृष्टिकोण की समृद्ध परम्परा रही है, जिसका उदाहरण नालन्दा और तक्षशिला जैसे प्राचीन शिक्षण संस्थानों में मिलता है। प्राचीन भारत के ये उच्च शिक्षण केन्द्र प्रत्येक ज्ञान शाखा, जैसे - गायन, चित्रकला, रसायन, गणित; व्यावसायिक क्षेत्र, जैसे - बढ़ईगिरी, वस्त्र निर्माण और पेशेवर क्षेत्र, जैसे - चिकित्सा एवं अभियान्त्रिकी के साथ-साथ संचार, चर्चा और वाद-विवाद जैसी सॉफ्ट स्किल्स की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थे (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, अनुभाग 11.1, 11.2 : 57- 58)। सदियों के दौरान व्यापक शिक्षा के अवसर संकुचित होते गए और हाल के वर्षों में विशेष विषयों पर केन्द्रित शिक्षा प्रणाली विकसित हुई, जिससे एकल-धारा शिक्षण संस्थानों की वृद्धि हुई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020) बहु-विषयक शिक्षा प्रदान करने के लिए कई नीतिगत दिशानिर्देश सुझाती है (उच्च शिक्षण संस्थानों को बहु-विषयक संस्थानों में रूपान्तरित करने के लिए दिशा-निर्देश, 2022; एनईपी 2020: 57-58)।

वैश्वीकरण, प्रवासन, और समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने वाली नीतियों के कारण विश्व भर के उच्च शिक्षा संस्थानों में सांस्कृतिक विविधता बढ़ रही है (बैंक्स एवं बैंक्स, 2019)। इस सन्दर्भ में पारम्परिक शिक्षण विधियाँ अक्सर विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आने वाले शिक्षार्थियों की जरूरतों को पूरा करने में असफल रहती हैं (गे, 2018)। इस अन्तर को पाटने के लिए सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) एक प्रभावी शिक्षण पद्धति के रूप में उभरा है। यह पद्धति शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान, अनुभवों और दृष्टिकोणों को सीखने की प्रक्रिया में शामिल करती है ताकि उनकी शैक्षणिक सफलता, सांस्कृतिक क्षमता और आलोचनात्मक चेतना को बढ़ावा दिया जा सके (बिलिंग्स, 1995; गे, 2010)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) शब्द भारत में व्यापक एवं प्रत्यक्ष रूप से उपयोग नहीं किया जाता है, लेकिन इसके सिद्धान्त समावेशी शिक्षा, अनुभवात्मक शिक्षण और शिक्षण विधियों में स्थानीय परम्पराओं के एकीकरण में परिलक्षित होते हैं (टैगोर, 1921; कुमार, 2019; शर्मा और गुप्ता, 2018)।

सीआरटी को परिभाषित करते हुए गे ने कहा है कि यह एक ऐसी शिक्षण पद्धति है जो "विभिन्न जातीय पृष्ठभूमियों से आने वाले शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक विशेषताओं, अनुभवों और दृष्टिकोणों का उपयोग उन्हें अधिक प्रभावी ढंग से शिक्षित करने के लिए करती

है” (गे, 2002: 106)। शिक्षार्थी तब सबसे अच्छा सीखते हैं जब उनकी सांस्कृतिक पहचान को मान्यता दी जाती है, उसका सम्मान किया जाता है, और उसे कक्षा की प्रथाओं में शामिल किया जाता है (बैंक्स, 2016)। यह दृष्टिकोण वंचित समुदायों से आने वाले शिक्षार्थियों के प्रति नकारात्मक सोच को चुनौती देता है और शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान को सीखने के लिए एक सम्पत्ति के रूप में देखता है (मॉल और अन्य, 1992; पेरिस, 2012)।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र एक रूपान्तरकारी दृष्टिकोण है; जब इस दृष्टिकोण से शिक्षण किया जाता है, तो छात्र बेहतर व्यक्ति बनते हैं और अधिक सफल शिक्षार्थी होते हैं (राजगोपाल, 2011)। यह रूपान्तरकारी दृष्टिकोण व्यक्तिगत आत्मविश्वास, शैक्षणिक दक्षता, कार्य करने की इच्छा, और सीखने, अन्वेषण करने तथा ज्ञान के साथ बढ़ने का साहस उत्पन्न करता है। सीआरटी की अवधारणा केवल सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं है, बल्कि यह शिक्षार्थियों को उनके जीवन, अनुभवों और सामाजिक-राजनीतिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई शिक्षा में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित करती है (हैममोंड, 2015: 23)। इसका उद्देश्य एक ऐसा समानतापूर्ण शिक्षण वातावरण बनाना है जहाँ वंचित समुदायों से आने वाले शिक्षार्थी, शैक्षणिक और सामाजिक रूप से सफल होने के लिए सशक्त महसूस करें (सलीटेर, 2011; हॉवर्ड, 2019)।

भारत के सन्दर्भ में, राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 ने सीआरटी की महत्ता को रेखांकित किया है। यह नीति समावेशी, न्यायसंगत और शिक्षार्थी-केन्द्रित शिक्षण वातावरण बनाने पर बल देती है, जो शिक्षार्थियों की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों का सम्मान करता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (2022) के ‘नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधारों के लिए दिशा-निर्देश’ सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण प्रथाओं की वकालत करते हैं ताकि उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षा की गुणवत्ता और प्रासंगिकता को बेहतर बनाया जा सके। यह दस्तावेज छात्रों की विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम, शिक्षण पद्धतियों और मूल्यांकन में सुधार का सुझाव देता है (यूजीसी, 2022: 15-17)। सांस्कृतिक उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र से सम्बन्धित अधिक शोध अध्यापकों के परिप्रेक्ष्य (पेड्रोसो, सासाना और वेलेंसिया, 2023; मुनिज जे., 2019; बैसी, 2016; पाशा, 2012; विलेगास और लुकास, 2007) एवं माध्यमिक शिक्षा पर आधारित हैं (क्लार्क, 2023; होयट, हंट और लवेट, 2022; सिंह, 2022; गीयरहार्ट, 2019)।

उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण का सैद्धान्तिक ढाँचा

उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) का सैद्धान्तिक ढाँचा बहुआयामी है, जो विभिन्न शैक्षिक सिद्धान्तों से प्रेरित है। ये सिद्धान्त सांस्कृतिक प्रासंगिकता, आलोचनात्मक चेतना, सामाजिक अन्त:क्रिया और सीखने की प्रक्रिया में सांस्कृतिक ज्ञान के महत्व पर बल देते हैं। इन सिद्धान्तों का एकीकरण यह समझने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है कि उच्च शिक्षा में सीआरटी को कैसे लागू किया जा सकता है

ताकि विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों के लिए समावेशिता, सहभागिता, और शैक्षणिक सफलता को बढ़ावा दिया जा सके। इन स्थापित शैक्षिक सिद्धान्तों में सीआरटी को आधार बनाकर, यह अभ्यास असमानताओं को दूर करने और ऐसा वातावरण बनाने का एक प्रभावी उपकरण बन जाता है जो सभी शिक्षार्थियों, विशेष रूप से ऐतिहासिक रूप से हाशिए समूहों के लिए सीखने को बढ़ावा देता है। शिक्षार्थियों का सांस्कृतिक ज्ञान और अनुभव जिन्हें अक्सर 'सांस्कृतिक पूंजी' कहा जाता है, उनकी सीखने की प्रक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सीआरटी ढाँचे के द्वारा शिक्षकों को इस सांस्कृतिक पूंजी को पहचानने और इसका उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि शैक्षिक सफलता को बढ़ावा दिया जा सके। सीआरटी ऐसे शैक्षिक वातावरण की माँग करता है जहाँ विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को न केवल स्वीकार किया जाए बल्कि शिक्षण प्रथाओं में भी एकीकृत किया जाए ताकि सभी शिक्षार्थियों के सीखने के परिणामों को बेहतर बनाया जा सके। निम्नलिखित अनुभाग में सीआरटी के प्रमुख सैद्धान्तिक आधारों का विस्तार से उल्लेख किया गया है, जिनमें शामिल हैं - सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र, आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र, वायगोत्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त, ज्ञान के स्रोतों का सिद्धान्त, और सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षण ये सिद्धान्त उच्च शिक्षा में सीआरटी को समझने के लिए एक मजबूत ढाँचा प्रदान करते हैं।

1. सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र (गे, 2010)

सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र की अवधारणा 1990 के दशक की शुरुआत में ग्लोरिया लैडसन-बिलिंग्स द्वारा विकसित की गई थी और यह सीआरटी का एक महत्वपूर्ण आधार है। लैडसन-बिलिंग्स (1994) ने सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र को यह समर्थन देने के लिए प्रस्तुत किया कि शिक्षण अभ्यास केवल शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को स्वीकार न करे बल्कि उनके सांस्कृतिक ज्ञान और अनुभवों को भी सीखने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल करे। सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं -

1. ***शैक्षणिक सफलता*** - सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र का पहला लक्ष्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी शिक्षार्थी, विशेष रूप से वे जो हाशिए पर रहे सांस्कृतिक समूहों से आते हैं, शैक्षणिक सफलता प्राप्त करें। इसके लिए शिक्षकों को शिक्षार्थियों की जरूरतों और सांस्कृतिक सन्दर्भों के आधार पर उच्च अपेक्षाएँ, स्कैफोल्डिंग (सहायक संरचना), और भिन्न शिक्षण पद्धतियों को अपनाना चाहिए।

2. ***सांस्कृतिक क्षमता*** - शिक्षार्थियों को विविध समाज में सफल होने के लिए आवश्यक सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इसमें विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं, ऐतिहासिक अनुभवों और दृष्टिकोणों के बारे में सीखना शामिल है।

3. *आलोचनात्मक चेतना* - सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र शिक्षार्थियों को सामाजिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक मुद्दों के साथ आलोचनात्मक रूप से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह उन्हें सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने और सामाजिक न्याय के लिए काम करने के लिए सशक्त बनाता है।

2. आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र (फ्रेरे, 1970)

पाउलो फ्रेरे द्वारा 1970 के दशक में विकसित आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र सीआरटी का एक अन्य महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक आधार है। फ्रेरे के कार्य इस बात पर बल देते हैं कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और मुक्ति के लिए एक उपकरण होनी चाहिए, विशेष रूप से उन समूहों के लिए जो हाशिए पर रहे हैं। आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र मुख्य रूप से निम्नलिखित तत्वों पर आधारित है -

1. *संवाद और शिक्षार्थी की आवाज* - फ्रेरे ने कक्षा में संवाद के महत्व पर बल दिया, जहाँ शिक्षार्थियों के अनुभवों, प्रश्नों और दृष्टिकोणों को मान्यता दी जाती है और उन्हें सीखने की प्रक्रिया में शामिल किया जाता है। सीआरटी इस सिद्धान्त का उपयोग यह सुनिश्चित करने के लिए करता है कि विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले शिक्षार्थियों को बोलने, साझा करने और पाठ्यक्रम के साथ सार्थक रूप से जुड़ने का अवसर मिले।
2. *आलोचनात्मक चेतना* - आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र आलोचनात्मक चेतना के विकास को बढ़ावा देता है, जहाँ शिक्षार्थी उन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रणालियों को पहचानना और चुनौती देना सीखते हैं जो असमानताओं को बनाए रखते हैं।
3. *शिक्षक के रूप में मार्गदर्शक* - फ्रेरे ने शिक्षक की भूमिका को एक आदेश देने वाले प्राधिकारी के रूप में नहीं बल्कि मार्गदर्शक के रूप में देखा। सीआरटी में शिक्षकों को सीखने के भागीदार के रूप में देखा जाता है जो शिक्षार्थियों को उनके सांस्कृतिक पहचान और अनुभवों की आलोचनात्मक रूप से जाँच करने में मार्गदर्शन करते हैं।

3. वायगोत्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त (वायगोत्स्की, 1978)

लव वायगोत्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धान्त सीआरटी को समझने के लिए एक और महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। वायगोत्स्की का तर्क है कि सीखना स्वाभाविक रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है और उस सांस्कृतिक सन्दर्भ से प्रभावित होता है। इस सिद्धान्त के मुख्य तत्व सीआरटी से सम्बन्धित हैं -

1. *सामाजिक अन्त:क्रिया और सीखना* - वायगोत्स्की की समीपस्थ विकास क्षेत्र अवधारणा बताती है कि शिक्षार्थी उन कार्यों को करने में सक्षम हो सकते हैं जिन्हें वे अन्य लोगों के समर्थन से सहयोग द्वारा कर सकते हैं।
2. *सांस्कृतिक उपकरण* - वायगोत्स्की ने सांस्कृतिक उपकरणों (जैसे भाषा, प्रतीक, और प्रथाएँ) की भूमिका पर बल दिया जो संज्ञानात्मक विकास को आकार देते हैं।
3. *स्कैफोल्डिंग* - यह अवधारणा सीआरटी के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह शिक्षकों को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक और शैक्षणिक पृष्ठभूमि के आधार पर लक्षित समर्थन प्रदान करने की अनुमति देती है।

4. ज्ञान के स्रोतों का सिद्धान्त (मोल और अन्य, 1992)

लुइस मोल और उनके सहयोगियों द्वारा विकसित ज्ञान के स्रोतों का सिद्धान्त एक ऐसा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है जो सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) के साथ मेल खाता है। यह सिद्धान्त इस बात को स्वीकार करता है कि सभी शिक्षार्थी, विशेष रूप से वंचित समुदायों से आने वाले शिक्षार्थी, अपने घर और समुदाय के अनुभवों से मूल्यवान ज्ञान लेकर आते हैं। इस ज्ञान में सांस्कृतिक प्रथाएँ, पारिवारिक परम्पराएँ, समस्या समाधान की रणनीतियाँ, और दैनिक जीवन में उपयोगी कौशल शामिल होते हैं। इस सिद्धान्त के कुछ मुख्य घटक निम्नलिखित हैं -

1. *सांस्कृतिक संसाधनों की पहचान* - यह सिद्धान्त कहता है कि शिक्षकों को शिक्षार्थियों के जीवन अनुभवों और सांस्कृतिक संसाधनों की पहचान करनी चाहिए और उन्हें अपने शिक्षण में शामिल करना चाहिए। यदि शिक्षक शिक्षार्थियों के अनुभवों और उनके समुदायों के ज्ञान को अपने पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाते हैं, तो वे शिक्षार्थियों के लिए अधिक प्रासंगिक और आकर्षक शिक्षा का वातावरण बना सकते हैं।

   उदाहरण - यदि कोई शिक्षार्थी कृषि पृष्ठभूमि से आता है, तो शिक्षक उस शिक्षार्थी के अनुभवों का उपयोग विज्ञान, पर्यावरण अध्ययन या गणित की कक्षाओं में कर सकते हैं।
2. *घर-विद्यालय सम्बन्ध* - इस सिद्धान्त में कहा गया है कि विद्यालय और शिक्षार्थियों के घरों के बीच मजबूत सम्बन्ध बनाए जाने चाहिए। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) इस दृष्टिकोण से प्रेरणा लेते हुए शिक्षकों को परिवारों के साथ संवाद करने, उनकी संस्कृतियों को समझने, और इस ज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल करने के लिए प्रोत्साहित करता है। शिक्षक शिक्षार्थियों के परिवारों के साथ मिलकर उनकी सांस्कृतिक विरासत को समझ सकते हैं और उनके शिक्षा अनुभवों को समृद्ध कर सकते हैं।

उदाहरण -

- शिक्षक घर जा सकते हैं या परिवारों को कक्षा में आमन्त्रित कर सकते हैं ताकि वे अपनी सांस्कृतिक प्रथाओं को साझा कर सकें।
- शिक्षक परिवारों के सांस्कृतिक उत्सवों को कक्षा में शामिल कर सकते हैं।

3. ***सांस्कृतिक मान्यता*** - इस सिद्धान्त में बल दिया गया है कि शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को कमजोरी के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे एक सम्पत्ति के रूप में देखा जाना चाहिए जो शिक्षार्थियों के शैक्षिक अनुभवों में योगदान देती है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण इस विचार को अपनाता है कि शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल करने से एक समावेशी और सशक्त वातावरण तैयार किया जा सकता है। जब शिक्षक शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को मान्यता देते हैं, तो वे शिक्षार्थियों में आत्मविश्वास और स्वयं की पहचान का सम्मान बढ़ाते हैं।

उदाहरण -

- शिक्षक शिक्षार्थियों को उनकी पारिवारिक कहानियों और संस्कृतियों को साझा करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं।
- शिक्षक पाठ्यक्रम में स्थानीय कहानियों, भाषा, और सांस्कृतिक गतिविधियों को शामिल कर सकते हैं।

ज्ञान के स्रोतों का सिद्धान्त इस विचार का समर्थन करता है कि शिक्षा को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक वास्तविकताओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। शिक्षकों को यह समझने की आवश्यकता है कि शिक्षार्थियों का सांस्कृतिक ज्ञान एक शक्तिशाली उपकरण है, जिसे शैक्षिक सफलता के लिए उपयोग किया जा सकता है। यह सिद्धान्त उच्च शिक्षा में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह शिक्षकों को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सकारात्मक रूप से पहचानने और उसे उनके शिक्षण में शामिल करने की प्रेरणा देता है।

5. सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षण (पेरिस, 2012)

सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षण, जिसे जैंगो पेरिस ने विकसित किया, सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण की अवधारणा को और आगे बढ़ाता है।

पेरिस (2012) ने तर्क दिया कि शिक्षा को केवल शिक्षार्थियों की संस्कृतियों को स्वीकारने और शामिल करने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे उनकी संस्कृतियों को पोषित और पुनर्जीवित करने का भी कार्य करना चाहिए। यह दृष्टिकोण इस विचार को बढ़ावा देता है कि शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना और उसे बढ़ावा देना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए।

मुख्य सिद्धान्त

1. ***सांस्कृतिक प्रासंगिकता और निरन्तरता*** - सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षण इस बात पर बल देता है कि शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक प्रथाओं को न केवल शामिल किया जाए, बल्कि उन्हें इस तरह से संरक्षित और पोषित किया जाए कि वे अलग-अलग सांस्कृतिक स्थानों में भी प्रासंगिक रहें। यह दृष्टिकोण शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को स्थायी बनाने का कार्य करता है, जिससे वे अपनी जड़ों से जुड़े रहते हुए अन्तर-सांस्कृतिक बातचीत करने में सक्षम हो सकें।

उदाहरण -

- कक्षा में स्थानीय भाषाओं का उपयोग करना।
- शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक विरासत के बारे में चर्चा को प्रोत्साहित करना।

2. ***रूपान्तरकारी पाठ्यक्रम*** - सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षाशास्त्र शिक्षकों को एक ऐसा पाठ्यक्रम विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करता है जो शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक प्रथाओं, भाषाओं, और पहचान को बढ़ावा देता है। यह दृष्टिकोण शिक्षार्थियों को मुख्यधारा की शैक्षिक प्रणालियों में आत्मसात करने का विरोध करता है और उन्हें अपनी संस्कृति और भाषा के प्रति गर्व महसूस करने के लिए प्रेरित करता है।

उदाहरण -

- पाठ्यक्रम में स्थानीय इतिहास, पारम्परिक कला और सांस्कृतिक अनुष्ठानों को शामिल करना।
- शिक्षार्थियों को उनके संस्कृतीकरण के बजाय उनकी सांस्कृतिक विरासत को सशक्त बनाना।

सांस्कृतिक रूप से पोषित शिक्षण सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) का एक आवश्यक विस्तार है। यह शिक्षकों को शिक्षार्थियों की संस्कृति को बचाने, पोषित करने और उनकी सांस्कृतिक पहचान को संरक्षित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह दृष्टिकोण शिक्षार्थियों को अपने सांस्कृतिक मूल्यों और विरासत को बनाए रखने के लिए सशक्त बनाता है, जिससे वे एकाधिक सांस्कृतिक पहचानों के साथ आत्मविश्वास से जुड़ सकें।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) के घटक

जिनेवा गे (2010) ने अपनी प्रमुख पुस्तक 'कल्चरली रिस्पॉन्सिव टीचिंग : थ्योरी, रिसर्च एंड प्रेक्टिस' में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण की अवधारणा प्रस्तुत की और लैडसन-बिलिंग्स ने पहली बार सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र की अवधारणा को अपने प्रसिद्ध शोध कार्य 'टुवर्ड अ थ्योरी ऑफ कल्चरली रिस्पॉन्सिव पेडोगोजी' में प्रस्तुत किया। उन्होंने सीआरटी के कई प्रमुख घटकों को परिभाषित किया, जो शिक्षार्थियों की

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को शिक्षण प्रक्रिया में शामिल करने पर केन्द्रित हैं ताकि उनकी शैक्षणिक सफलता को बढ़ाया जा सके और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित किया जा सके। जिन्हें शिक्षकों को अपनी शिक्षण पद्धति में शामिल करना चाहिए ताकि विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के शिक्षार्थियों की सफलता सुनिश्चित की जा सके।

घटक	विवरण	सन्दर्भ
शैक्षणिक सफलता	उच्च शैक्षणिक अपेक्षाओं को बढ़ावा देता है।	बिलिंग्स (1995), पृ. 160
सांस्कृतिक क्षमता	शिक्षकों को विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को पहचानने और इसे पढ़ाने में शामिल करने के लिए प्रेरित करता है।	बिलिंग्स (1995), पृ 163; गे (2010), पृ. 58
आलोचनात्मक चेतना	विद्यार्थियों को सामाजिक अन्याय के प्रति जागरूकता को बढ़ावा और सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने और उनके समाधान के लिए प्रेरित करता है।	बिलिंग्स (1995), पृ. 167; फ्रेरे (1970), पृ. 45; गे (2010), पृ. 132
सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक पाठ्यक्रम	विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अनुभवों को पाठ्यक्रम में दर्शाता है।	गे (2010), पृ. 31
सांस्कृतिक रूप से उपयुक्त संचार	विद्यार्थियों की सांस्कृतिक मानदंडों के अनुसार संचार शैली को अनुकूलित करता है।	गे (2010), पृ. 84
सभी के लिए उच्च अपेक्षाएँ	सभी विद्यार्थियों के लिए उच्च शैक्षणिक मानक तय करता है और नकारात्मक दृष्टिकोणों को अस्वीकार करता है।	गे (2010), पृ. 45
सांस्कृतिक संसाधनों का उपयोग	शिक्षण संसाधन के रूप में विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान का उपयोग करता है।	गे (2010), पृ. 75
सामुदायिक भागीदारी	सामुदायिक ज्ञान को कक्षा में लाने के लिए प्रेरित करता है।	गे (2010), पृ. 120; बैंक्स (2004), पृ. 88
शिक्षा में समावेशिता	सभी विषयों और कक्षाओं के लिए लागू, जो विविध शिक्षण वातावरण के लिए अनिवार्य है।	(गे, 2010; चौधरी और गोपाल, 2024)
सार्वभौमिक छात्र प्रभाव	सभी छात्रों को लाभ पहुँचाता है, जिससे विभिन्न जनसांख्यिकीय समूहों में शैक्षणिक परिणाम बेहतर होते हैं।	(गे, 2010; चौधरी और गोपाल, 2024)
शिक्षक प्रशिक्षण	सांस्कृतिक ज्ञान और शिक्षण विधियों को शामिल करने वाले पेशेवर विकास की आवश्यकता होती है।	(गे, 2010; चौधरी और गोपाल, 2024)

1. शैक्षणिक सफलता

ग्लोरिया लैडसन-बिलिंग्स (1995) इस बात पर बल देती हैं कि शैक्षणिक सफलता सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र का एक प्रमुख घटक है। उनका मानना है कि शिक्षकों को सभी शिक्षार्थियों, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले समुदायों के शिक्षार्थियों के लिए उच्च शैक्षणिक अपेक्षाएँ निर्धारित करनी चाहिए और 'घाटे आधारित सोच' को अस्वीकार करना चाहिए। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण में शैक्षणिक सफलता का अर्थ यह नहीं है कि शिक्षार्थी प्रमुख संस्कृति में आत्मसात करें। इसके बजाय, यह शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक

पृष्ठभूमि का सम्मान करते हुए कठोर शैक्षणिक मानकों को बनाए रखने पर केन्द्रित है (गे, 2010)।

"सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षक शिक्षार्थियों के पूर्व ज्ञान और अनुभवों का उपयोग करके शैक्षणिक सफलता को बढ़ावा देते हैं" (बिलिंग्स, 1995: 160)। "शैक्षणिक सफलता को इस प्रकार परिभाषित किया जाना चाहिए कि शिक्षार्थी अपनी सांस्कृतिक पहचान खोए बिना उत्कृष्टता प्राप्त कर सकें" (बिलिंग्स, 1995: 161)। "शिक्षकों को कक्षा की सामग्री को शिक्षार्थियों के वास्तविक जीवन के अनुभवों से जोड़कर शिक्षा को अर्थपूर्ण बनाना चाहिए" (बिलिंग्स, 1994: 30)।

2. सांस्कृतिक दक्षता

सांस्कृतिक दक्षता का अर्थ है कि शिक्षार्थियों को उनकी सांस्कृतिक पहचान बनाए रखने में सहायता करना और साथ ही उन्हें अन्य संस्कृतियों के बारे में भी ज्ञान देना। लैडसन-बिलिंग्स (1995) बताती हैं कि शिक्षकों को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को एक मूल्यवान सम्पत्ति के रूप में मानना चाहिए और इसे सीखने के लिए एक संसाधन के रूप में उपयोग करना चाहिए। जिनेवा गे (2010) भी इस विचार का समर्थन करती हैं कि शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक अनुभवों को शिक्षण में शामिल करना सीखने को अधिक प्रभावी बनाता है। गे सांस्कृतिक योग्यता को शिक्षकों की यह क्षमता बताते हैं कि वे शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को पहचानें, उनका सम्मान करें और उन्हें अपनी शिक्षण पद्धतियों में शामिल करें। शिक्षकों को शिक्षार्थियों की संस्कृतियों के बारे में लगातार सीखना चाहिए और इस ज्ञान का उपयोग शिक्षण निर्णयों को निर्देशित करने के लिए करना चाहिए। सांस्कृतिक योग्यता में सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों को सम्बोधित करना और यह सुनिश्चित करना भी शामिल है कि कक्षा प्रथाएँ किसी भी समूह को हाशिए पर न डालें।

"सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षाशास्त्र शिक्षकों से यह अपेक्षा करता है कि वे शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान को वैध और मूल्यवान मानें" (बिलिंग्स, 1995: 163)। "सांस्कृतिक दक्षता का अर्थ है शिक्षार्थियों की संस्कृति का उपयोग शैक्षणिक सफलता के लिए एक आधार के रूप में करना" (गे, 2010: 50)। "शिक्षकों को शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक अनुभवों का उपयोग सीखने को अधिक प्रासंगिक और रोचक बनाने के लिए करना चाहिए" (बिलिंग्स, 2001: 80)। 'शिक्षकों को अपने सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों पर विचार करना चाहिए और यह देखना चाहिए कि ये उनके शिक्षण प्रथाओं को कैसे प्रभावित कर सकते हैं" (गे, 2010: 60)। "संस्कृति आधारित शिक्षण में शिक्षकों से अपेक्षा की जाती है कि वे शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बारे में जानें और इस जानकारी का उपयोग शिक्षण निर्णयों को मार्गदर्शित करने के लिए करें" (गे, 2010: 58)।

3. आलोचनात्मक चेतना

लैडसन-बिलिंग्स के सिद्धान्त का सबसे विशिष्ट घटक आलोचनात्मक चेतना है। वह कहती हैं कि शिक्षार्थियों को यह सिखाया जाना चाहिए कि वे सामाजिक असमानताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करें और उन्हें हल करने के लिए कदम उठाएँ। पाउलो फ्रेरे (1970) भी अपने आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्त में इस बात पर बल देते हैं कि शिक्षा को शिक्षार्थियों को सामाजिक परिवर्तन के लिए एजेंट बनने के लिए सशक्त बनाना चाहिए।

"सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण को शिक्षार्थियों की सामाजिक असमानताओं को पहचानने और चुनौती देने में सहायता करनी चाहिए" (बिलिंग्स, 1995: 167)। "शिक्षा एक राजनीतिक कार्य है। शिक्षकों को शिक्षार्थियों को यह सिखाना चाहिए कि वे दुनिया का आलोचनात्मक विश्लेषण करें और परिवर्तनकारी कदम उठाएँ" (फ्रेरे, 1970: 45)। "शिक्षकों को शिक्षार्थियों को ऐसी परियोजनाओं में शामिल करना चाहिए जो उन्हें वास्तविक दुनिया की सामाजिक समस्याओं का समाधान करने की अनुमति दें" (बिलिंग्स, 1995: 169)।

4. संस्कृति आधारित पाठ्यक्रम

जिनेवा गे (गे) का कहना है कि पाठ्यक्रम को विविध शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक अनुभवों को प्रतिबिम्बित करना चाहिए। एक संस्कृति आधारित पाठ्यक्रम शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक जानकारी, विरासत और अनुभवों को कक्षा की सामग्री में शामिल करके सीखने को अधिक प्रासंगिक और अर्थपूर्ण बनाता है। यह केवल यूरोप-केन्द्रित पाठ्यक्रम तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों के लेखकों, इतिहासों और योगदानों को भी शामिल करना चाहिए।

"पाठ्यक्रम सामग्री को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को दर्शाना चाहिए, ताकि उनकी जानकारी और दृष्टिकोणों को मान्य और मूल्यवान माना जा सके" (गे, 2010: 31)। "संस्कृति आधारित पाठ्यक्रम सांस्कृतिक आधिपत्य को चुनौती देता है और विविध दृष्टिकोणों और आवाजों को प्रस्तुत करता है" (गे, 2010: 35)।

5. सांस्कृतिक जागरूकता

सांस्कृतिक जागरूकता शिक्षकों और विद्यार्थियों को विभिन्न संस्कृतियों के मूल्यों, परम्पराओं, और दृष्टिकोणों को समझने और सम्मान करने के लिए प्रेरित करती है। यह घटक शिक्षण को अधिक समावेशी और संवेदनशील बनाता है, जिससे सांस्कृतिक विविधता का सम्मान होता है। शिक्षकों को सांस्कृतिक मतभेदों को समझने और उन्हें एक अवसर के रूप में देखने के लिए तैयार किया जाता है। यह जागरूकता विद्यार्थियों को वैश्विक नागरिक बनने और विभिन्न सांस्कृतिक सन्दर्भों में प्रभावी ढंग से संवाद करने में सहायता करती है (बैंक्स, 2004: 101; गे, 2010: 92)।

6. संस्कृति आधारित संवाद

जेनेवा गे ने बताया है कि विभिन्न संस्कृतियों में संवाद की शैली अलग-अलग होती है। शिक्षकों को संवाद के दौरान शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक मानदंडों के अनुसार अपनी संचार शैली को अनुकूलित करना चाहिए। इसमें गैर-मौखिक संकेतों, बोलने के तरीकों और बातचीत की शैलियों को समझना शामिल है।

"संस्कृति आधारित शिक्षक मानते हैं कि संवाद की शैलियाँ सांस्कृतिक मानदंडों में गहराई से निहित हैं और उनका सम्मान किया जाना चाहिए" (गे, 2010: 84)। उदाहरण के लिए, कुछ संस्कृतियों में सामूहिक चर्चा को प्राथमिकता दी जाती है, जबकि अन्य में व्यक्तिगत प्रतिक्रिया को महत्व दिया जाता है। शिक्षकों को इन अन्तर को समझने और समावेशी वातावरण बनाने की आवश्यकता है। "शिक्षक और शिक्षार्थियों के बीच संवाद में गलतफहमी शिक्षा में असमानताओं को बढ़ा सकती है" (गे, 2010: 87)।

7. सभी शिक्षार्थियों के लिए उच्च अपेक्षाएँ

जिनेवा गे ने इस बात पर बल दिया है कि शिक्षकों को सभी शिक्षार्थियों, विशेष रूप से वंचित समूहों के शिक्षार्थियों के लिए उच्च शैक्षणिक अपेक्षाएँ रखनी चाहिए। शिक्षकों को यह मानना चाहिए कि सभी शिक्षार्थी अकादमिक सफलता प्राप्त करने में सक्षम हैं और अपनी उम्मीदों को शिक्षार्थियों तक पहुँचाना चाहिए। "संस्कृति आधारित शिक्षक मानते हैं कि सभी शिक्षार्थी अकादमिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं और वे अपनी अपेक्षाओं को शिक्षार्थियों तक प्रभावी ढंग से संप्रेषित करते हैं" (गे, 2010: 45)। इसका मतलब है कि शिक्षार्थियों को कठोर निर्देश देना और साथ ही उन्हें समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान करना ताकि वे सफलता प्राप्त कर सकें। "अपेक्षाएँ यह निर्धारित करती हैं कि शिक्षार्थी अपने बारे में क्या सोचते हैं और वे कितनी सफलता प्राप्त कर सकते हैं" (गे, 2010: 49)।

8. शिक्षण के लिए सांस्कृतिक संसाधनों का उपयोग

जिनेवा गे इस बात पर बल देते हैं कि शिक्षकों को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक जानकारी और अनुभवों का उपयोग शिक्षण के लिए संसाधन के रूप में करना चाहिए। इसमें स्थानीय समुदाय के संसाधनों, सांस्कृतिक कलाकृतियों और वास्तविक जीवन के अनुभवों को कक्षा में शामिल करना शामिल है।

"शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक जानकारी एक शक्तिशाली उपकरण हो सकती है जो सीखने को अधिक अर्थपूर्ण और प्रासंगिक बनाती है" (गे, 2010: 75)। उदाहरण के लिए, समुदाय के बुजुर्गों या सांस्कृतिक नेताओं को आमन्त्रित किया जा सकता है ताकि वे अपने अनुभव और ज्ञान शिक्षार्थियों के साथ साझा कर सकें। "शिक्षण में सामुदायिक संसाधनों को शामिल करना शिक्षार्थियों के घरेलू जीवन और स्कूल के अनुभवों के बीच की खाई को पाटता है" (गे, 2010: 78)।

9. आलोचनात्मक चेतना और सामाजिक न्याय

जिनेवा गे ने पाउलो फ्रेरे (1970) के आलोचनात्मक शिक्षाशास्त्र के सिद्धान्तों से प्रेरित होकर कहा है कि शिक्षकों को शिक्षार्थियों में आलोचनात्मक चेतना विकसित करनी चाहिए। इसमें शिक्षार्थियों को सामाजिक अन्याय की पहचान करने और उनका समाधान निकालने के लिए प्रेरित करना शामिल है। "संस्कृति आधारित शिक्षण शिक्षार्थियों को सामाजिक अन्याय को पहचानने और उनका समाधान निकालने के लिए कौशल प्रदान करता है" (गे, 2010: 132)। शिक्षार्थियों को शक्ति संरचनाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण करने और समानता को बढ़ावा देने के लिए कार्रवाई करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। "शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के लिए एक उपकरण है, और शिक्षार्थियों को अपने समुदायों में परिवर्तनकारी एजेंट बनने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए" (गे, 2010: 134)।

10. सामुदायिक भागीदारी

विद्यार्थियों के सांस्कृतिक समुदायों के साथ साझेदारी विकसित करने का उद्देश्य शिक्षण को अधिक प्रासंगिक और व्यावहारिक बनाना है। सामुदायिक भागीदारी का अर्थ है शिक्षकों और शिक्षार्थियों के बीच ऐसी गतिविधियाँ और संवाद स्थापित करना जो समुदाय के भीतर सांस्कृतिक ज्ञान और परम्पराओं को समझने में सहायता करें। उदाहरण के लिए, शिक्षक स्थानीय समुदायों के नेताओं, व्यवसायियों, और सांस्कृतिक विशेषज्ञों को कक्षा में आमन्त्रित कर सकते हैं ताकि शिक्षार्थी वास्तविक जीवन की समस्याओं को समझें और उनके समाधान पर काम करें। यह घटक शिक्षार्थियों को उनके समुदाय से जोड़ने के साथ-साथ उनकी पहचान को सुदृढ़ करता है। सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से विद्यार्थी सीखते हैं कि उनके सांस्कृतिक मूल्यों और परम्पराओं का उपयोग सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान में कैसे किया जा सकता है। यह उन्हें जिम्मेदार नागरिक बनने के लिए प्रेरित करता है और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देता है (गे, 2010: 120; बैंक्स, 2004: 88)।

11. शिक्षा में समावेशिता

शिक्षा में समावेशिता का अर्थ है कि सभी विषयों और कक्षाओं में विविध पृष्ठभूमि से आने वाले छात्रों की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण प्रक्रियाओं को डिजाइन किया जाए। यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी छात्र सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई या शारीरिक कारणों से शिक्षा से वंचित न रहे।

समावेशी शिक्षा केवल विशेष जरूरतों वाले छात्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि यह उन सभी छात्रों के लिए है जो किसी भी प्रकार की भिन्नता रखते हैं - जैसे कि भाषा, जातीयता, लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, या सीखने की शैली। जिनेवा गे (2010) के

अनुसार, एक समावेशी शिक्षण वातावरण छात्रों की सांस्कृतिक विविधता को सम्मान और मान्यता देता है। चौधरी और गोपाल (2024) भी इस विचार का समर्थन करते हैं कि समावेशी शिक्षा विविध छात्र समूहों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शिक्षकों को अपनी शिक्षण रणनीतियों को अनुकूलित करने की आवश्यकता होती है।

12. सार्वभौमिक छात्र प्रभाव

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र केवल एक विशेष समूह के छात्रों के लिए लाभकारी नहीं है, बल्कि यह सभी छात्रों को लाभ पहुँचाता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षण करने पर सभी छात्रों की शैक्षणिक उपलब्धि में सुधार होता है, क्योंकि यह शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और व्यक्तिगत बनाता है।

जिनेवा गे (2010) बताती हैं कि जब शिक्षक छात्रों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझते हैं और उसे शिक्षण में शामिल करते हैं, तो इससे सीखने की प्रक्रिया अधिक प्रभावी होती है। चौधरी और गोपाल (2024) के अनुसार, समावेशी और सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र सभी जनसांख्यिकीय समूहों में शैक्षणिक प्रदर्शन में वृद्धि करता है, क्योंकि यह छात्रों को उनकी पृष्ठभूमि के अनुरूप संसाधन और समर्थन प्रदान करता है।

13. शिक्षक प्रशिक्षण

शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे सांस्कृतिक ज्ञान और प्रभावी शिक्षण विधियों को सीखें और उन्हें अपने शिक्षण में शामिल करें। शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों से आने वाले छात्रों की सीखने की आवश्यकताएँ भिन्न हो सकती हैं, और इसके लिए उन्हें अपनी शिक्षण रणनीतियों को समायोजित करने की आवश्यकता होती है।

जिनेवा गे (2010) के अनुसार, सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए शिक्षकों को पेशेवर प्रशिक्षण और विकास कार्यक्रमों की आवश्यकता होती है। चौधरी और गोपाल (2024) इस बात पर जोर देते हैं कि शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में सांस्कृतिक विविधता, पूर्वाग्रह मुक्त शिक्षण, और समावेशी शिक्षण पद्धतियों को शामिल किया जाना चाहिए ताकि शिक्षक विविध छात्रों के लिए बेहतर शिक्षण अनुभव बना सकें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के साथ सम्बन्ध

1. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020

एनईपी 2020 समावेशिता, समानता और शिक्षा में सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों की विविधता की पहचान करने पर बल देती है। यह नीति एक लचीली, शिक्षार्थी-केन्द्रित सीखने के वातावरण की वकालत करती है जो विभिन्न सांस्कृतिक और भाषाई पृष्ठभूमियों से आने वाले शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप होती है। सीआरटी एनईपीके दृष्टिकोण के

साथ मेल खाती है, क्योंकि यह सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक सामग्री और शिक्षण विधियों के एकीकरण को बढ़ावा देती है जो भारत की शिक्षार्थी संख्या की विविधता को दर्शाती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने विभिन्न प्रावधानों, जैसे - पैरा 4.4, पैरा 9.3(क), पैरा 11.6, पैरा 12.1, पैरा 12.2 और पैरा 12.6, में नवाचारी शिक्षण विधियों और उनके उच्च शिक्षा में योगदान की कल्पना करती है। एनईपी में बहुभाषावाद और स्थानीय ज्ञान के महत्व पर भी बल दिया गया है, जिसे सीआरटी क्षेत्रीय भाषाओं, परम्पराओं और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को पाठ्यक्रम में समाहित करके साकार कर सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान प्रस्तुत करती है।

मातृभाषा और स्थानीय भाषाओं में शिक्षा : नीति के अनुसार, अधिक उच्च शिक्षा संस्थान और कार्यक्रम मातृभाषा या स्थानीय भाषा में शिक्षा प्रदान करेंगे, जिससे भारतीय भाषाओं की शक्ति, उपयोग और जीवन्तता को बढ़ावा मिलेगा और पहुँच तथा सकल नामांकन अनुपात में बढ़ोतरी हो सके (अनुभाग 22.10)। यह सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र के साथ मेल खाता है, जो इस बात पर जोर देता है कि शिक्षण इस तरह किया जाए जो छात्रों की भाषाई पृष्ठभूमि को स्वीकार करे और उसका लाभ उठाए, जिससे समझ और सांस्कृतिक प्रासंगिकता बढ़े (गे, 2010; चौधरी और गोपाल, 2024)।

भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता वाले कार्यक्रम : नीति में अनुवाद और व्याख्या, कला और संग्रहालय प्रशासन, पुरातत्व, संरक्षण, ग्राफिक डिजाइन आदि क्षेत्रों में उच्च गुणवत्ता वाले कार्यक्रमों और डिग्रियों के निर्माण की बात कही गई है, जिससे भारतीय कला और संस्कृति का संरक्षण और संवर्धन हो सके (अनुभाग 22.11)।

'एक भारत श्रेष्ठ भारत' पहल के तहत पर्यटन स्थलों की पहचान : नीति के अनुसार, शिक्षार्थियों को भारत के विभिन्न हिस्सों की विविधता, संस्कृति, परम्पराओं और ज्ञान की समझ और प्रशंसा के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। इस पहल के तहत 100 पर्यटन स्थलों की पहचान की जाएगी (अनुभाग 22. 12)।

भारतीय भाषाओं में डिग्री पाठ्यक्रमों का विकास : नीति में भारतीय भाषाओं में और द्विभाषी रूप से पढ़ाए जाने वाले अधिक डिग्री पाठ्यक्रम विकसित करने की बात कही गई है, जिससे शिक्षा अधिक समावेशी और सुलभ हो सके। यह प्रावधान अनुभाग 14.4.2(छ) में वर्णित है।

समानता और समावेशन पर जोर : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 समानता पर विशेष ध्यान देती है, जिसका उद्देश्य सभी को, विशेष रूप से हाशिए पर रहने वाले और वंचित समुदायों को, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना है। यह उन बाधाओं को दूर करने का प्रयास करती है जो विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने से रोकती हैं (अनुभाग 6.2)। यह नीति एसईडीजी पर विशेष जोर देते हुए सभी छात्रों तक गुणवत्तापूर्ण

शिक्षा की समान पहुँच सुनिश्चित करती है (अनुभाग 14.1)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र का मुख्य लक्ष्य एक समान शिक्षण वातावरण बनाना है, जहाँ सभी छात्रों को सम्मानित और शामिल महसूस हो, यह सुनिश्चित करते हुए कि विभिन्न सांस्कृतिक पहचानों को प्रतिनिधित्व और महत्व दिया जाए (गे, 2010; चौधरी और गोपाल, 2024)।

सम्बद्धता और पहचान की भावना विकसित करना : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारत की सांस्कृतिक विविधता पर गर्व विकसित करने का लक्ष्य रखती है, जिससे ऐसी शिक्षा को बढ़ावा दिया जा सके जो सभी सांस्कृतिक पहचानों का सम्मान और उत्सव मनाए, और इस प्रकार छात्रों में जुड़ाव की भावना उत्पन्न करे। भारत के युवाओं को भारत देश के बारे में और इसकी विविध सामाजिक, सांस्कृतिक, और तकनीकी आवश्यकताओं सहित यहाँ की अद्वितीय कला, भाषा और ज्ञान परम्पराओं के बारे में ज्ञानवान बनाना राष्ट्रीय गौरव, आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, परस्पर सहयोग और एकता की दृष्टि से और भारत के सतत ऊंचाइयों की ओर बढ़ने की दृष्टि से अतिआवश्यक है (पृष्ठ 5, पैराग्राफ 11)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र सीधे छात्रों की सांस्कृतिक पहचान के विकास का समर्थन करता है, एक समावेशी वातावरण बनाकर जिसमें उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उनकी शिक्षा की सम्पत्ति के रूप में देखा जाता है। व्यक्तिगत शिक्षण दृष्टिकोणों का समर्थन करता है जो छात्रों की विविध सांस्कृतिक और शैक्षिक आवश्यकताओं का सम्मान और उत्तर देते हैं, जिससे आत्म-अभिव्यक्ति और चयन को प्रोत्साहन मिलता है (चौधरी और गोपाल, 2024: 3)।

कला, संस्कृति और स्थानीय परम्पराओं का एकीकरण : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 शिक्षा प्रणाली में कला, संगीत और पारम्परिक शिल्प को शामिल करने को प्रोत्साहित करती है, यह स्वीकार करते हुए कि वे सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और छात्रों को सीखने में संलग्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय कला एवं संस्कृति का संवर्धन न सिर्फ राष्ट्र बल्कि व्यक्तियों के लिए भी महत्वपूर्ण है। बच्चों में अपनी पहचान और अपनेपन के भाव तथा अन्य संस्कृतियों और पहचानों की सराहना का भाव पैदा करने के लिए सांस्कृतिक जागरूकता और अभिव्यक्ति जैसी प्रमुख क्षमताओं को बच्चों में विकसित करना जरूरी है (अनुभाग 22.2: 86)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र कला और स्थानीय परम्पराओं सहित सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक सामग्री के उपयोग का समर्थन करता है, ताकि छात्रों के सांस्कृतिक अनुभवों से सीखने को जोड़ा जा सके (चौधरी और गोपाल, 2024, पृ. 3)।

2. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफ) 2022

एनसीएफ 2022 शिक्षा के लिए एक समावेशी, समग्र और बहुविषयक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर बल देता है (एनसीएफएसई, 2022, पृ. 30, अनुभाग 12.4)। यह शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को दर्शाने वाली सन्दर्भित शिक्षा की आवश्यकता को भी महत्वपूर्ण मानता है। एनसीएफ शिक्षण और मूल्यांकन प्रथाओं में विभिन्न सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के एकीकरण का समर्थन करता है, जिससे सीआरटी इसके लक्ष्यों के लिए एक

स्वाभाविक मेल है। शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को शिक्षण प्रक्रिया में समाहित करके, सीआरटी शिक्षा प्रणाली को समावेशी, समान और सभी शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं के प्रति उत्तरदायी बनाने में योगदान कर सकता है (एनसीएफएसई, 2022: 76, खंड 3.2; एनसीएफएसई, 2023: 54)।

3. यूजीसी नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधार दिशा निर्देश (2022)

यूजीसी (2022) के नवाचारात्मक शिक्षण पद्धतियाँ एवं मूल्यांकन सुधार दिशानिर्देश सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण के साथ जुड़ते हैं क्योंकि ये समावेशी, विद्यार्थी-केन्द्रित और विविध शिक्षण-प्रक्रियाओं पर बल देते हैं। ये दिशानिर्देश अनुभवात्मक, जिज्ञासा-आधारित, समस्या-समाधान एवं अन्तर्विषयक शिक्षण पद्धतियों को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में स्थानीय ज्ञान, स्वदेशी प्रथाओं और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों का समावेश किया जा सके। इसके अतिरिक्त, ये दिशानिर्देश लचीले मूल्यांकन तरीकों पर बल देते हैं, जैसे कि पोर्टफोलियो-आधारित मूल्यांकन, सहकर्मी मूल्यांकन, सामुदायिक परियोजनाएँ और मौखिक परम्पराएँ, जो ज्ञान को अभिव्यक्त करने के विविध तरीकों को स्वीकार करते हैं। ये सुधार प्रासंगिक शिक्षण, बहुभाषी संसाधनों और सहभागी शिक्षण को बढ़ावा देते हैं, जिससे शिक्षा विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों के लिए अधिक सुलभ, प्रासंगिक और न्यायसंगत बनती है।

इसके अलावा, दिशानिर्देश संकाय प्रशिक्षण को बढ़ावा देते हैं ताकि शिक्षक समावेशी शिक्षण पद्धतियों को अपनाएँ जो विद्यार्थियों की सांस्कृतिक पहचान का सम्मान करती हैं और उन्हें पाठ्यक्रम में समाहित करती हैं। इन प्रयासों के माध्यम से, ये दिशानिर्देश भारत में न्यायसंगत, सांस्कृतिक रूप से जागरूक और सामाजिक रूप से न्यायसंगत उच्च शिक्षा प्रणाली को विकसित करने में सहायक सिद्ध होते हैं (नवाचारात्मक शिक्षण पद्धतियाँ एवं मूल्यांकन सुधार दिशानिर्देश, यूजीसी, 2022)।

4. उच्च शिक्षा संस्थानों को बहु-विषयक संस्थानों में परिवर्तित करने के दिशा-निर्देश (2022)

यूजीसी (2022) द्वारा जारी 'उच्च शिक्षा संस्थानों को बहु-विषयक संस्थानों में परिवर्तित करने के दिशा-निर्देश' सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं, क्योंकि वे समावेशी, विविध और लचीले शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देते हैं। ये दिशा-निर्देश अन्त:विषयक शिक्षा पर जोर देते हैं, जिससे क्षेत्रीय ज्ञान, स्वदेशी परम्पराओं और सांस्कृतिक विरासत को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जा सके, जिससे यह विभिन्न छात्र पृष्ठभूमियों के लिए अधिक प्रासंगिक बने। ये लचीले शिक्षण मार्गों का समर्थन करते हैं, जिससे छात्र अपने सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भों के अनुरूप शिक्षा से जुड़ सकें।

इसके अतिरिक्त, ये दिशा-निर्देश सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे स्थानीय उद्योगों और कारीगरों के साथ साझेदारी करके सांस्कृतिक रूप से निहित कौशल विकास को बढ़ावा दिया जा सके। साथ ही, शिक्षक प्रशिक्षण पर भी जोर दिया गया है ताकि शिक्षक सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण रणनीतियों को अपनाएँ। इसके अलावा, समग्र मूल्यांकन पद्धतियों की सिफारिश की गई है, जिसमें मौखिक परम्पराओं, सामुदायिक परियोजनाओं और व्यावहारिक अनुप्रयोगों को शामिल किया गया है, जो विभिन्न सांस्कृतिक अधिगम शैलियों को मान्यता देते हैं। कुल मिलाकर, ये दिशा-निर्देश भारत में एक अधिक न्यायसंगत, सांस्कृतिक रूप से जागरूक और समावेशी उच्च शिक्षा प्रणाली को विकसित करने में सहायक हैं (उच्च शिक्षा संस्थानों को बहु-विषयक संस्थानों में परिवर्तित करने के दिशा-निर्देश; यूजीसी, 2022)।

भारतीय सन्दर्भ में सीआरटी

भारतीय सन्दर्भ में, सीआरटी की अवधारणा देश की विशाल भाषाई, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता के कारण महत्वपूर्ण हो रही है। राव (2015) बताते हैं कि भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से 'एक आकार सभी के लिए उपयुक्त' शिक्षा मॉडल का पालन करती रही है, जो प्राय: शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विविधता को नजरअन्दाज करती है। इसका परिणाम विशेष रूप से ग्रामीण और हाशिए समुदायों के शिक्षार्थियों के शैक्षिक परिणामों में असमानता के रूप में सामने आता है। राव का तर्क है कि सीआरटी एक शक्तिशाली ढाँचा प्रदान करता है, जो इस अन्तर को दूर करने के लिए शिक्षण प्रथाओं को शिक्षार्थियों की विविध जरूरतों के अनुरूप ढालता है (राव, 2015: 89)।

नायक और रंजन (2019) अपने अध्ययन में भारत में शैक्षिक समानता सुधारने में सीआरटी की सम्भावनाओं का अन्वेषण करते हैं। वे यह बताते हैं कि भारतीय कक्षाओं में विभिन्न भाषाई, सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के शिक्षार्थी होते हैं। पाठ्यक्रम और शिक्षण रणनीतियों में सांस्कृतिक विविधता को शामिल करके, सीआरटी अधिक समावेशी कक्षाएँ बना सकता है जहाँ सभी शिक्षार्थियों को मूल्यवान और समर्थित महसूस हो। नायक और रंजन का शोध यह सुझाव देता है कि जबकि सीआरटी हाशिए पर रहने वाले समूहों की शैक्षिक जरूरतों को पूरा करने के लिए आवश्यक है, इसके कार्यान्वयन में शिक्षक प्रशिक्षण की कमी, शैक्षिक बदलावों का प्रतिरोध, और शिक्षा प्रणाली के केन्द्रीकरण के कारण समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। "भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली को एक ऐसी सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील शैक्षिक पद्धति को अपनाना चाहिए, जो शिक्षार्थियों की विविध सांस्कृतिक पहचानों को स्वीकार और समाहित करती हो" (पृ. 46)। यह बदलाव पाठ्यक्रम और शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक वास्तविकताओं के बीच के अन्तर को पाटने के लिए आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 और यूजीसी दिशानिर्देशों का परिचय इस विषय पर

एक राष्ट्रीय संवाद की शुरुआत कर चुका है, जिसमें सीआरटी के महत्व पर बल दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, साहा (2018) के अध्ययन में भारतीय उच्च शिक्षा प्रणाली में सांस्कृतिक विविधता को शामिल करने के लिए पाठ्यक्रम को अनुकूलित करने के महत्व पर चर्चा की गई है। साहा का शोध सुझाव देता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली पश्चिमी ज्ञान प्रणालियों पर अधिक बल देती है, जो गैर-पश्चिमी सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के शिक्षार्थियों को अलग-थलग कर सकती है। पाठ्यक्रम में स्थानीय संस्कृतियों, भाषाओं और परम्पराओं को समाहित करके, सीआरटी शिक्षार्थियों की संलग्नता को बढ़ा सकता है और एक सशक्त भावनात्मक सम्बन्ध पैदा कर सकता है, जो बेहतर शैक्षिक प्रदर्शन की ओर ले जा सकता है।

भारतीय सन्दर्भ में, पारम्परिक शिक्षा प्रणाली प्राय: एक समान दृष्टिकोण अपनाती है, जो शिक्षार्थी समुदाय की विविधता को नजरअन्दाज करते हैं। "कठोर पाठ्यक्रम ढाँचा भारतीय शिक्षार्थियों की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता का ध्यान नहीं रखता, जिसके परिणामस्वरूप कुछ समूहों का हाशियाकरण होता है" (राव, 2015: 89)। हालांकि, यह बढ़ती हुई पहचान है कि सीआरटी के सिद्धान्त भारतीय शिक्षा प्रणाली में उन शिक्षार्थियों के लिए जो हाशिए पर हैं, जैसे - दलित, आदिवासी, और ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाले शिक्षार्थी की असमानताओं को दूर करने के लिए आवश्यक हैं।

उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण को लागू करने के अवसर और चुनौतियाँ

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण (सीआरटी) को उच्च शिक्षा में लागू करने से समावेशी अध्ययन वातावरण को बढ़ावा देने के महत्वपूर्ण अवसर मिलते हैं। हालांकि, इस प्रक्रिया में कुछ चुनौतियाँ भी हैं जिन्हें संस्थानों, शिक्षकों और नीति निर्माताओं को सीआरटी के सफल एकीकरण को सुनिश्चित करने के लिए सम्बोधित करना होगा। यह खंड भारतीय उच्च शिक्षा के सन्दर्भ में सीआरटी के अपनाने से जुड़े अवसरों और अवरोधों को रेखांकित करता है, विशेष रूप से राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एनसीएफ) 2022, और यूजीसी दिशानिर्देशों (2022) को ध्यान में रखते हुए।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा को लागू करने के अवसर

1. समावेशी शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देना

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा यह अवसर प्रदान करती है कि कक्षाओं को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पहचान को महत्व देकर अधिक समावेशी बनाया जाए, और इन्हें शिक्षा में बाधा के रूप में नहीं बल्कि सम्पत्ति के रूप में पहचाना जाए (गे, 2018)। भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से विविध समाजों में, यह दृष्टिकोण हाशिए पर मौजूद समूहों जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, और अन्य पिछड़ा वर्ग के बीच उपलब्धि की खाई को कम करने

में सहायता कर सकता है (बैंक्स एवं बैंक्स, 2019)। एनईपी 2020 शिक्षा में समावेशिता और समानता पर बल देती है और संस्थानों को ऐसे शिक्षण अभ्यास अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है जो विविधता का सम्मान करते हैं और सभी शिक्षार्थियों के बीच एकजुटता की भावना को बढ़ावा देते हैं।

2. शिक्षार्थियों की संलिप्तता और शैक्षिक सफलता को बढ़ाना

अनुसन्धान दर्शाता है कि जब शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को शिक्षा प्रक्रिया में पहचाना जाता है, तो वे शैक्षिक रूप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं (बिलिंग्स, 1995)। सीआरटी शैक्षिकों को शिक्षार्थियों के वास्तविक अनुभवों, भाषाओं, और सांस्कृतिक प्रथाओं को सीखने के उपकरण के रूप में इस्तेमाल करने के लिए प्रोत्साहित करता है, जिससे शिक्षार्थियों की संलिप्तता और प्रेरणा के स्तर में वृद्धि होती है (हैममोंड, 2015)। यूजीसी (2022) के 'नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधारों के लिए दिशा-निर्देश' में सक्रिय शिक्षण रणनीतियों, जैसे - केस-आधारित शिक्षण, समूह परियोजनाएँ, और समस्या-समाधान कार्यों की अनुशंसा की गई है। ये रणनीतियाँ सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण सिद्धान्तों के साथ मेल खाती हैं, क्योंकि ये शिक्षार्थियों की कक्षा सामग्री को उनके वास्तविक जीवन के अनुभवों से जोड़ने की अनुमति देती हैं (नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधारों के लिए दिशा-निर्देश; यूजीसी, 2022: 22-25)।

सामाजिक न्याय और समानता को बढ़ावा देना

सीआरटी शिक्षा में ऐतिहासिक असमानताओं को सम्बोधित करने का अवसर प्रदान करता है, जो हाशिए समुदायों के बारे में दोष-आधारित कथाओं को चुनौती देकर और सांस्कृतिक रूप से सकारात्मक प्रथाओं को बढ़ावा देता हैं (सलीटेर, 2011)। उच्च शिक्षा संस्थान सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं, जो हाशिए समूहों के शिक्षार्थियों को सक्षम और योग्य शिक्षार्थियों के रूप में देखने का अवसर प्रदान करते हैं (हॉवर्ड, 2019)। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2022 शिक्षा में समानता-केन्द्रित शिक्षण रणनीतियों की सिफारिश करती है, जो शिक्षार्थियों के विविध सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भों का सम्मान करती हैं। यह दृष्टिकोण समावेशी शिक्षा को प्रोत्साहित करता है और शिक्षार्थियों की अद्वितीय आवश्यकताओं और अनुभवों को ध्यान में रखते हुए शिक्षण प्रक्रिया को डिजाइन करने पर बल देता है। (एनसीएफ, 2022: 35-38)।

समीक्षात्मक सोच और वैश्विक क्षमता का विकास

सीआरटी शिक्षार्थियों के सामाजिक मुद्दों को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखने के लिए प्रोत्साहित करके समीक्षात्मक सोच कौशल विकसित करने में सहायता करता है (पेरिस और आलिम, 2017)। एक वैश्विक दुनिया में, उच्च शिक्षा को शिक्षार्थियों के

अन्तर-सांस्कृतिक अन्त:क्रिया के लिए तैयार करना चाहिए, जिससे सीआरटी वैश्विक क्षमता और अन्तर-सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक हो जाता है (बैंक्स, 2016)।

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा को लागू करने में चुनौतियाँ

1. शिक्षक प्रशिक्षण और जागरूकता की कमी

सीआरटी को लागू करने में एक बड़ी चुनौती शिक्षक की तैयारी और जागरूकता की कमी है। कई शिक्षक सीआरटी के सिद्धान्तों से अपरिचित होते हैं और उनके शिक्षण अभ्यासों में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी रणनीतियों को एकीकृत करने के कौशल की कमी होती है (गे, 2002)।

एनईपी 2020 शिक्षकों के निरन्तर पेशेवर विकास पर जोर देता है, जिसमें समावेशी शिक्षण प्रथाओं का प्रशिक्षण भी शामिल है, जो विविध सांस्कृतिक और भाषाई आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायक हैं (अनुभाग 15.7)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र उन शिक्षकों पर निर्भर करता है जो सांस्कृतिक रूप से सक्षम होते हैं और जो अपने छात्रों की विविध आवश्यकताओं को पहचानने और उन्हें सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक शिक्षण विधियों के माध्यम से सम्बोधित करने में सक्षम होते हैं (चौधरी और गोपाल, 2024; गे, 2010)।

यूजीसी दिशानिर्देश शिक्षक के विकास कार्यक्रमों के महत्व पर बल देते हैं ताकि शिक्षकों की क्षमता को नवाचारी और समावेशी शिक्षण विधियों के लिए बढ़ाया जा सके (नवाचारात्मक शिक्षण पद्धतियाँ एवं मूल्यांकन सुधार दिशानिर्देश, यूजीसी, 2022) हालांकि, सीआरटी पर केन्द्रित संरचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कमी भारत में एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है (कुमार, 2021)। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण, संस्थागत समर्थन, नीति सुधार और संसाधन विकास की आवश्यकता है (चौधरी और गोपाल, 2024; गे, 2010)।

सम्भावित समाधान

- उच्च शिक्षा संस्थानों में सीआरटी पर नियमित कार्यशालाएँ और प्रमाणन पाठ्यक्रम शुरू किए जाएँ।
- शिक्षक शिक्षा कार्यक्रमों में सीआरटी को अनिवार्य रूप से शामिल किया जाए।

2. परिवर्तन के प्रति प्रतिरोध

कई शिक्षक और संस्थान नए शिक्षण अभ्यासों को अपनाने में प्रतिरोधी हो सकते हैं, क्योंकि पारम्परिक मानसिकताएँ और कठोर शैक्षिक संरचनाएँ होती हैं (हॉवर्ड, 2019)। सीआरटी पुराने यूरोकेन्द्रिक पाठ्यक्रमों को चुनौती देता है और शिक्षकों को कक्षा में अपनी भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के बारे में फिर से सोचने की आवश्यकता प्रदान करता है

(सलीटेर, 2011)। ऐसे परिवर्तन, विशेष रूप से उन उच्च शिक्षा संस्थानों में जो पारम्परिक शैक्षिक पद्धतियों में गहरे रूप से निहित हैं, प्रतिरोध का सामना कर सकते हैं (बैंक्स, 2016)।

सम्भावित समाधान

- संस्थानों में संवेदनशीलता बढ़ाने के लिए संवाद सत्रों का आयोजन किया जाए।
- प्रशासनिक और नीति स्तर पर समर्थन बढ़ाने के लिए नीति निर्माताओं और शिक्षकों के बीच चर्चा हो।

3. सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण संसाधनों की कमी

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण सामग्री की कमी एक महत्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करती है। कई पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में पश्चिमी दृष्टिकोण हावी होते हैं, जिससे शिक्षकों के लिए स्थानीय सांस्कृतिक सन्दर्भों को अपने शिक्षण में एकीकृत करना कठिन हो जाता है (पेरिस, 2012)। एनसीएफ 2022 स्थानीयकृत और सन्दर्भित पाठ्यक्रमों की माँग करता है, जो क्षेत्रीय भाषाओं, परम्पराओं और इतिहास को दर्शाते हैं, लेकिन ऐसे संसाधनों को विकसित करना समय, वित्तीय सहायता और संस्थागत समर्थन की आवश्यकता होती है।

सम्भावित समाधान

- शिक्षकों को स्थानीय सांस्कृतिक सन्दर्भों पर आधारित शिक्षण सामग्री तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
- क्षेत्रीय भाषाओं, परम्पराओं और इतिहास को दर्शाने वाले डिजिटल संसाधनों और ओपन-एक्सेस कंटेंट का विकास किया जाए।

4. मूल्यांकन और परीक्षण चुनौतियाँ

सीआरटी को लागू करने के लिए पारम्परिक मूल्यांकन विधियों के पुनः मूल्यांकन की आवश्यकता होती है, जो अक्सर मानकीकृत और सांस्कृतिक रूप से पक्षपाती होती हैं (हैममोंड, 2015)। सीआरटी शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों और सीखने की शैलियों पर विचार करते हुए अधिक समग्र और लचीले मूल्यांकन की आवश्यकता को उजागर करता है (गे, 2018)। यूजीसी दिशानिर्देश (2022) मानकीकृत परीक्षा से अधिक विविध मूल्यांकन प्रारूपों जैसे पोर्टफोलियो, परियोजनाओं और चिन्तनात्मक निबन्धों के लिए स्थानान्तरित होने का सुझाव देते हैं, लेकिन इन सुधारों को बड़े संस्थानों में लागू करना सीमित संसाधनों के साथ चुनौतीपूर्ण हो सकता है (यूजीसी, 2022: 31-32, खंड 14)।

सम्भावित समाधान

- संस्थानों में बहुस्तरीय मूल्यांकन पद्धतियों को अपनाने पर बल दिया जाए।
- मूल्यांकन विधियों को अधिक समावेशी और बहुसांस्कृतिक बनाने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाए।

5. संस्थागत प्रतिबन्ध और नीति अन्तराल

एनईपी 2020 जैसे नीति प्रयासों के बावजूद, संस्थागत प्रतिबन्ध और नीति अन्तराल सीआरटी को उच्च शिक्षा में लागू करने में बाधा डालते हैं। कठोर संस्थागत नीतियाँ, निधियों की कमी और प्रशासनिक समर्थन का अभाव शिक्षकों को सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी प्रथाओं को अपनाने में कठिनाई उत्पन्न करता है (बैंक्स एवं बैंक्स, 2019)। इसके अतिरिक्त, नीति निर्माताओं को यह स्पष्ट मार्गदर्शन प्रदान करने की आवश्यकता है कि सीआरटी सिद्धान्तों को कक्षा अभ्यासों में कैसे अनुवादित किया जाए (कुमार, 2021)।

सम्भावित समाधान

- सीआरटी-समर्थित शिक्षण कार्यक्रमों के लिए नीति निर्माण और वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाए।
- उच्च शिक्षा संस्थानों में सीआरटी की प्रभावशीलता पर शोध को बढ़ावा दिया जाए।

6. भाषा और बहुभाषावाद

भाषा विविधता भारतीय उच्च शिक्षा में एक अवसर और चुनौती दोनों है। जबकि बहुभाषावाद शिक्षार्थियों को अपनी मातृभाषाओं में व्यक्त करने की अनुमति देकर सीखने को बढ़ावा दे सकता है, यह कई भाषाओं में समावेशी शिक्षण सामग्री बनाने में व्यावहारिक चुनौतियाँ उत्पन्न करता है (हैममोंड, 2015)। एनईपी 2020 बहुभाषी शिक्षा को बढ़ावा देने की वकालत करता है (एनईपी 2020; पृ. 7 और अनुभाग 4.11), लेकिन उच्च शिक्षा में इस नीति को लागू करना महत्वपूर्ण संसाधन आवंटन की आवश्यकता है।

सम्भावित समाधान

- स्थानीय भाषाओं में शिक्षण सामग्री विकसित करने के लिए डिजिटल तकनीकों का उपयोग किया जाए।
- बहुभाषी शिक्षण को प्रभावी बनाने के लिए द्विभाषी शिक्षण मॉडल अपनाए जाएँ।

पिरामिड : सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा (सीआरटी) लागू करने की प्रक्रिया

नीचे दिए गए पिरामिड भारतीय सन्दर्भ में उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायीशिक्षा (सीआरटी) लागू करने के महत्वपूर्ण कदमों को दर्शाता है।

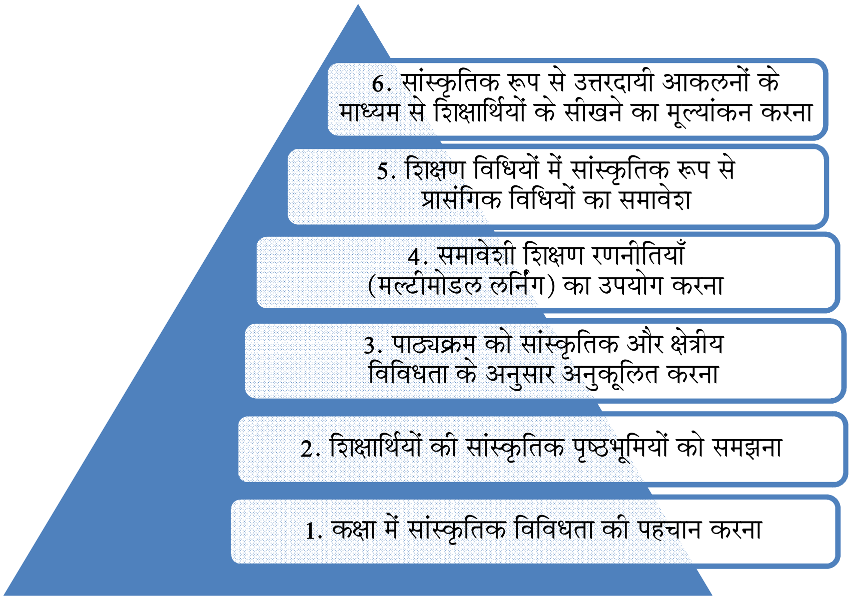

कदम 1 : कक्षा में सांस्कृतिक विविधता की पहचान करना

पहला कदम शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को पहचानना है। इसमें शिक्षार्थियों की जातीय, भाषाई और सामाजिक पहचान को समझना और यह देखना शामिल है कि ये कैसे उनके सीखने पर प्रभाव डालती हैं। भारतीय सन्दर्भ में, कक्षाओं में विभिन्न जातियों, जनजातियों और भाषाई अल्पसंख्यकों के शिक्षार्थी हो सकते हैं। शिक्षकों को प्रत्येक शिक्षार्थी द्वारा लाई गई सांस्कृतिक पूंजी का मूल्यांकन करना होगा और क्षेत्रीय भाषाओं, परम्पराओं और मूल्यों को ध्यान में रखना होगा।

गतिविधियाँ

- शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों के बारे में जानने के लिए सर्वेक्षण करें।
- समूह चर्चा आयोजित करें जहाँ शिक्षार्थी अपने सांस्कृतिक अनुभवों को साझा करें।

कदम 2 : शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को समझना

शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक सन्दर्भ को समझने में जाति, धर्म, भाषा, लिंग और क्षेत्रीय रीति-रिवाजों का शिक्षार्थियों के दृष्टिकोणों पर प्रभाव जानना शामिल है। भारत में, शिक्षकों को विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों के सन्दर्भ में संवेदनशील होना चाहिए।

गतिविधियाँ

- व्यक्तिगत अनुभवों को साझा करने के लिए कहानी सुनाने का उपयोग करें।
- भारत में विभिन्न सांस्कृतिक प्रथाओं पर वैयक्तिक अध्ययन सम्मिलित करें।

कदम 3 : पाठ्यक्रम को सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता के अनुसार अनुकूलित करना

एक सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील पाठ्यक्रम शिक्षार्थियों की विविध पहचान को दर्शाता है। भारत में, इसका तात्पर्य है स्थानीय भाषाओं, इतिहासों और सांस्कृतिक कथाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना। पाठ्यक्रम को सभी समुदायों की सांस्कृतिक सम्पत्ति का उत्सव मनाना चाहिए, विशेष रूप से उन समुदायों का जो ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे हैं।

गतिविधियाँ

- पाठों में क्षेत्रीय साहित्य और ऐतिहासिक कथाओं को सम्मिलित करें।
- प्रमुख अवधारणाओं को पढ़ाने के लिए स्थानीय उदाहरणों और वैयक्तिक अध्ययन का उपयोग करें।

कदम 4 : समावेशी शिक्षण रणनीतियाँ (मल्टीमोडल लर्निंग) का उपयोग करना

समावेशी शिक्षण रणनीतियाँ विभिन्न सीखने की शैलियों के अनुरूप कई विधियों का उपयोग करती हैं। भारतीय सन्दर्भ में, इसमें शिक्षण उपकरण के रूप में कहानी सुनाने, संगीत, पारम्परिक कला रूपों और क्षेत्रीय शिल्प का समावेश हो सकता है। मल्टीमोडल लर्निंग सामग्री को सभी शिक्षार्थियों के लिए अधिक सुलभ बनाती है।

गतिविधियाँ

- अवधारणाओं को सिखाने के लिए क्षेत्रीय मुहावरे और लोक कथाओं का उपयोग करें।
- दृश्य सहायक, वीडियो और इंटरएक्टिव लर्निंग उपकरण सम्मिलित करें।

कदम 5 : शिक्षण विधियों में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी विधियों का समावेश

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी विधियाँ शिक्षार्थियों के सांस्कृतिक अनुभवों को सीखने के संसाधन के रूप में महत्व देती है। भारतीय शिक्षक को शिक्षार्थियों की मातृभाषाओं, अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों को शिक्षण में महत्व देना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, त्योहारों या परम्पराओं को पाठों में सम्मिलित करना शिक्षार्थियों की भागीदारी और सांस्कृतिक पहचान के प्रति सम्मान को बढ़ावा देता है।

गतिविधियाँ

- महत्वपूर्ण सांस्कृतिक आयोजनों (जैसे पोंगल, ईद, दीवाली) के चारों ओर पाठ योजना बनाएँ।
- शिक्षार्थियों को अपने समुदाय की विशिष्ट परम्पराओं को प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित करें।

कदम 6 : सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी आकलनों के माध्यम से शिक्षार्थियों के सीखने का मूल्यांकन करना

आकलन को शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए और किसी भी प्रकार के पक्षपात से बचना चाहिए। भारत में, पारम्परिक परीक्षाएँ हमेशा शिक्षार्थियों की क्षमताओं को सही ढंग से प्रतिबिम्बित नहीं करती हैं, विशेष रूप से पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों के लिए। सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील आकलन में मौखिक कहानी सुनाना, समूह परियोजनाएँ और समुदाय-आधारित कार्य शामिल हैं।

गतिविधियाँ

- शिक्षार्थियों की प्रगति को दर्ज करने के लिए पोर्टफोलियो आकलन का उपयोग करें।
- ऐसे आकलन आयोजित करें जो शिक्षार्थियों से उनके सांस्कृतिक सन्दर्भ में ज्ञान लागू करने हेतु आवश्यक हों।

निष्कर्ष

सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा एक शक्तिशाली दृष्टिकोण है जो एक समावेशी और समान शैक्षिक प्रणाली बनाने में सहायता करती है। शिक्षार्थियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमियों को पाठ्यक्रम और शिक्षण रणनीतियों में एकीकृत कर, सीआरटी शैक्षिक सफलता, समीक्षात्मक सोच और सामाजिक न्याय को बढ़ावा देती है। सीआरटी का एनईपी 2020, एनसीएफ 2022 और यूजीसी दिशानिर्देशों के साथ मेल खाने से भारतीय उच्च शिक्षा में इसके लागू होने के लिए एक मजबूत ढाँचा प्रदान होता है। हालांकि चुनौतियाँ बनी हुई हैं, लेकिन सीआरटी द्वारा शिक्षा को रूपान्तरित करने और एक अधिक समावेशी शिक्षण वातावरण को बढ़ावा देने के विशाल अवसर हैं। हालाँकि चुनौतियाँ कई हैं, लेकिन सही रणनीतियों और नीतिगत हस्तक्षेपों के माध्यम से इनका समाधान किया जा सकता है। सीआरटी पर केन्द्रित संरचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कमी भारत में एक महत्वपूर्ण बाधा बनी हुई है। सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षा को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण, संस्थागत समर्थन, नीति सुधार और संसाधन विकास की आवश्यकता है। सीआरटी का प्रभावी कार्यान्वयन भारतीय उच्च शिक्षा को अधिक समावेशी, विविधतापूर्ण और नवाचार-उन्मुख बना सकता है।

सन्दर्भ

बैंक्स, जे.ए. (2016). *सांस्कृतिक विविधता और शिक्षा : आधार, पाठ्यक्रम और शिक्षण* (षष्ठ संस्करण). रूटलेज.

बैंक्स, जे.ए. एवं बैंक्स, सी.ए.एम. (सम्पा.). (2004). *बहुसांस्कृतिक शिक्षा पर शोध की मार्गदर्शिका* (द्वितीय संस्करण). जोसी-बास.

बैंक्स, जे.ए. एवं बैंक्स, सी.ए.एम. (2019). *बहुसांस्कृतिक शिक्षा : मुद्दे और दृष्टिकोण* (दशम संस्करण). वाइली.

बैसी, एम.ओ. (2016). 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण : शैक्षिक न्याय के लिए निहितार्थ'. *शैक्षिक नींव,* 30(1-4), 49-64.

चौधरी, एस. एवं गोपाल, पी. (2024). 'कक्षा में पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र'. *लाइब्रेरी प्रोग्रेस इंटरनेशनल,* 44(3), 25259-25270.

क्लार्क, आर. (2023). 'माध्यमिक शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण'. *शैक्षिक अनुसन्धान और अभ्यास जर्नल,* 17(2), 211-230.

गे, जी. (2000). *सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण : सिद्धान्त, अनुसन्धान और अभ्यास.* टीचर्स कॉलेज प्रेस.

गे, जी. (2002). 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण के लिए तैयारी'. *शिक्षक शिक्षा जर्नल,* 53(2), 106-116. https://doi.org/10.1177/0022487102053002003

गे, जी. (2010). *सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण : सिद्धान्त, अनुसन्धान और अभ्यास* (द्वितीय संस्करण). टीचर्स कॉलेज प्रेस.

गे, जी. (2018). *सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण : सिद्धान्त, अनुसन्धान और अभ्यास* (तृतीय संस्करण). टीचर्स कॉलेज प्रेस.

गीयरहार्ट, एम. (2019). 'समावेशी शिक्षण पद्धतियाँ और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व'. *शिक्षण और शिक्षक शिक्षा,* 25(4), 78-93.

हैममोंड, ज. (2015). *सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण और मस्तिष्क.* कॉरविन प्रेस.

हॉवर्ड, टी.सी. (2019). *स्कूलों में नस्ल और संस्कृति क्यों मायने रखते हैं.* टीचर्स कॉलेज प्रेस.

हॉयट, सी., हंट, टी. एवं लवेट, ए. (2022). 'शिक्षा में समानता और समावेशन'. *समानता और उत्कृष्टता शिक्षा में,* 55(1), 10-28.

कुमार, ए. (2019). 'भारतीय शिक्षा में स्वदेशी ज्ञान का एकीकरण'. *अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक अध्ययन जर्नल,* 14(2), 97-112.

मॉल, डी., अमन्ती, सी., नेफ, डी. एवं गोंजालेज, एन. (1992). 'शिक्षण के लिए ज्ञान के स्रोत'. *थ्योरी इन टु प्रैक्टिस,* 31(2), 132-141.

मुनीज, जे. (2019). 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण : 21वीं सदी का दृष्टिकोण'. *शैक्षिक नेतृत्व,* 76(5), 14-20.

नायक, एस. एवं रंजन, पी. (2019). 'भारत में शैक्षिक समानता के लिए सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र'. *भारतीय शिक्षा अध्ययन जर्नल,* 27(2), 40-52.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी). (2020). शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार. https://www.education.gov.in/nep2020.

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी). (2022). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ).* नई दिल्ली : एनसीईआरटी.

पेरिस, डी. (2012). 'सांस्कृतिक रूप से सतत शिक्षाशास्त्र'. *शैक्षिक अनुसन्धानकर्ता,* 41(3), 93-97.

पाशा, एस. (2012). 'बहुसांस्कृतिक भारत में सामाजिक न्याय और शिक्षा'. *अन्तर्राष्ट्रीय बहुसांस्कृतिक शिक्षा जर्नल,* 14(1), 21-38.

पेड्रोसो, आर., सासाना, डी. एवं वेलेंसिया, जे. (2023). 'शिक्षकों के दृष्टिकोण'. *बहुसांस्कृतिक शिक्षा जर्नल,* 28(1), 33-52.

राव, एम. (2015). 'भारतीय उच्च शिक्षा में सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण'. *उच्च शिक्षा अनुसन्धान जर्नल,* 18(3), 85-94.

राजगोपाल, के. (2011). *क्रिएट सक्सेस : अनलॉकिंग द पोटेंशियल ऑफ अर्बन स्टूडेंट्स.* एएससीडी.

साहा, आर. (2018). 'सांस्कृतिक विविधता को समाहित करने की आवश्यकता'. *शैक्षिक नीति और अनुसन्धान जर्नल,* 22(1), 112-128.

सलीटेर, एम. (2011). 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षण के माध्यम से समानतापूर्ण शिक्षा'. *शिक्षा में सामाजिक न्याय जर्नल,* 6(4), 55-72.

सिंह, व. (2022). 'माध्यमिक विद्यालयों में बहुसांस्कृतिक शिक्षा'. *अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा नीति जर्नल,* 20(1), 121-138.

सिंह, श.प. (2022). 'छात्रों की सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षाशास्त्र के प्रति धारणाएँ'. *वॉयस ऑफ टीचर्स एंड टीचर एजुकेटर,* 1-15.

शर्मा, आर. एवं गुप्ता, एम. (2018). 'भारतीय शिक्षा में स्थानीय परम्पराएँ'. *भारतीय शिक्षा और समाज जर्नल,* 12(3), 77-89.

टैगोर, र. (1921). *भारत में शिक्षा की समस्या.* विश्व-भारती प्रेस.

विलेगास, ए.एम. एवं लुकास, टी. (2007). 'सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी शिक्षक'. *शैक्षिक नेतृत्व,* 64(6), 28-33.

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी). (2022). *नवाचारी शैक्षिक दृष्टिकोण और मूल्यांकन सुधारों के दिशा-निर्देश.* नई दिल्ली.

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी). (2020). *उच्च शिक्षा में समावेशी एवं बहुसांस्कृतिक शिक्षण हेतु नीति.* https://www.ugc.ac.in

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 29-38)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

कुशल नेतृत्व विकास के लिए गाँधीवादी विचारों का अन्वेषण

रुचि द्विवेदी*

आधुनिक नेतृत्व को मूल्यों, हितों और माँगों के सन्तुलन के साथ विविध स्थितियों का प्रबन्धन करना होता है जिसमें अनिश्चितता और अपेक्षाएँ अधिक हैं। पुरानी प्रशासनिक शैली के विपरीत नया नेतृत्व मार्गदर्शन सुविधा और प्रेरणा पर केन्द्रित है। अच्छे नेतृत्व में शक्ति का बुद्धिमानी से उपयोग महत्वपूर्ण है। महात्मा गाँधी सर्वश्रेष्ठ नेता के उदाहरण हैं जो सभी में क्षमता देखते थे। उनका मानवता में अटूट विश्वास अहिंसा के सिद्धान्त का आधार बना जो संघर्ष, नकारात्मकता और संसाधनों की बर्बादी के बिना समस्याओं से निपटने की शक्ति देता है। गाँधीवादी सिद्धान्तों से यह स्पष्ट होता है कि सभी में अच्छाई देखने वाला उन्हें नुकसान पहुँचाने की इच्छा नहीं रख सकता। दैनिक जीवन में कई नेतृत्व कौशल महत्वपूर्ण हैं जो केवल विशिष्ट भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं। शोधपत्र कुछ सार्वभौमिक जीवन कौशलों को गाँधीजी के आदर्श उदाहरणों से जोड़कर यह दर्शाने का प्रयास है कि उनके अनुभव आज भी कुशल नेतृत्व के लिए प्रासंगिक हैं।

मुख्य शब्द : आधुनिक नेतृत्व, गाँधीवादी नेतृत्व, कुशल नेतृत्व, अहिंसा।

---

*सहायक प्रोफेसर, केन्द्रीय शैक्षिक प्राद्योगिकी संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली. **E-mail: ruchi.dwivedi@ciet.nic.in**

प्रस्तावना

यह समझना महत्वपूर्ण है कि नेताओं को सन्तुलन के लिए प्रयास करते हुए असंख्य जीवन स्थितियों, मूल्यों, रुचियों और माँगों का सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता होती है। समकालीन दृष्टिकोण से वर्तमान युग में नेता अत्यधिक अपेक्षाओं और बढ़ती अनिश्चितताओं का सामना कर रहे हैं। हालाँकि यह कहना उचित होगा कि आज विकल्पों की विस्तृत शृंखला उपलब्ध है लेकिन सहनशीलता का स्तर कम हुआ है और स्व-हित पर भी अधिक ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। सन्तुष्टि, आवश्यकता और वफादारी की अवधारणाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। इन कारकों के सामूहिक विश्लेषण से नेतृत्व के पारम्परिक दृष्टिकोण जो प्रशासन और निर्देशन पर आधारित हैं और आधुनिक मॉडल जो मार्गदर्शन सुविधा प्रदान करने और प्रेरणा देने पर केन्द्रित है - के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर देखा जा सकता है।

युक्ल (2002) के अनुसार किसी भी नेता की प्रभावशीलता सत्ता पर अधिकार होने से नहीं अपितु इस बात से निर्धारित होती है कि वे अपने ज्ञान और कौशल का उपयोग किस प्रकार करते हैं। हमारे बीते हुए समय में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्होंने लगातार इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ऐसे ही एक असाधारण नेता के प्रतीक के रूप में मोहनदास करमचन्द गाँधी का उदाहरण स्पष्ट रूप से दिया जा सकता है। उन्हें भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेतृत्व में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के लिए व्यापक रूप के लिए जाना जाता है। इतना ही नहीं, उन्हें भारत के एक पूजनीय महात्मा के रूप में उनके बदलाव के लिए भी सराहा जाता है।

गाँधीजी का विश्लेषण करते समय यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें जीवन के सभी क्षेत्रों के व्यक्तियों को समाहित करने, उनका सूक्ष्म अवलोकन करने और आलोचनात्मक विश्लेषण के माध्यम से उनके विशिष्ट गुणों को पहचानने की क्षमता थी जिसके लिए उन्हें व्यापक रूप से सराहा जाता है। वॉटकिंस (2013) ने नेतृत्व के सन्दर्भ में इस बात पर प्रकाश डाला था कि जब कोई व्यक्ति हमारी क्षमता को पहचानता है और हमारी क्षमताओं में दृढ़ विश्वास व्यक्त करता है तो यह प्राय: हमें उन उच्च स्तरों को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है जिन तक हम अन्यथा नहीं पहुँच पाते। मानवता के कल्याण में इस दृढ़ विश्वास ने गाँधीजी के एक अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त अहिंसा को जन्म दिया। यह समझना जरूरी है कि अहिंसा को एक मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में अपनाने से मानवता का ही उत्थान होता है। यह व्यक्तियों को संघर्ष, विनाशकारी भाषा अथवा संसाधनों के अपव्यय का आश्रय लिए बिना किसी भी परिस्थिति का सामना करने की क्षमता प्रदान करता है। गाँधीवादी सिद्धान्तों के महत्व की जाँच करते हुए बोंडुरेंट (1967) ने अपने कार्य में प्रस्तुत किया कि यह स्पष्ट है कि जब व्यक्ति दूसरों में सकारात्मक गुणों को समझने में सक्षम होते हैं तो उनमें दुर्भावना रखने की सम्भावना कम हो जाती है।

अनेक आवश्यक नेतृत्व कौशल हैं जो हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान में नेतृत्व के पदों पर आसीन व्यक्ति केवल राजनेता, प्रबन्धक अथवा साधारण अध्यक्ष तक ही सीमित नहीं हैं। जीवन में कुछ ऐसे गुण होते हैं जो उम्र या जिन्दगी के किसी भी दौर में हर व्यक्ति के लिए जरूरी हैं। इस परिप्रेक्ष्य में लेखक अनेक ऐसे कौशलों को प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है जो आयु, नस्ल अथवा लिंग के भेदभाव के बिना किसी भी सन्दर्भ में व्यक्तियों के लिए सार्वभौमिक रूप से प्रासंगिक हैं। इन कौशलों को सफलता के लिए अपरिहार्य माना जा सकता है। यह सर्वविदित है कि हमारे प्रतिष्ठित नेता गाँधीजी ने इन कौशलों का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। अनेक वर्षों के उपरान्त भी हम प्रभावी नेतृत्व के विकास के लिए उनके कौशल और अनुभवों से सीख सकते हैं।

कौशल-आधारित नेतृत्व सिद्धान्त

समय के साथ नेतृत्व की अवधारणा और इसकी समझ विकसित होती गई है। अनेक व्यक्ति इसे प्रभाव के प्रतीक के रूप में देखते हैं। कुछ इसे बड़ी संख्या में अनुयायियों से जोड़कर देखते हैं। यह एक विशिष्ट विशेषता है जो उन्हें दूसरों से भिन्न करती है। यह एक ऐसी विरासत है जो पीढ़ियों तक चली आती है। हॉर्नर (1997) ने नेतृत्व सिद्धान्त पर विस्तृत चर्चा करते हुए यह मत व्यक्त किया कि नेतृत्व के समकालीन सिद्धान्त प्रभावी नेतृत्व के मूल तत्वों को निरन्तर समझने का प्रयास करते हैं। नेतृत्व सिद्धान्तों के पदानुक्रम में राष्ट्र की वर्तमान स्थिति और सामाजिक आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त उभरता है: कौशल-आधारित नेतृत्व सिद्धान्त। ग्रीन और लियोनार्ड ने इस सिद्धान्त पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि प्रभावी नेताओं के पास समय के साथ विकसित किए गए कौशलों का एक सुदृढ़ समूह होना चाहिए। यह सिद्धान्त उन घटकों का विश्लेषण करता है जो एक प्रभावी नेता का निर्माण करते हैं और किसी भी सन्दर्भ के लिए उपयुक्ततम नेता की पहचान करने में सहायक अन्तर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

नेतृत्व कोई ऐसी भूमिका नहीं है जो व्यक्ति को जन्मजात प्राप्त होती है। हेफेट्ज और लॉरी (2001) ने इस सन्दर्भ में तर्क प्रस्तुत किया कि मात्र नेता या अध्यक्ष की मानसिकता के साथ किसी संगठन में प्रवेश करना और सहकर्मियों, अधीनस्थों अथवा अन्य अधिकारियों का नेतृत्व करने की अपेक्षा करना पर्याप्त नहीं है। अपितु किसी व्यक्ति के पास दूसरों का प्रभावी नेतृत्व करने की जिम्मेदारी वहन करने के लिए आवश्यक गुणों और अनुभवों का होना अनिवार्य है। आवश्यकताओं और लक्ष्यों की पूर्ति के लिए नेतृत्व कौशल का विकास भी अनिवार्य है। भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध राष्ट्र में एक नेता के लिए विविध विचारों और पृष्ठभूमियों वाले व्यक्तियों का समर्थन प्राप्त करने हेतु विभिन्न दृष्टिकोणों की समझ महत्वपूर्ण है।

गाँधीवादी विचारधारा के माध्यम से कुशल नेतृत्व का अवलोकन

1 सितम्बर 1921 को यंग इंडिया में प्रकाशित 'राष्ट्रीय शिक्षा' शीर्षक वाले एक लेख में महात्मा गाँधी ने यह विचार व्यक्त किया कि यद्यपि यह अन्य राष्ट्रों के लिए सत्य हो सकता है लेकिन भारत में जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि में संलग्न है और उद्योगों में एक छोटा अंश कार्यरत है शिक्षा को पूर्णत: साहित्यिक गतिविधियों तक सीमित करना हानिकारक होगा (कुमार, 2018)। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि शिक्षा में न केवल साहित्यिक ज्ञान अपितु नैतिक, आध्यात्मिक, शारीरिक, चारित्रिक, सांस्कृतिक और मानसिक पहलुओं सहित व्यक्ति का समग्र विकास समाहित होना चाहिए। कालान्तर में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सभी क्षेत्रों में व्यक्तिगत विकास के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। व्यक्तियों को आत्मनिर्भरता और समग्र विकास अर्जित करने हेतु शारीरिक और बौद्धिक विकास के साथ-साथ नैतिक उत्थान को प्राथमिकता प्रदान करना भी आवश्यक है।

गाँधीजी ने जो अहिंसा और दीर्घकालिक जिन्दगी का सन्देश दिया है वो एक पुरानी और अच्छी परम्परा की निशानी है जिसे हमारे भारत की संस्कृति में हमेशा से बहुत जरूरी माना गया है। यद्यपि उनके विचारों का प्रसार विभिन्न युगों में हुआ तथापि उनकी प्रासंगिकता आज भी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विद्यमान है। ऑर्गन (1996) ने दृढ़तापूर्वक प्रतिपादित किया कि नेतृत्व केवल किसी व्यक्ति के जन्मसिद्ध गुणों पर आधारित नहीं होता। कौशल दृष्टिकोण किसी व्यक्ति की नेतृत्व क्षमता के विकास में उसके अनुभवों, परीक्षणों और विकासात्मक चरणों के महत्व पर बल देता है। जीवन के ये विभिन्न चरण सम्पूर्ण जीवनकाल में बहुमूल्य कौशल अर्जित करने में सहायक होते हैं। गाँधीवादी विचारों और व्यक्तिगत अनुभवों से प्राप्त अन्तर्दृष्टि के आधार पर यह स्पष्ट है कि व्यवसाय संस्थानों अथवा बड़े संगठनों में नेतृत्व भूमिका प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों के पास आवश्यक कौशलों का एक समूह होना चाहिए।

गाँधीजी की कुशल नेतृत्व कला

गाँधीजी के जीवन के अनुभवों को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य उन कौशलों को रेखांकित करना है जिन्होंने उन्हें एक महान नेता बनाया, साथ ही विचारों के निर्माण में विश्वसनीय साक्ष्यों के महत्व पर बल देना है। अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि गाँधीजी समय के प्रति अपनी निष्ठा में अत्यन्त कर्मठ थे। उन्होंने समानताओं का चित्रण करते हुए तथा जीवन और व्यक्तिगत अनुभवों के साथ सम्बन्धों का अन्वेषण करते हुए समय की अवधारणा का विश्लेषण किया। उन्हें प्राय: देश के विभिन्न भागों से अनेक पत्र और पोस्टकार्ड प्राप्त होते थे और वे निरन्तर उनका त्वरित प्रत्युत्तर देना अपनी प्राथमिकता मानते थे। उन्होंने कभी किसी के समक्ष अपनी अत्यधिक जिम्मेदारियों का उल्लेख नहीं किया। जो भी व्यक्ति उनसे भेंट करने आता था, वे उसका हार्दिक स्वागत करते थे और उससे संवाद करते थे, चाहे वह व्यावसायिक उद्देश्य से हो अथवा परामर्श प्राप्त करने के लिए।

समुचित उद्देश्य का चयन प्रत्येक विवेकशील नेता का प्राथमिक दायित्व है। गाँधीजी अपने चरित्र में अन्तर्निहित एक असाधारण इच्छाशक्ति से सम्पन्न थे। दक्षिण अफ्रीका के पीटरमैरिट्जबर्ग रेलवे स्टेशन पर एक परिवर्तनकारी अनुभव के पश्चात् उन्होंने अन्याय का प्रतिरोध करने के लिए दृढ़ संकल्प प्रदर्शित किया। उन्होंने स्वयं को अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए समर्पित कर दिया और आजीवन इस उद्देश्य के प्रति निष्ठावान रहे। उनकी जिन्दगी का लक्ष्य समय, परिस्थितियाँ या उनके सामने आने वाली किसी भी चुनौती से वैसा का वैसा बना रहा। वे सदैव लक्ष्य निर्धारण के उस महत्वपूर्ण नियम का पालन करते थे जो दूसरों से अनुकरण की अपेक्षा करने से पूर्व स्वयं के लक्ष्यों को प्राथमिकता देने के महत्व पर बल देता है।

गाँधीजी का दर्शन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सत्यनिष्ठा के लिए अपनी मान्यताओं के अनुरूप आचरण करना अनिवार्य है। उनमें स्वयं को प्रतिभाशाली व्यक्तियों से प्रेरित करने, उनकी क्षमताओं को पहचानने और विभिन्न मुद्दों पर उनके विचारों को महत्व देने की प्रवृत्ति थी। वे सार्थक संवाद को प्रोत्साहित करने, विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने और विविध परिप्रेक्ष्यों का अन्वेषण करने में निपुण थे। वे उनके साथ अपना परिप्रेक्ष्य साझा करते थे और सम्पूर्ण दल के लिए एक एकीकृत दृष्टिकोण निर्मित करने में सहायता करते थे। उनके द्वारा निर्मित रणनीतियाँ उनके दल द्वारा पूरे भारत में प्रभावी रूप से कार्यान्वित की गईं जो उनकी विशेषज्ञता और प्रभावशीलता के स्तर को दर्शाती हैं। भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का मार्गदर्शन करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य था, किन्तु गाँधीजी के पास जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों का एक दल था जिन्होंने सम्पूर्ण यात्रा में उनका समर्थन किया। किसी दल का नेतृत्व करने के लिए मात्र प्रभारी होना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए अग्रिम पंक्ति में रहकर मार्गदर्शन करने और सम्पूर्ण यात्रा के दौरान दल को एकजुट रहने के लिए प्रेरित करने की क्षमता अपेक्षित है।

गाँधीजी का यह दृढ़ मत था कि जहाँ जनसमूह है वहाँ समस्याएँ अवश्य होंगी। अपने अद्वितीय दृष्टिकोण के कारण प्रारम्भिक दौर में उन्हें प्राय: उपहास का सामना करना पड़ा। तथापि, उनका यह मानना था कि उपेक्षित और उपहासित होना सफलता के मार्ग पर अग्रसर होने के समान है। वे सदैव राजनीतिक कार्रवाई के लिए एक सक्रिय दृष्टिकोण विकसित करने और गतिशील सामाजिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने के लिए प्रेरित रहे। सामाजिक कार्रवाई के लिए अहिंसक असहयोग अथवा सत्याग्रह पर आधारित एक नवीन दृष्टिकोण विकसित करने में उनका अद्वितीय योगदान रहा। संघर्ष पर विचार करते हुए पोंडी (1967) ने इसे दो व्यक्तियों अथवा समूहों के दृष्टिकोण या हितों के मध्य एक महत्वपूर्ण असहमति के रूप में परिभाषित किया है जो किसी विशिष्ट मामले में संलग्न हैं। सामाजिक कार्रवाई की एक पद्धति के रूप में गाँधीजी ने यह प्रतिपादित किया कि सत्याग्रह का उपयोग विभिन्न प्रकार के सामाजिक संघर्षों के समाधान के लिए किया जा सकता है जिनमें व्यक्तियों के मध्य संघर्ष, व्यक्तियों और समूहों के मध्य संघर्ष, समुदायों के भीतर संघर्ष, राज्य-सम्बद्ध संघर्ष और यहाँ तक कि राष्ट्रों के मध्य संघर्ष भी सम्मिलित हैं।

गाँधीजी की मान्यताओं के अनुसार अहिंसा को विश्व में सभी प्रकार की समस्याओं के लिए अन्तिम समाधान के रूप में माना जाता है। थोरो द्वारा प्रतिपादित ‘सविनय अवज्ञा’ की संकल्पना महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक चुनौतियों के समाधान के साधन के रूप में अहिंसा की क्षमता को उजागर करती है (राय, 2008)। गाँधीजी के समस्या-समाधान उपागम में सत्ता का रूपान्तरण एक महत्वपूर्ण तत्व है। गाँधीजी (1927) के अनुसार “इसका उद्देश्य हिंसा या बयानबाजी का सहारा लेने के बजाय प्रतिद्वन्द्वी की भावनाओं और विचारों को आकर्षित कर के एक विवादास्पद रिश्ते की गतिशीलता को मौलिक रूप से बदलना है।” उनके अनुसार, संघर्ष परिवर्तन को एक ऐसी संकल्पना के रूप में देखा जाता है जिसका उद्देश्य इसे समाप्त करने के स्थान पर कुसमायोजन का निवारण करना है। इसका उद्देश्य तीव्रतर, महत्वपूर्ण और अपेक्षित अनुकूलन की दिशा में प्रगति करना है। इसे केवल हिंसक सम्बन्धों अथवा चर्चाओं को अहिंसक सम्बन्धों में परिवर्तित करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

राज्य, जिला और भाषा के आधार पर विभाजित भारत की विविध जनसंख्या तक प्रभावी रूप से पहुँचने के लिए गाँधीजी ने यह हमेशा सुनिश्चित किया कि देश में होने वाले किसी भी विकास को समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रसारित किया जाए, जिससे व्यापक संचार सुनिश्चित हो सके। गाँधीजी के असाधारण संचार कौशल, जनमानस से जुड़ने की क्षमता और समावेशी दृष्टिकोण ने स्वतन्त्रता प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक दूरदर्शी नेता होने के नाते उन्होंने अपने दृष्टिकोण को आम जनता तक प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करने के महत्व को अभिज्ञात किया। इसके अतिरिक्त यह देखा जा सकता है कि उन्होंने अपने दृष्टिकोण और मिशन को साझा करते हुए भारतीय जनमानस के व्यापक वर्ग से जुड़ने के लिए पत्रिकाओं का भी प्रकाशन किया। यह स्पष्ट है कि एक नेता के दृष्टिकोण और सन्देश को दल के सदस्यों तक प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करना महत्वपूर्ण है। इस परिप्रेक्ष्य में दल के सदस्य अपने नेता द्वारा समर्थित अनुभव करते हैं जिससे उनका मनोबल उल्लेखनीय रूप से बढ़ता है।

ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो प्रत्यक्ष प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु ये प्रभावी नेताओं के गुणों पर गहन चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। किसी विशिष्ट क्षेत्र में सफलता अर्जित करना अपेक्षाकृत सरल हो सकता है किन्तु नेतृत्व का निरन्तर उत्कृष्ट प्रदर्शन बनाए रखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जीवन, व्यक्तियों और पर्यावरण के प्रति गाँधीजी का दृष्टिकोण हमें अपने जीवन, अपने परिवेश के लोगों के साथ हमारे अन्तर्सम्बन्धों और विभिन्न परिस्थितियों में हमारे व्यवहार पर मनन करने के लिए प्रेरित करता है।

इन विचारों को ध्यान में रखते हुए उन्हें एक अत्यन्त सहानुभूतिशील नेता के रूप में मान्यता प्राप्त थी। उनके दृष्टिकोण के अनुसार, सहानुभूति विभिन्न संस्कृतियों के मध्य सामंजस्यपूर्ण आदान-प्रदान और परिवर्तनकारी संवाद को प्रोत्साहित करने के एक माध्यम के रूप में कार्य करती है (यूनेस्को, 1990)।

गाँधीवादी दृष्टिकोण : कुशल नेतृत्व की सीख

बैस (2019) ने नेताओं को उन व्यक्तियों के रूप में वर्णित किया है जिनमें दूसरों का मार्गदर्शन और निर्देशन करने की क्षमता होती है, साथ ही वे उनका सम्मान और प्रशंसा भी अर्जित करते हैं। समय प्रबन्धन में दक्षता प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सतत प्रयास है। अपने समय के प्रति सजग रहने से हम कार्यों को कुशलतापूर्वक निष्पादित करने और नवीन रणनीतियों को अपनाने में सक्षम होते हैं। समय प्रबन्धन रणनीतियों की एक विस्तृत शृंखला का होना नवीन चुनौतियों को अपनाने में सुगमता प्रदान करेगा। ट्रेसी (2014) ने उल्लेख किया कि यदि कोई व्यक्ति कठिन और अप्रत्याशित परिवेश में प्रभावी रूप से समय का प्रबन्धन कर सकता है, तो यह विभिन्न परिस्थितियों में समय प्रबन्धन करने की हमारी क्षमता में आत्मविश्वास उत्पन्न करता है। अपने चयनित मार्ग के बावजूद व्यक्तियों के लिए आत्मनिर्भर बनना और जीवन में अपनी इच्छानुसार आजीविका अथवा दिशा चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त करना महत्वपूर्ण है। गांधीजी ने निरन्तर स्पष्ट उद्देश्यों वाले व्यक्तियों के महत्व पर बल दिया। अत: एक नेता के लिए यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि उनका दल अन्तिम उद्देश्य की दिशा में कार्य करने में सक्रिय रूप से संलग्न और समर्पित रहे।

लक्ष्य निर्धारण में दक्षता रखने वाला व्यक्ति ही सच्चा नेता होता है। नेता की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कोंजर (1991) ने उल्लेख किया कि वे न केवल अनुयायियों की तलाश करते हैं, अपितु दूसरों को अपने लक्ष्य निर्धारित करने और दृढ़ संकल्प के साथ उनका अनुसरण करने के लिए प्रेरित भी करते हैं। प्रारम्भिक चरणों के दौरान किसी व्यक्ति को अपना लक्ष्य निर्धारित करने में कुछ समय लग सकता है। तथापि, एक बार निर्णय लेने के उपरान्त उसे प्राप्त करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करना आवश्यक हो जाता है।

यह स्पष्ट है कि कोई भी नेता एकाकी रूप से कार्य नहीं कर सकता। उन्हें सक्रिय रूप से अन्य नेताओं का विकास और पोषण करना चाहिए, एक ऐसे वातावरण को प्रोत्साहित करना चाहिए जो नेतृत्व विकास को बढ़ावा दे और नेतृत्व को सभी व्यक्तियों के लिए सुलभ बनाए। समाज, राष्ट्र और विश्व की सभी प्रकार की समस्याओं और विवादों का अन्तिम समाधान अहिंसा है। तथापि, अध्ययन का परिणाम इसकी अवधारणात्मक और व्यावहारिक प्रासंगिकता पर निर्भर करता है। विश्व भर में हिंसा और शोषण की वर्तमान स्थिति चिन्ता का एक महत्वपूर्ण कारण बन गई है। विवादों में उलझने अथवा तीव्र बहसों में पड़ने के स्थान पर विचारपूर्ण चर्चाओं के माध्यम से अधिक सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाना अधिक लाभप्रद है।

कोई भी राष्ट्र जो साम्प्रदायिकता, समाजवाद, अधिनायकवाद, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और सत्ता संघर्ष जैसी समस्याओं से ग्रस्त है, उसे गाँधीजी के अहिंसा, शान्तिपूर्ण संवाद और सत्य के सिद्धान्तों को अपने मार्गदर्शक आदर्शों के रूप में अपनाने से अत्यधिक लाभ होगा। नेतृत्व की आकांक्षा रखने वाले व्यक्तियों के लिए तनावपूर्ण परिस्थितियों में उनका

धैर्य किसी भी परिदृश्य का विश्लेषण करने की क्षमता, चुनौतियों का प्रत्यक्ष सामना करने की क्षमता, उनकी अदम्य जिज्ञासा और उनके निर्णयों के सम्भावित परिणामों पर विचार करना समस्या-समाधान के महत्वपूर्ण घटक हैं। व्यक्तियों में तार्किक रूप से विचार करने और विभिन्न परिस्थितियों का त्वरित आकलन करने की अन्तर्निहित क्षमता हो सकती है। तथापि, इस कौशल को विभिन्न सन्दर्भों में नियमित रूप से अनुप्रयोग में लाए बिना समय के साथ इसमें कमी आ सकती है। किसी भी कौशल की भाँति इसकी प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए इसे परिष्कृत करने और इसमें दक्षता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। किसी व्यक्ति में पिछली चुनौतियों का विश्लेषण करने और उन अनुभवों का उपयोग करके अपनी वर्तमान स्थिति का सामना करने की क्षमता होनी चाहिए।

गाँधीजी से प्राप्त होने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण सबक, किसी योजना को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने हेतु एक सक्षम दल का होना है। शीर्ड और काकबादसे (2004) ने यह रेखांकित किया कि दल को संगठित करना प्रभावी दल निर्माण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। तथापि, एक सुदृढ़ दल के निर्माण के लिए लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित करना, दूसरों को सशक्त बनाने की क्षमता और दल के सभी सदस्यों के मध्य विश्वास एवं सहयोग का विकास करना आवश्यक है। सर्वदा संघर्ष, समाधान अथवा उसकी न्यूनता के लिए प्रयास करना आवश्यक है। यदि इसे अनियन्त्रित छोड़ दिया जाए तो इस स्थिति की अनियन्त्रित वृद्धि से अव्यवस्था और आन्तरिक अशान्ति उत्पन्न हो सकती है। त्जोसवॉल्ड (1997), क्लिमेकी (2019) और अनेक अन्य अध्ययनों में यह पाया गया है कि जब संघर्ष का प्रभावी प्रबन्धन किया जाता है, तो इसमें व्यक्तियों के मध्य अधिक समझ, सहानुभूति और विश्वास को बढ़ावा देने की क्षमता होती है। वर्तमान तीव्र गति वाली दुनिया में व्यक्तियों के मध्य मतभेदों का प्रबन्धन करना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण हो सकता है। इसके लिए इन संघर्षों का प्रभावी समाधान करने हेतु धैर्यपूर्वक श्रवणप्रेरक कौशलों का उपयोग, स्थितियों का निष्पक्ष मूल्यांकन और सत्यनिष्ठा बनाए रखने की क्षमता अपेक्षित है।

एक नेता के वास्तविक गुण संचार के प्रति उनके विचारपूर्ण और सुचिन्तित दृष्टिकोण, बोलने से पूर्व मनन को प्राथमिकता देने और अपने नैतिक सिद्धान्तों के अनुरूप आचरण करने में परिलक्षित होते हैं। संचार में किसी व्यक्ति के समक्ष आने वाली प्रमुख चुनौतियों में से एक प्रभावशीलता को अत्यधिक महत्व देने की प्रवृत्ति है। तथापि, एक नेता के रूप में प्रभावी ढंग से संवाद करने और प्रगति करने के लिए हाल के एक अध्ययन में सैंडुआ (2023) ने आत्म-जागरूकता, सहानुभूति, आलोचनात्मक चिन्तन और संचार बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के क्षेत्र में निरन्तर आत्म-सुधार के प्रयासों के महत्व पर बल दिया है। सहानुभूति की नैतिकता के अन्वेषण में आत्मनिरीक्षण, व्यक्तिगत विकास और अन्ततः विश्व पर सकारात्मक प्रभाव डालना निहित है। जब त्रासदियाँ घटित होती हैं, तो सामूहिक कल्याण के लिए हमारा एकजुट होना महत्वपूर्ण है। सच्ची आध्यात्मिकता में विभिन्न पृष्ठभूमि, नस्ल, समुदाय, धर्म और रुझान वाले व्यक्तियों को सहायता प्रदान करना और उनके

प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना सम्मिलित है। गाँधीजी की शिक्षाएँ हमें मानवता में विश्वास बनाए रखने, अपनी मान्यताओं की कल्पना करने, निरन्तर आत्म-सुधार करने, दूसरों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने और क्षमा को अपनाने के महत्व का स्मरण कराती हैं।

निष्कर्ष

सतत विकास की संकल्पना को वैश्विक स्तर पर व्यापक स्वीकृति प्राप्त है। गाँधीजी का योगदान भारतीय जनमानस को स्वतन्त्रता दिलाने से कहीं अधिक विस्तृत था। अहिंसा और दीर्घकालिक जीवन पर उनके सिद्धान्तों ने विश्व को एक गहन नवीन परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है। उनका ज्ञान और प्रयोग हमारे वर्तमान समय में और भी अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि हम लोभ, आक्रामकता, भ्रष्टाचार और अस्थिर जीवनशैली जैसी वैश्विक समस्याओं से जूझ रहे हैं जो विश्व के संसाधनों पर दबाव डाल रही हैं। उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के लिए अहिंसा और असहयोग आन्दोलनों की प्रबल वकालत की और उन्हें कार्यान्वित किया। उनका करुणापूर्ण व्यवहार अहिंसक पद्धतियों, कुशल संसाधन उपयोग और शत्रुतारहित मानसिकता के माध्यम से निरन्तर सकारात्मक परिणामों की ओर अग्रसर होता है।

गाँधीजी ने भौतिकवाद और व्यक्तिवाद का दृढ़तापूर्वक खंडन किया। दक्षता, करुणा और सहयोग गाँधीजी के प्रमुख केन्द्रबिन्दु थे, क्योंकि उन्होंने न केवल व्यक्तिगत कल्याण अपितु समाज के उत्थान में भी योगदान दिया था। उनके द्वारा व्यक्त विचार सामाजिक समानता, आर्थिक एवं सार्वजनिक न्याय, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव, अन्तरसांस्कृतिक एवं अन्तरधार्मिक संवाद, जीवन के सौन्दर्य मूल्य, अन्तरजातीय प्रभाव और पर्यावरण संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर वर्तमान विमर्शों के समरूप हैं। उन्होंने व्यक्तियों को निरन्तर प्रोत्साहित किया कि यदि उनके पास वैध औचित्य हो तो वे अपनी प्रतिबद्धताओं का निर्वहन करें। गाँधीजी की विरासत आज के दीर्घकालिक युग में उनके देहावसान के उपरान्त भी महत्व और प्रासंगिकता बनाए रखती है। वर्तमान में विभिन्न चुनौतियों का सामना करने और सौहार्दपूर्ण वातावरण को प्रोत्साहित करने के लिए वैश्विक स्तर पर गाँधीवादी दर्शन और विचारधारा के सिद्धान्तों एवं मूल्यों को अपनाना आवश्यक है।

सन्दर्भ

बास, बी.एल. (2019). 'व्हाट इज लीडरशिप?' किब्बे, एम.आर. एवं चेन, एच. (सम्पा.), *लीडरशिप इन सर्जरी,* स्प्रिंगर इंटरनेशनल पब्लिशिंग, 1-10.

बॉन्ड्यूरेंट, जे.वी. (1967). *कॉन्क्वेस्ट ऑफ वायलेंस : द गांधियन फिलॉसफी ऑफ कॉन्फ्लिक्ट.* यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.

कोंजर, जे.ए. (1991). 'इंस्पायरिंग अदर्स : द लैंग्वेज ऑफ लीडरशिप'. *एकेडमी ऑफ मैनेजमेंट परस्पेक्टिव्स,* 5(1), 31-45.

गाँधी, एम.के. (1927). *एन ऑटोबायोग्राफी,* नवजीवन पब्लिशिंग हाउस; अहमदाबाद.

ग्रीन, डब्ल्यू.एस.एम., एवं लियोनार्ड, ई.ई. (2016). *लीडरशिप इंटेलिजेंस : नेविगेटिंग टू योर ट्रू नॉर्थ.* रोमैन एंड लिटिलफील्ड.

हीफेट्ज, आर.ए., एवं लॉरी, डी.एल. (2001). 'द वर्क ऑफ लीडरशिप'. *हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू,* 79(11).

हॉर्नर, एम. (1997). 'लीडरशिप थ्योरी : पास्ट, प्रेजेंट एंड फ्यूचर'. *टीम परफॉर्मेंस मैनेजमेंट : एन इंटरनेशनल जर्नल,* 3(4), 270-287.

क्लिमेकी, ओ.एम. (2019). 'द रोल ऑफ एम्पैथी एंड कम्पैशन इन कॉन्फ्लिक्ट रेजोल्यूशन'. *इमोशन रिव्यू,* 11(4), 310-325.

कुमार, आर. (2018). *महात्मा गाँधी एंड हायर एजुकेशन : अ क्रिटिकल एनालिसिस.* गाँधी आश्रम, सेवाग्राम.

ऑर्गन, डी.डब्ल्यू. (1996). 'लीडरशिप : द ग्रेट मैन थ्योरी रिविजिटेड'. *बिजनेस होराइजन्स,* 39(3), 1-4.

पोंडी, एल.आर. (1967). 'ऑर्गनाइजेशनल कॉन्फ्लिक्ट : कॉन्सेप्ट्स एंड मॉडल्स'. *एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस क्वार्टरली,* 296-320.

राय, बी.एन. (2008). *गाँधीगिरी : सत्याग्रह आफ्टर हंड्रेड इयर्स,* कावेरी बुक्स; नई दिल्ली.

सैंडुआ, डी. (2023). *क्रिएटिंग योर बेस्ट वर्जन : पर्सनल डेवलपमेंट एंड साइकोलॉजी ऑफ सक्सेस.*

शियर्ड, ए.जी., एवं काकाबाडसे, ए.पी. (2004). 'अ प्रोसेस पर्स्पेक्टिव ऑन लीडरशिप एंड टीम डेवलपमेंट'. *जर्नल ऑफ मैनेजमेंट डेवलपमेंट,* 23(1), 7-106.

टजोसवोल्ड, डी. (1997). 'कॉन्फ्लिक्ट विदिन इंटरडिपेंडेंस : इट्स वैल्यू फॉर प्रोडक्टिविटी एंड इंडिविजुअलिटी'. *यूजिंग कॉन्फ्लिक्ट इन ऑर्गनाइजेशन्स,* 23.

ट्रेसी, बी. (2014). *टाइम मैनेजमेंट (द ब्रायन ट्रेसी सक्सेस लाइब्रेरी).* एमाकॉम.

यूनेस्को (1990). प्राप्त : http://unesdoc.unesco.org.

वाटकिंस, ए. (2013). *कोहेरेंस : द सीक्रेट साइंस ऑफ ब्रिलियंट लीडरशिप.* कोगन पेज पब्लिशर्स.

युक्ल, जी. (2002). *लीडरशिप इन ऑर्गनाइजेशन्स* (5वां संस्करण). दिल्ली: पियर्सन एजुकेशन.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 39-50)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

भारतीय जनसंघ/भारतीय जनता पार्टी : एक राजनीतिक विश्लेषण

रूपेश रंजन* एवं अंजनी कुमार†

वर्ष 2014 के लोकसभा चुनाव में भारतीय राजनीति ने एक नयी करवट ली। 25 वर्षों की गठबन्धन की राजनीति के बाद प्रथम बार एक पार्टी पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में आयी। इस चुनाव में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) नीत राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबन्धन (राजग) को लोकसभा की 543 में से 353 सीटों पर जीत मिली थी, इनमें से अकेले भाजपा ने 282 सीटों पर जीत प्राप्त की थी। 2019 के लोकसभा चुनाव में भी भाजपा पुनः सत्ता पर आसीन हुई। इस चुनाव में जहाँ राजग को पुनः 353 सीटों पर जीत मिली, वहीं भाजपा ने 5 साल सत्ता में रहने के बावजूद नरेन्द्र मोदी के करिश्माई नेतृत्व से अपने 2014 के प्रदर्शन को सुधारते हुए 303 सीटें जीतीं। भाजपा के भारतीय राजनीति में प्रमुख पार्टी बनने का श्रेय पार्टी के दलित, पिछड़े और आदिवासी समुदाय तक पहुँच को दिया गया। 2014 के चुनाव से पूर्व भाजपा और उससे पहले भारतीय जनसंघ को ब्राह्मण-बनिया पार्टी कहा जाता था। प्रस्तुत आलेख में उत्तर प्रदेश को विषय-अध्ययन

*शोध छात्र, राजनीति अध्यन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
E-mail: rupesh.ranjan108@gmail.com
†सह-प्राध्यापक, कालिन्दी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
E-mail: kranjanijnu@gmail.com

बनाकर समीक्षा की गयी है कि क्या इस राज्य में भाजपा और उससे पहले जनसंघ की नीति और पार्टी का सामाजिक आधार सिर्फ सवर्णों तक सीमित थॉं। पार्टी के प्राथमिक दस्तावेज, पार्टी नेताओं के लिखित दस्तावेज, चुनाव आयोग के आँकड़ों एवं अन्य माध्यमों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय जनता पार्टी या भारतीय जनसंघ कभी भी ब्राह्मण-बनिया प्रभुत्व का संगठन नहीं था।

मुख्य शब्द : भाजपा, जनसंघ, जाति, नेतृत्व, सामाजिक आधार, उत्तर प्रदेश, चुनाव, ब्राह्मण-बनिया।

प्राक्कथन

15 अगस्त 1947 को देश की आजादी के साथ भारत के नीति निर्माताओं ने एक धर्मनिरपेक्ष देश बनाने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रकट की। संविधान सभा में एक आम सहमति थी कि आजाद भारत में धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा, और अल्पसंख्यक समुदायों को भी बहुसंख्यकों के बराबर ही सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत अधिकार प्राप्त होंगे। चूँकि देश का बँटवारा धर्म के आधार पर हुआ था और एक नया मुस्लिम देश पाकिस्तान बना था, तो भारतीय राजनीति में भी ऐसे दल थे जो आजाद भारत को हिन्दू धर्म की मान्यताओं और परम्पराओं के अनुसार चलाने की वकालत कर रहे थे। आजादी के बाद, मुख्यत: तीन दल - हिन्दू महासभा, राम राज्य परिषद् और भारतीय जनसंघ अपनी राजनीति को हिन्दू राष्ट्रवाद के इर्द-गिर्द रखने की कोशिश करने लगे। प्राय: तीनो दलों को एक ही चश्मे से देखने की कोशिश की जाती है, लेकिन इन तीनों में बहुत अन्तर है।

हिन्दू महासभा का संक्षिप्त इतिहास

1906 में मुस्लिम लीग के स्थापना के एक वर्ष बाद, 1907 में संयुक्त बंगाल हिन्दू आन्दोलन की शुरूआत हुई। इसी वर्ष, पंजाब हिन्दू सभा की भी स्थापना हुई। हिन्दू महासभा की स्थापना के बीज पंजाब हिन्दू सभा के काम-काज से ही अंकुरित हुए। पंजाब हिन्दू सभा की शुरूआती सदस्यता शहरी आर्य समाजियों तक सीमित थी। इसके प्रमुख सदस्य, लाला लाजपत राय, लाला लालचन्द, मुल्कराज भल्ला, सर शादीलाल, आदि आर्य समाजी थे। पंजाब हिन्दू सभा के नेता भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भी सदस्य थे। क्रैग बैक्सटर (1971) अपनी पुस्तक 'भारतीय जनसंघ : ए बायोग्राफी ऑफ एन इंडियन पोलिटिकल पार्टी' में कहते हैं कि 1914 तक लाहौर में कांग्रेस पार्टी के तीन अधिवेशन हुए थे, और इन तीनों ही अधिवेशनों की स्वागत समिति में मुख्यत: पंजाब हिन्दू सभा के ही आर्यसमाजी नेता थे। पंजाब हिन्दू सभा के नेता, लाला लाजपत राय, लाला लालचन्द, सर शादीलाल, आदि देश के अलग-अलग भागों में आयोजित कांग्रेस की बैठकों में पंजाब प्रान्त का प्रतिनिधित्व करते थे। इन बैठकों में इनके सम्बन्ध देश के अन्य हिन्दू नेताओं से स्थापित हुए जो मुस्लिम लीग की साम्प्रदयिक राजनीति के खिलाफ हिन्दुओं को संगठित करना चाहते थे। अन्तत: 1913 में, पंजाब हिन्दू सभा ने देश के अन्य प्रान्तों में काम कर रहे विभिन्न हिन्दू संगठनों की बैठक

बुलायी। इसी बैठक में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना की घोषणा की गई। महासभा की पहली बैठक 1914 में हरिद्वार में आयोजित की गयी। शुरूआत में, हिन्दू महासभा कांग्रेस के तहत काम करती थी। इसके लगभग सभी सदस्य कांग्रेस के भी सदस्य थे। लेकिन, धीरे-धीरे कांग्रेस और हिन्दू महासभा के बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं। महासभा के सदस्यों ने कांग्रेस पर मुस्लिमों के तुष्टिकरण का आरोप लगाते हुए, 1916 की लखनऊ सन्धि का विरोध किया था[3]। हालाँकि इन विरोधों के बावजूद हिन्दू महासभा कांग्रेस के साथ जुड़ी हुई थी (बैक्सटर, 1971)। अभिषेक चौधरी (2023) ने अटल बिहारी वाजपेयी की जीवनी 'वाजपेयी : द एस्सेन्ट ऑफ द हिन्दू राइट, 1924-1977' में लिखा है कि 1933 में पूरी तरह से अलग होने के पहले तक हिन्दू महासभा का कांग्रेस के साथ किसी न किसी स्तर पर सम्बन्ध बरकरार रहा था। कांग्रेस से अलग होने के बाद, विनायक दामोदर सावरकर हिन्दू महासभा के प्रमुख नेता बने। एक राजनीतिक दल के रूप में महासभा का प्रदर्शन 1946 के प्रान्तीय चुनाव में बेहद खराब रहा, और इसे सिर्फ तीन स्थानों पर जीत मिली। एक स्थान पर श्यामा प्रसाद मुखर्जी विजयी रहे (बैक्सटर, 1971)। आजादी के समय हिन्दू महासभा का प्रभाव उत्तर प्रदेश, बंगाल, विन्ध्य प्रदेश और पंजाब की उच्च जातियों के एक धड़े के बीच था। पहले लोकसभा चुनाव में पार्टी को चार स्थानों पर जीत मिली। निर्मलचन्द्र चटर्जी पश्चिम बंगाल की हुगली लोकसभा सीट, शकुन्तला नायर उत्तर प्रदेश की गोंडा लोकसभा सीट, और विष्णु घनश्याम देशपांडे ग्वालियर और गुना दो लोकसभा स्थानों से विजयी हुए थे (इंडिया, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट्स ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द फर्स्ट लोकसभा, 1952)।[4] प्रथम लोकसभा चुनाव के बाद, हिन्दू महासभा का चुनावी प्रदर्शन लगातार गिरता गया और 1960 के दशक के मध्य में महासभा चुनावी रूप से एकदम निष्प्रभावी हो गयी।[5]

रामराज्य परिषद् की पृष्ठभूमि

1948 में स्वामी करपात्री महाराज द्वारा स्थापित रामराज्य परिषद् तीनों ही दलों में सबसे ज्यादा रूढ़िवादी, साम्प्रदायिक, जातिवादी और संकीर्ण मानसिकता की पोषक थी। इसकी सदस्यता सिर्फ तथाकथित सवर्ण हिन्दुओं तक सीमित थी। इसकी शुरूआती लोकप्रियता भी ज्यादातर राजस्थान के सामन्ती राजा-रजवाड़ों तक सीमित थी। 1951-52 के प्रथम लोकसभा चुनाव में रामराज्य परिषद् को तीन स्थानों पर जीत मिली और तीनों स्थान पार्टी ने राजस्थान में जीते थे (इंडिया, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट्स ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द फर्स्ट लोकसभा, 1952)। पहले लोकसभा चुनाव के साथ हुए देशभर के विधानसभा चुनाव में इस दल ने कुल 32 स्थानों पर जीत दर्ज की, इन 32 में 24 स्थान राजस्थान में प्राप्त किये (इंडिया, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट्स ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द फर्स्ट लोकसभा, 1952)। प्रथम लोकसभा चुनाव के बाद, रामराज्य परिषद् राजनीतिक रूप से अवसान की तरफ बढ़ने लगी। इसका मुख्य कारण यह था कि स्वतन्त्र पार्टी की स्थापना के बाद राजस्थान के ज्यादातर राजे-रजवाड़ों ने इस दल को अपना समर्थन देना शुरू कर दिया था।[6] राजनीतिक वैज्ञानिक

मायरन वीनर के अनुसार, रामराज्य परिषद् की नीतियाँ इतनी ज्यादा संकीर्ण और रूढ़िवादी थीं कि पहले लोकसभा चुनाव में लगभग 20 लाख मत प्राप्त करने के बाद भी, किसी ने भी इस दल को गम्भीरता से नहीं लिया (वीनर, 1957)।

सारिणी 1

प्रथम तीन लोकसभा चुनावों में हिन्दू महासभा का प्रदर्शन

वर्ष	स्थान जिन पर चुनाव लड़ा	स्थान जीते	मत प्रतिशत
1951-52	31	4	0.9
1957	19	1	0.9
1962	39	1	0.6

स्रोत : भारत के निर्वाचन आयोग के द्वारा 1952, 1957, 1962 के लोकसभा चुनावों के बाद जारी की गयी सांख्यिकी।

सारिणी 2

पहले तीन लोकसभा चुनावों में रामराज्य परिषद् का प्रदर्शन

वर्ष	स्थानों पर चुनाव लड़ा	स्थान जीते	मत प्रतिशत
1951-52	61	3	2
1957	17	0	0.4
1962	40	2	0.6

स्रोत : भारत के निर्वाचन आयोग के द्वारा 1952, 1957, 1962 के लोकसभा चुनावों के बाद जारी की गयी सांख्यिकी।

भारतीय जनसंघ

आजादी के बाद जितने भी दल भारतीय संस्कृति और हिन्दुओं के हितों की रक्षा करने की बात करते थे उनमें से भारतीय जनसंघ संवैधानिक तरीके से सत्ता हासिल करने के लिए सबसे ज्यादा संगठित और प्रतिबद्ध दल था। भारतीय जनसंघ पर अपनी पुस्तक 'हिन्दू नेशनलिस्म एंड इंडियन पोलिटिक्स : द ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ द भारतीय जनसंघ' में ब्रूस ग्राहम कहते हैं कि आजादी के बाद देश को किस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए, इसको लेकर कांग्रेस में तीन तरह के समूह थे, पहला समूह - नेहरूवादी था, जो भारत को एक उदारवादी लोकतान्त्रिक और पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता के मार्ग पर प्रशस्त करना चाहता था। दूसरा समूह, भारत को समाजवाद के मार्ग पर बढ़ाना चाहता था, और उसकी माँग थी कि भारत की आर्थिक नीतियों में राज्य की अग्रणी भूमिका होनी चाहिए। तीसरे समूह की माँग यह थी कि विभाजन के कारण भारत को हिन्दू संस्कृति और मूल्यों को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ना चाहिए। पुरषोत्तम दास टंडन, गोविन्द वल्लभ पन्त जैसे नेताओं ने तीसरे समूह का नेतृत्व किया था (ग्राहम, 1990)। कांग्रेस के बाहर, इसी सोच के पोषक श्यामा प्रसाद मुखर्जी थे। जनसंघ की स्थापना और हिन्दू विचारधारा के पोषक के रूप में श्यामा प्रसाद मुखर्जी की

महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1934 में सिर्फ 33 वर्ष की उम्र में मुखर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुलपति बन गये थे। 1937 में दोबारा बंगाल विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए[7] और 1939 में मुखर्जी ने हिन्दू महासभा की सदस्यता ग्रहण की (मधोक, 2001)। हिन्दू महासभा की सदस्यता लेने के बाद मुखर्जी इसके कार्यकारी अध्यक्ष चुने गये और 1944 में सावरकर के हटने के बाद अखिल भारतीय अध्यक्ष बने। आजादी के बाद श्यामा प्रसाद मुखर्जी और हिन्दू महासभा के बीच दूरियाँ बढ़ने लगीं। मुखर्जी ने हिन्दू महासभा की सदस्यता को सिर्फ हिन्दुओं तक सीमित रखने का विरोध करना शुरू कर दिया। 24 नवम्बर 1948 को 'द स्टेट्समैन' समाचार-पत्र को दिये अपने बयान में मुखर्जी ने कहा कि अगर 85 प्रतिशत हिन्दू अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हितों की रक्षा संवैधानिक तरीके से नहीं कर सकते हैं तो उन्हें कोई भी संगठन नहीं बचा सकता है" (दासगुप्ता, 2020)। हालाँकि, हिन्दू महासभा की कार्यसमिति में मुखर्जी की गैर-हिन्दुओं को पार्टी में शामिल करने की माँग को खारिज कर दिया गया, जिसके विरोध में दिसम्बर 1948 में मुखर्जी ने हिन्दू महासभा की सदस्यता से इस्तीफा दिया (ग्राहम, 1990)। हिन्दू महासभा से अलग होने के बाद, श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने शुरूआत में यह सोचा कि सरदार पटेल के नेतृत्व में कांग्रेस उनके लिए एक विकल्प हो सकती है। कांग्रेस के अन्दर भी कई हिन्दू राष्ट्रवादी नेता नेहरू की पाकिस्तान नीति का विरोध कर रहे थे। 1950 में कांग्रेस के अध्यक्षीय चुनाव में इन सभी नेताओं ने नेहरू के उम्मीदवार जे.बी. कृपलानी के खिलाफ हिन्दू राष्ट्रवादी और सरदार पटेल से समर्थन प्राप्त पुरुषोत्तम दास टंडन की जीत सुनिश्चित की। टंडन की जीत से उत्साहित कांग्रेस में मौजूद हिन्दू राष्ट्रवादियों को दिसम्बर 1950 में सरदार पटेल के निधन के बाद गहरा झटका लगा। फलत: इसके बाद नेहरू ने सरकार और कांग्रेस संगठन दोनों का नेतृत्व मजबूती से अपने हाथों में ले लिया (कोचनेक, 1968)। जब यह स्पष्ट हो गया कि कांग्रेस नेहरू के दिखाए मार्ग पर संचालित होगी तो श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने एक नया दल बनाने का निर्णय लिया और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख माधव सदाशिव राव गोलवलकर से सहयोग की अपेक्षा की। गोलवलकर आरम्भ में संघ के स्वयंसेवकों को राजनीति में भेजने के पक्षधर नही थे। क्रिस्टोफर जफ्रेलो (1996) के अनुसार गोलवलकर संघ में स्वयं हेतु एक राजऋषि की भूमिका देखते थे, हालाँकि कई स्वयंसेवक खुलकर राजनीति में आने की माँग कर रहे थे। वाल्टर एंडरसन और श्रीधर दामले ने अपनी पुस्तक 'द ब्रदरहुड इन सेफ्रॉन' में भी इस बात का उल्लेख किया है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में दो प्रकार के स्वयंसेवक थे, एक - सक्रियतावादी और दूसरे - परम्परावादी। सक्रियतावादी स्वयंसेवक संघ की एक सक्रिय भूमिका भारतीय राजनीति में देखना चाहते थे, जबकि परम्परावादी संघ को शाखा के दायरे में सीमित रखना चाहते थे (एंडरसन एवं दामले, 2019)। अन्तत: गुरु गोलवलकर संघ की राजनीति में सीमित भागीदारी के लिये सहमत हुए[8] और उन्होंने संघ के कुछ प्रचारक - जिनमें जगन्नाथराव जोशी, नानाजी देशमुख, सुन्दरसिंह भंडारी, दीनदयाल उपाध्याय और बलराज मधोक प्रमुख थे - श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ मिलकर उनको एक नये राजनीतिक दल की

स्थापना के लिए निर्देशित किया (पटनायक, 2022)। संघ की राजनीति में सक्रियता के बारे में के.एन. गोविन्दाचार्य ने साक्षात्कार में कहा कि गुरुजी[9] का स्वयंसेवकों को राजनीति में भेजने का फैसला उस वक्त की राजनीतिक परिस्थिति पर निर्भर था। महात्मा गाँधी की हत्या के बाद संघ पर प्रतिबन्ध लग गया था। जबकि, हिन्दू महासभा जैसे दल, जो खुलकर महात्मा गाँधी का विरोध कर रहे थे, उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा। इसलिये गोलवलकर भी यह चाहते थे कि कोई एक राजनीतिक दल हो, जो संघ के दृष्टिकोण को भारतीय राजनीति और संसद में रख सके (गोविन्दाचार्य, 2023)। अन्ततः, 21 अक्टूबर 1951 को अखिल भारतीय जनसंघ की दिल्ली में स्थापना हुई और श्यामा प्रसाद मुखर्जी इसके पहले अध्यक्ष और मौलीचन्द्र शर्मा, और भाई महावीर इसके दो राष्ट्रीय महासचिव चुने गए।

भारतीय जनसंघ और जाति का प्रश्न

भारतीय जनसंघ के बारे में कहा जाता है कि श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने हिन्दू महासभा से इस्तीफा ही इसके एक रूढ़िवादी पार्टी होने के कारण दिया था। मुखर्जी के अनुसार, आजादी के बाद महासभा की कोई जरूरत नहीं थी (पटनायक, 2022)। श्यामा प्रसाद मुखर्जी भारतीय जनसंघ को भारत के संवैधानिक और लोकतान्त्रिक ढाँचे में जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में काम कर रही कांग्रेस पार्टी के एक विकल्प के रूप में देखना चाहते थे। जनसंघ की स्थापना के बाद सबसे पहला मुद्दा जम्मू-कश्मीर के विशेष दर्जे का था।[10] भारतीय जनसंघ ने 'एक देश में दो विधान, दो निशान, और दो प्रधान नहीं चलेगा' का नारा दिया (पाठक, 2023)। 5 अगस्त 2019 को भारत की संसद द्वारा इस विचार को निरस्त कर दिया गया और 11 दिसम्बर 2023 को भारत के सुप्रीम कोर्ट ने भी जम्मू-कश्मीर को मिलने वाले विशेष दर्जे को गलत माना (विश्वनाथ, 2023)। जम्मू-कश्मीर में धारा 370 के कारण भारतीय संविधान के कई प्रगतिशील प्रावधानों का लाभ, जैसे - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़ा वर्ग को आरक्षण पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं था। धारा 370 के कारण कश्मीर में 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की कोई मान्यता नहीं थी (बेगम, 2023)।

1951 के लोकसभा चुनावों के घोषणा-पत्र में भारतीय जनसंघ ने भारत के सभी नागरिकों को समान अधिकार देने और समाज के पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने की माँग की थी। जनसंघ ने छुआ-छूत और जातिप्रथा को खत्म करने की खुली वकालत अपने घोषणा-पत्र में की थी (संघ, 1973)। इसके साथ ही जनसंघ ने भूमि-सुधार, खेतिहर-मजदूरों को मालिकाना हक और महिलाओं को उनका अधिकार और सम्पूर्ण अवसर देने की वकालत भी की थी (संघ, 1973)। जनसंघ का यह औपचारिक स्वरूप 1951 से 1971 तक के लोकसभा चुनावों के सारे घोषणा-पत्रों में देखने को मिलता है कि जातिगत भेदभाव को खत्म करने के मुद्दे पर कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी, भारतीय जनसंघ और 1980 में बनी भारतीय जनता पार्टी के बीच अन्तर नहीं था। सभी दल अपने घोषणा-पत्रों में इसको खत्म करने का उल्लेख करते थे (तिवारी, 2019)। 1960 के दशक के अन्त और 1970 की

शुरूआत में जनसंघ की कार्यप्रणाली देखने से ज्ञात होता है कि पार्टी के अन्दर जो आर्थिक और सामाजिक रूप से रूढ़िवादी धड़ा था, जिसका नेतृत्व बलराज मधोक कर रहे थे, उन्हें पार्टी में हाशिये पर कर दिया गया था। बलराज मधोक, दीनदयाल उपाध्याय के 'एकात्म मानववाद' को कम्युनिस्ट नेता मानवेन्द्रनाथ रॉय के उग्र मानवतावाद से प्रभावित बताते थे (कौशल, 2016), और जनसंघ को चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की 'स्वतन्त्र पार्टी' के साथ ज्यादा सहयोग करने की बात करते थे (ग्राहम, 1990)। भारतीय जनसंघ के 1973 के कानपुर अधिवेशन में बलराज मधोक को पार्टी से निष्काषित कर दिया गया (कौशल, 2016)।

भारतीय जनसंघ का सामाजिक आधार : उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में

उत्तर प्रदेश में भारतीय जनसंघ का सामाजिक आधार दलित और पिछड़े वर्गों में 1950 के दशक के अन्त से बढ़ने लगा था। 1957 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनसंघ को उत्तर प्रदेश में दो लोकसभा क्षेत्रों में जीत मिली थी - बलरामपुर और हरदोई। बलरामपुर में अटल बिहारी वाजपेयी ने कांग्रेस के उम्मीदवार हैदर हुसैन को पराजित किया था। इस चुनाव में वाजपेयी को 52.16 प्रतिशत जबकि हुसैन को 47.84 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे (भारत निर्वाचन आयोग, 1957)। वाजपेयी को प्राप्त मतों में ज्यादातर संख्या दलितों और पिछड़ी जातियों, जैसे - पाल, सैनी, मौर्य, आदि के प्राप्त हुए थे (चौधरी, 2023)। सम्भवत: कांग्रेस ने हैदर हुसैन को उम्मीदवार इसलिये बनाया था क्योंकि बलरामपुर में मुस्लिम आबादी 1957 में करीब 30 प्रतिशत थी जो कांग्रेस के पक्ष में लामबन्द थी। 1962 के लोकसभा चुनाव में बलरामपुर में वाजपेयी के खिलाफ कांग्रेस ने सुभद्रा जोशी को चुनावी मैदान में उतारा। जोशी ने वाजपेयी को 0.87 प्रतिशत मत के अन्तर से हराया था। सुभद्रा जोशी को 43.33 प्रतिशत जबकि वाजपेयी को 42.46 प्रतिशत मत प्राप्त हुए थे (भारत निर्वाचन आयोग, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द थर्ड लोकसभा, 1962)। इस चुनाव में जोशी के पक्ष में मशहूर फिल्म कलाकार बलराज सहनी ने प्रचार किया था (चौधरी, 2023)। पराजय के बावजूद वाजपेयी को व्यापक जनसमर्थन मिला था। 1952 से 1967 तक जनसंघ, भारतीय राजनीति में एकमात्र ऐसा दल था जिसकी स्थानों की संख्या और मत-प्रतिशत चुनाव-दर-चुनाव निरन्तर बढ़ती गई। यह बढ़ोतरी उत्तर प्रदेश में सबसे स्पष्ट दिख रही थी। 1952 से 1967 की अवधि भारतीय राजनीति का वह दौर था जब कांग्रेस का सत्ता पर एकाधिकार था। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में कांग्रेस के इस एकाधिकार को राजनीति वैज्ञानिक पॉल ब्रास ने 'विरोधाभासों का गठबन्धन' कहा था। हिन्दी भाषी राज्यों में मुख्यत: सवर्ण, मुस्लिम और दलित कांग्रेस के समर्थक थे। सामाजिक स्तर पर इन वर्गों के बीच एक टकराव था, लेकिन तीनों का मतदान व्यवहार कांग्रेस के पक्ष में था (ब्रास, 1997)। कांग्रेस के इस एकाधिकार के बीच जब जनसंघ उत्तर प्रदेश में खुद को स्थापित कर रहा था तब उसे हिन्दुओं के सभी वर्गों से धीरे-धीरे समर्थन मिल रहा था। 1967 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में जनसंघ को 98 सीटों पर जीत मिली थी और इन 98 में से 26 विधायक दलित थे (भारत निर्वाचन आयोग, स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन

जनरल इलेक्श टू द लेजिस्लेटिव असेम्बली ऑफ उत्तर प्रदेश, 1967)। आपातकाल के बाद देश के कुछ प्रमुख विपक्षी दलों ने आपसी विलय के द्वारा एक नया दल बनाने का निर्णय किया।[11] नये दल का नाम जनता पार्टी रखा गया। जनसंघ ने इसमें भी अग्रणी भूमिका निभाई। 1977 के लोकसभा चुनाव के बाद, कांग्रेस को पहली बार राष्ट्रीय स्तर पर पराजय का सामना करना पड़ा और जनता पार्टी सत्ता पर काबिज हुई। जयप्रकाश नारायण और आचार्य कृपलानी ने मोरारजी देसाई को प्रधानमन्त्री के रूप में अग्रसर किया (चौधरी, 2023)। जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में से एक नानाजी देशमुख अपनी पुस्तक 'आरएसएस : विक्टिम ऑफ स्लेन्डर' में लिखते हैं कि चौधरी चरण सिंह ने जनता पार्टी में जनसंघ के सदस्यों का विरोध इसलिए करना शुरू कर दिया था[12] क्योंकि जनसंघ ने उनका प्रधानमन्त्री के पद के लिए समर्थन नहीं किया था (देशमुख, 1979)।

सारिणी 3

1951-52 से 1967 तक जनसंघ का लोकसभा चुनावों में प्रदर्शन

वर्ष	स्थानों पर चुनाव लड़ा	स्थानों पर विजय	दूसरे स्थान पर रहे
1951-52	94	3	20
1957	130	4	31
1962	196	14	52
1967	249	35	67

स्रोत : भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा 1952, 1957, 1962 और 1967 के लोकसभा चुनावों के बाद जारी की गयी सांख्यिकी रपट।

सारिणी 4

1951-52 से 1967 तक जनसंघ का उत्तर प्रदेश में लोकसभा चुनाव में प्रदर्शन

वर्ष	स्थानों पर चुनाव लड़ा	स्थानों पर विजय	दूसरे स्थान पर रहे
1951-52	41	0	10
1957	61	2	10
1962	74	7	25
1967	77	12	27

स्रोत : भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा 1952, 1957, 1962 और 1967 लोकसभा चुनावों के बाद जारी की गयी सांख्यिकी रपट।

सारिणी 5

1951-52 से 1967 तक जनसंघ का उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनावों में प्रदर्शन

वर्ष	सीटों पर चुनाव लड़ा	सीटें जीतीं	नम्बर दो पर रहे
1951-52	211	2	37
1957	236	17	28
1962	377	49	78
1967	401	98	109

स्रोत : भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा 1952, 1957, 1962 और 1967 विधानसभा चुनावों के बाद जारी की गयी सांख्यिकी रपट।

भारतीय जनता पार्टी : नीति और सामाजिक समीकरण

जनता पार्टी से अलग होने के बाद जनसंघ के सदस्यों ने 6 अप्रैल 1980 को एक नये दल - भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का गठन किया और अटल बिहारी वाजपेयी इसके प्रथम अध्यक्ष बने। अटलजी के नेतृत्व में भाजपा ने स्वयं को जनता पार्टी की विरासत के तौर पर प्रस्तुत किया। पार्टी में कई ऐसे नेताओं को शीर्ष पदों पर शामिल किया गया जिनका राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से कोई जुड़ाव नहीं था। सिकन्दर बख्त, शान्तिभूषण और राम जेठमलानी इनमें प्रमुख थे। भाजपा ने धर्मनिरपेक्षता का संकेत देने के लिए, मुम्बई में हुए प्रथम अधिवेशन में प्रसिद्ध न्यायविद् एम.सी. छागला को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया (सीतापति, 2020)। हालाँकि, इस उदारवादी छवि का भाजपा को कोई चुनावी लाभ नहीं मिला और पार्टी 1984 के लोकसभा चुनाव में इन्दिरा गाँधी की हत्या के बाद कांग्रेस के पक्ष में उत्पन्न संवेदना लहर में बुरी तरह परास्त हुई। भाजपा को देश भर में सिर्फ दो स्थानों पर जीत मिली। इस हार के बाद 1986 में वाजपेयी की जगह लालकृष्ण आडवानी ने भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष की जिम्मेदारी सँभाली और उनके नेतृत्व में भाजपा ने स्वयं को हिन्दुत्व की राह पर ले जाने का निश्चय किया। आडवानी ने विश्व हिन्दू परिषद् द्वारा शुरू किये गये राम जन्मभूमि आन्दोलन से भाजपा को जोड़ा और राम मन्दिर निर्माण के लिए रथयात्रा निकाली (सीतापति, 2020)। राम जन्मभूमि आन्दोलन के दौरान, भाजपा ने सामाजिक समीकरण का भी ध्यान रखा। स्थानीय स्तर पर ज्यादा से ज्यादा पिछड़े और दलित समुदाय के नेताओं का समर्थन लिया। लोधी समाज के कल्याण सिंह, साक्षी महाराज; कुर्मी समुदाय के विनय कटियार, आदि उत्तर प्रदेश में इस आन्दोलन के नेता थे। मध्य प्रदेश में उमा भारती (लोधी), बाबूलाल गौर (यादव), शिवराज सिंह चौहान (किरार) को प्रमुख चेहरा बनाया।

राम जन्मभूमि आन्दोलन के बाद, भाजपा राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस की एक मजबूत विकल्प बन कर उभरी। 1984 में दो स्थान जीतने वाली भाजपा ने 1989 के लोकसभा चुनाव में 85 और 1991 के लोकसभा चुनाव में 120 स्थानों पर जीत प्राप्त की। इसके साथ ही 1990-91 में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और राजस्थान जैसे हिन्दी भाषी राज्यों में भाजपा की सरकार बनी। ब्राह्मण-बनिया पार्टी के तमगे से उलट भाजपा ने ज्यादा से ज्यादा पिछड़े और दलित नेतृत्व को बढ़ावा दिया। अगस्त 2023 तक भारतीय जनता पार्टी द्वारा बनाये गए कुल मुख्यमन्त्रियों में से 30.9 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्ग से रहे हैं, वहीं कांग्रेस द्वारा बनाये गए कुल मुख्यमन्त्रियों में से सिर्फ 17.2 प्रतिशत ही इस वर्ग से आये हैं। वहीं गैर-भाजपा और गैर-कांग्रेस दलों में यह आँकड़ा 28 प्रतिशत रहा है (रंजन, 2023)।

निष्कर्ष

भारतीय राजनीति में जनसंघ और उसके बाद भारतीय जनता पार्टी को प्राय: एक ब्राह्मण-बनिया पार्टी के तौर पर पहचाना गया। इसका मुख्य कारण जनसंघ और उसके बाद भाजपा की हिन्दुत्व की राजनीति रही है। चूँकि धर्म हिन्दुत्व की राजनीति का महत्वपूर्ण पहलू

रहा है। इस बात पर बहुत ध्यान नही दिया गया कि जनसंघ और भाजपा ने हिन्दुत्व की राजनीति में जाति को हमेशा से साधने का प्रयास किया है। 1990 में विश्वनाथ प्रताप सिंह की जनता दल सरकार द्वारा मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के बाद भाजपा ने हिन्दुत्व और जातिगत समीकरणों का मिश्रण किया। इसी कारण 1990 के दशक में भाजपा उत्तर प्रदेश में पिछड़े वर्ग की राजनीति का उभार होने और मुलायम सिंह यादव जैसे नेताओं के बावजूद मजबूत बनी हुई थी। कल्याण सिंह और विनय कटियार जैसे पिछड़े वर्ग के हिन्दुत्ववादी नेता भाजपा में थे। 1990 के दशक के अन्त तक उत्तर प्रदेश भाजपा में सवर्ण नेताओं, जैसे - कलराज मिश्र, लालजी टंडन, आदि और कल्याण सिंह में अनबन हो गई। फलत: भाजपा 2000 के दशक में उत्तर प्रदेश में लगातार कमजोर होती गई। 2014 से नरेन्द्र मोदी और अमित शाह की जोड़ी ने इन मतभेदों को खत्म कर एक नये ढँग से भाजपा की रणनीति तैयार की है। यद्यपि, उनके द्वारा दलित-पिछड़े वर्गों के नेताओं को आगे बढ़ाना कोई नयी बात नही है। दलित-पिछड़े समुदाय के कुछ वर्ग जनसंघ के आरम्भ से हिन्दुत्व की राजनीति के साथ रहे हैं।

टिप्पणियाँ

1. देखें, क्रिस्टोफर जफ्रेलोट, द हिन्दू नेशनलिस्ट मूवमेंट एंड द इंडियन पॉलिटिक्स, अभिषेक चौधरी, वाजपेयी : द एसेंट ऑफ द हिन्दू राइट, सुधा पाई एवं सज्जन कुमार, माया, मोदी, आजाद : दलित पॉलिटिक्स इन द टाइम्स ऑफ हिन्दुत्व।
2. उत्तर प्रदेश को इसलिए चुना गया है क्यूंकि जनसँख्या के आधार पर देश के इस सबसे बड़े राज्य को भारतीय राजनीति का 'हार्टलैंड' कहा जाता है, देखें, ज्ञानेश कुदेसिया, रीजन, नेशन, 'हार्टलैंड' : उत्तर प्रदेश इन इंडिया बॉडी पोलीटिक। भारतीय राजनीति की एक मशहूर कहावत है कि 'दिल्ली का रास्ता उत्तर प्रदेश से होकर जाता है' हिन्दी भाषी राज्यों में जनसंघ की पहली कोशिश उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में ही अपनी जड़ों को मजबूत करने की थी।
3. लखनऊ सन्धि के तहत कांग्रेस ने मुस्लिमों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र की माँग को स्वीकार किया था और बदले में मुस्लिम लीग ने आजादी के आन्दोलन में समर्थन देने की बात कही थी।
4. देशपांडे ने ग्वालियर सीट से इस्तीफा दे दिया था जो कि बाद में महासभा के ही उम्मीदवार नारायण भास्कर खड़े ने जीता। स्रोत : चुनाव आयोग।
5. 1967 के लोकसभा चुनाव में महासभा को एक सीट पर जीत मिली थी। गोरखनाथ मठ के महन्त दिगविजयनाथ ने गोरखपुर सीट पर जीत हासिल थी। स्रोत : चुनाव आयोग।
6. स्वतन्त्र पार्टी की स्थापना 1959 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के द्वारा किया गया था। यह पार्टी नेहरू जी के समाजवादी नीतियों के विरोध में बनी थी और देश के पूर्ववर्ती राजे- रजवाड़ो को उनका हक देने की बात करती थी।
7. 1937 में मुखर्जी निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुने गए थे।
8. आधिकारिक तौर पर संघ अपने आप को एक सांस्कृतिक संगठन के रूप में देखता हैं और अपने स्वयंसेवकों को किसी भी राजनीतिक दल के साथ जाने की छूट देता है, लेकिन वास्तविकता में संघ के स्वयंसेवकों ने ही तब के जनसंघ और अभी के भारतीय जनता पार्टी का नेतृत्व किया है। भाजपा में विभीन्न स्तर पर संगठन मन्त्री का पद संघ के प्रचारक के लिए सुरक्षित रहता है।

9. माधव सदाशिव राव गोलवलकर को राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता सम्मान के भाव से गुरु जी कह कर ही सम्बोधित करते थे। यह परम्परा आज भी कायम हैं।

10. आजादी के बाद जम्मू-कश्मीर रियासत का भारत में विलय के समय कुछ खास रियायत दिया गयाथा जिसके तहत उस राज्य का अपना झंडा, अपना संविधान, प्रधानमन्त्री, और राष्ट्रपति के समान सदर-ए-रियासत कापद रखने की छूट दी गई। इस छूट को अस्थाई रूप से भारत के संविधान के अनुचेद्ध 370 में रखा गया था। 5 अगस्त 2019 को इस विशेष दर्जे को भारत की संसद ने समाप्त कर दिया था। देखें, द इंडियन एक्सप्रेस एक्सप्लेन्ड सेक्शन व्हेन जम्मू एंड कश्मीर हेड इट्स ओन प्राइम मिनिस्टर एंड सदर-ए-रियासत, 15 अप्रेल, 2019.

11. जनता पार्टी कांग्रेस (ओ), भारतीय जनसंघ,भारतीय लोकदल,सोशलिस्ट और जगजीवन राम के कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी के विलय के बाद बनी थी। देखें, विनय सीतापति, जुगलबन्दी : द बीजेपी बिफोर मोदी।

12. जनता पार्टी की सरकार बनने के बाद प्रधानमन्त्री पद के तीन मुख्य दावेदार थे मोरारजी देसाई, चौधरी चरण सिंह, और जगजीवन राम। देखें,नीरजा चौधरी,हाउ प्राइम मिनिस्टर्स डीसाईंड

सन्दर्भ

एंडरसन, वाल्टर एवं दामले, श्रीधर (2019). *द ब्रदरहुड इन सेफ्रॉन,* गुड़गाँव : पेंग्विन रेंडम हाउस.

बेक्सटर, क्रेग (1971). *द जनसंघ : ए बायोग्राफी ऑफ एन इंडियन पोलिटिकल पार्टी,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

बेगम, आमना (2023). 'कास्टिज्म इन काश्मीर वाज स्वेप्ट अंडर द रग. एससी डिसीजन ऑन आर्टिकल 370 विल हेल्प एड्रेस इट', *द प्रिन्ट,* दिसम्बर 15.

ब्रास, पॉल (1997). 'द पोलिटिसाइजेशन ऑफ द पीजेन्ट्री इन ए नॉर्थ इंडियन स्टेट', इन सुदीप्ता कविराज, *पोलिटिक्स इन इंडिया,* नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

चौधरी, अभिषेक (2023). *वाजपेयी : द एस्सेन्ट ऑफ द हिन्दू राइज 1924-1977,* नई दिल्ल, पिकाडोर इंडिया.

चौधरी, नीरजा (2023). हाउ प्राइम मिनिस्टर डिसाइड, नई दिल्ली : एलेफ बुक कम्पनी.

दासगुप्ता, कौशिकी (2020). 'द भारतीय जनसंघ एंड द फर्स्ट जनरल इलेक्शन इन वेस्ट बेंगाल : इ एनिमा ऑफ द हिन्दू पोलिटिक्स इन द 1950स', *स्टडीज इन इंडियन पोलिटिक्स,* 59-67.

देशमुख, नाना (1979). *आरएसएस : विक्टिम और स्लेंडर.* नई दिल्ली : विजन बुक्स.

गोविन्दाचार्य, के.एन. (2023). *रोल ऑफ आरएसएस इन द फंक्शनिंग ऑफ बीजेपी* (रूपेश रंजन, इंटरविवर), मई 8.

ग्राहम, ब्रूस (1990). *हिन्दू देशनलिज्म एंड इंडियान पोलिटिक्स : इ ओरिजिन्स एंड डेवलपमेंट ऑफ द भारतीय जनसंघ,* लन्दन : केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

इंडिया, इलेक्शन कमीशन (1952). *स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन इलेक्शन्स टू द लेजिसलेटिव असेम्बलीज,* नई दिल्ली : इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया.

इंडिया, इलेक्शन कमीशन (1952). *स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द फर्स्ट लोकसभा,* नई दिल्ली : इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया.

इंडिया, इलेक्शन कमीशन (1957). *स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द सेकण्ड लोकसभा,* नई दिल्ली : इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया.

इंडिया, इलेक्शन कमीशन (1962). *स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द थर्ड लोकसभा*, नई दिल्ली : इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया.

इंडिया, इलेक्शन कमीशन (1967). *स्टेटिस्टिकल रिपोर्ट ऑन जनरल इलेक्शन्स टू द लेजिसलेटिव असेम्बलीज*, नई दिल्ली : इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया.

जेफ्रोलेट, क्रिस्टोफर (1996). *द हिन्दू नेशनलिस्ट मूवमेंट एंड इंडियान पोलिटिक्स : 1925 टू द 1990*, नई दिल्ली : पेंग्विन बुक्स इंडिया लिमिटेड.

कार्तिकेयन, सुचित्रा (2023). *इ थ्री बिल्स ऑन रिजर्वेशन इन जम्मू एंड काश्मीर*, नई दिल्ली : द हिन्दू.

कौशल, प्रदीप (2016). *ए जनसंघ फाउन्डर हू ब्रुक्ड नो डिक्टेट*, नई दिल्ली : द इंडियन एक्सप्रेस.

कोचनेक, स्टेनली ए. (1968). *द कांग्रेस पार्टी ऑफ इंडिया : द डायनामिक्स ऑफ ए वन पार्टी डेमोक्रेसी*, प्रिन्सटन : प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

मधोक, बलराज (2001). *पोर्ट्रेट ऑफ ए मॉर्टियर*, नई दिल्ली : रूपा पब्लिकेशन.

पाठक, विकास (2023). *डिकोड पोलिटिक्स : अमित शाह, ए जनसंघ स्लोगन एंड जेएंडके*, नई दिल्ली : इंडियन एक्सप्रेस

रंजन, निशान्त (2023). *नम्बर थ्योरी : ओबीसी चीफ मिनिस्टर इन इंडिया; डीप डाइव इन टू सोशल पैटर्न्स*, नई दिल्ली : हिन्दुस्तान टाइम्स.

जनसंघ, भारतीय (1973). प्रिन्सिपल्स एंड पोलिसीज मेनिफेस्टोस कॉन्स्टीट्यूशन. पार्टी डाक्यूमेंट्स, वॉल्यूम 1, नई दिल्ली, नई दिल्ली, इंडिया : भारतीय जनसंघ.

सीतापति, विनय (2020). *जुगलबन्दी : द बीजेपी बिफोर मोदी*, नई दिल्ली : पेंग्विन.

तिवारी, आर.के. (2019). *पोलिटिक्स पार्टीज, पार्टी मेनिफेस्टोस एंड इलेक्शन्स इन इंडिया, 1909-20214*, न्यूयॉर्क : रूटलेज.

विश्वनाथ, अपूर्व (2023). *आर्टिकल 370 एब्रोग्रेशन अनहेल्ड : हाउ एससी आन्सर्ड द थ्री क्वेश्चन्स इन द गवर्नमेंट'स फेवर*, नई दिल्ली : इंडियान एक्सप्रेस.

वीनर, मायरन (1957). *पार्टी पोलिटिक्स इन इंडिया : द डेवलपमेंट ऑफ ए मल्टी-पार्टी सिस्टम*, प्रिन्सटन : प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

यादव, भूपेन्दर एवं पटनायक, इला (2022). *इ राइस ऑफ द बीजेपी : द मेकिंग ऑफ द वर्ल्ड'स लार्जेस्ट पोलिटिकल पार्टी*, गुरुग्राम : पेंग्विन रेन्डम हाउस.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 51-61)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

शासितों का हिन्दुत्व

कुँवर प्रांजल सिंह*

शोधपत्र में यह समझने का प्रयास किया गया है कि भारतीय लोकतन्त्र में बढ़ते हिन्दुत्व ने जनसामान्य के रोजमर्रा के जीवन को किस प्रकार प्रभावित किया है? साथ ही, हिन्दुत्व की राजनीतिक संकल्पना ने स्थानीय राजनीतिक विचारों को बदलने के लिए किस प्रकार की रणनीतियों को आधार बनाया है? इन प्रश्नों के विश्लेषण के लिए अध्ययन क्षेत्र के कुछ वृत्तान्त प्रस्तुत हैं जिनका आँकलन हिन्दुत्व के विभिन्न आयामों के आधार पर किया गया है। इन वृत्तान्तों का सीधा सम्बन्ध जनमानस के दैनिक जीवन से जुड़ा हुआ है।

जिस हिन्दुत्व की संकल्पना का प्रयोग इस शोधपत्र में किया जा रहा है उसका एक राजनीतिक अर्थ है, क्योंकि वह सत्ता के निर्माण में शक्ति संचालन की भूमिका निभा रही है। भारतीय राजनीति की मुख्यधारा में भाजपा की सशक्त भूमिका और स्थापित हिन्दुत्व आज की राजनीतिक वास्तविकता का अंग है। यह 1923 में प्रकाशित विनायक दामोदर सावरकर के 'हिन्दुत्व' से कहीं आगे है। सावरकर ने जिस हिन्दुत्व की संकल्पना को निर्मित करने के लिए

*सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (सान्ध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. **E-mail: pranjal695@gmail.com**

एक सैद्धान्तिक आधार दिया था उसने भारतीय राजनीति में पहले आन्दोलन का रूप ग्रहण किया फिर वह व्यवहारिक राजनीति का हिस्सा बना। अमर्त्य सेन इस बात को बखूबी विश्लेषित करते हैं कि हिन्दू धर्म तो अति पुरातन है किन्तु हिन्दुत्व एक बहुत नवीन राजनीतिक आन्दोलन है। 1998 से 2004 तक की भाजपा सरकार को अमर्त्य सेन हिन्दुत्व की एक प्रबल शक्ति के रूप में परिभाषित करते हैं। वे बताते हैं कि मई 2004 में चुनावी पराजय से पहले, संयुक्त सरकार के प्रमुख घटक के रूप में हिन्दुत्व आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करने वाला राजनीतिक दल, भारतीय जनता पार्टी, छह वर्षों तक देश पर शासन कर चुका है।[1] दरअसल 2004 में भाजपा चुनाव अवश्य हार गयी लेकिन अन्देशा साफ तौर पर दिखा कि दूरगामी दृष्टि से उसने साम्प्रदायिक विभाजन की राजनीति में सफलता प्राप्त कर ली थी। यह भाजपा की पराजय एक राजनीतिक दल के रूप में थी न कि विचारधारा की पराजय थी। सुहास पल्शीकर और अभय कुमार दुबे (2004) के चुनावी विश्लेषण में यह बताते हैं कि इस चुनाव में पार्टी और धर्म के बीच एक नाता बनता हुआ दिखा। भाजपा और उसके सहयोगियों को 40 प्रतिशत हिन्दुओं ने ही वोट दिया। यह परिणाम तब आये जब भाजपा ने हिन्दू ध्रुवीकरण का प्रयास नहीं किया। यानि बिना हिन्दुत्व कार्ड खेले भाजपा हिन्दुओं को यह सन्देश पहुँचाने में सफल रही कि वह उनकी पार्टी है और ज्यादातर हिन्दुओं ने भाजपा के इस दावे को स्वीकार भी किया।[2] इससे लोकतन्त्र की एक नयी राजनीतिक परिभाषा निर्मित हुई। जहाँ ज्यादातर लोग लोकतन्त्र का मतलब बहुसंख्यकवाद के रूप में समझने लगे हैं। धार्मिकता की अभिव्यक्तियाँ सघन रूप से बढ़ती जा रही हैं, अपने-अपने समुदायों के प्रति निष्ठा रखने का आग्रह इस हद तक बढ़ गया है कि लोग अन्तर-धार्मिक और अन्तर-जातीय विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाने की बात करने लगे हैं, धर्मान्तरण पर पाबन्दी चाहते हैं और वे अलग-अलग विवाह कानूनों का समर्थन करते हैं। अर्थात् वे समान नागरिक संहिता के पक्ष में नहीं हैं।[3] साम्प्रदायिकता को खुल कर बढ़ावा देने वाली घटनाओं के बारे में स्पष्ट जागरूकता का अभाव होता जा रहा है। इस प्रक्रिया से हिन्दुत्व को एक विचारतन्त्र का हिस्सा बनने का मौका मिल जाता है। जिससे हिन्दुत्व भारतीय राजनीति के स्थानीय स्तर पर प्रतियोगिता तथा जातिगत समीकरणों में अलग-अलग ढँग से प्रवेश करता है। जहाँ लोकतन्त्र की परिभाषा जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन न होकर हिन्दुत्व के विचारतन्त्र से शासित लोकतन्त्र में प्रवेश कर गया है। जिसे 'शासितों का हिन्दुत्व' कहा जा सकता है। इस पक्ष को प्रदर्शित करने के लिए क्षेत्र कार्य के वृत्तान्त पर लौटते हैं।

वृत्तान्त

1. प्रभुत्वशाली जातियों का हिन्दुत्व

'योग मंगल दल' कब बना और इस दल की आवश्यकता क्यों थी? शुरूआत में सामाजिक और सार्वजनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर यह 2009 में बना था। इसके बनने की ठीक-ठीक तारीख तो याद नहीं, हाँ इतना जरूर याद है कि उस समय गाँव में

रामलीला और मेलों का समय था। इस दल का मुख्य उदेश्य गाँव में किसी के घर शादी-विवाह, मरनी-करनी, पंचायत से जुड़े मामले पर बात-विचार करना शामिल था। किस तरह के लोग इसके सदस्य थे? इसमें उम्र के हिसाब से 25 से 30 साल के लोग शामिल थे। जाति के आधार पर पंडित और ठाकुर ही इसके सदस्य थे। ऐसा क्यों था कि उच्च जाति के लोग ही इसके सदस्य थे, जबकि गाँव में अन्य जाति (चमार, मुसहर, कहार, मौर्य, यादव) और अन्य धर्म (मुसलमान) भी मौजूद हैं? वो मेरी तरफ ध्यान से देखते हुए बोले कि नहीं... यह हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए बनाया गया था। ऐसा क्या हुआ था कि अचानक हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए गाँव में इस प्रकार का एक दल बनाना पड़ा? ऐसा बहुत कुछ बड़ा तो याद नहीं है लेकिन हिन्दू धर्म पर बात विचार का लोप होने लगा था। 'हिन्दू धर्म के लोप' की चिन्ता 25 से 30 साल के गाँव के युवाओं को कैसे महसूस हुई? लोग धर्म को पूजा पाठ तक सीमित रखते थे, जबकि हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए भगवान् परशुराम अपने हाथ में अस्त्र-शस्त्र भी लेकर चलते थे। इस बात को थोड़ा और समझाइये... अरे भाई! हिन्दू धर्म एक सामाजिक रीति-रिवाज भी है। आप मानते हैं कि नहीं, और उस सामाजिक रीति-रिवाज में जो रक्षा है उस रक्षा में हमारी बहन बेटी भी आती है। क्योंकि कानून तो उनकी रक्षा कर ही रहा था और हमारी रक्षा कौन करता? इसलिए गाँव के युवाओं ने इस दल को निर्मित किया था। किस प्रकार का कानून उनकी रक्षा कर रहा है? तो क्या यह कहा जा सकता था कि यह दल हिंसक था? नहीं, हिंसक नहीं था, लेकिन जाति और धर्म की रक्षा के लिए कभी कभी हाथ-पैर चले होंगे तो कहा नहीं जा सकता।[4]

फिर यह दल समाप्त कैसे हुआ? इस दल को समाप्त करने के लिए कई बार तो गाँव के बुजुर्गों ने ही सलाह दी और दूसरी तरफ बेरोजगारी की मार इतनी थी कि इस दल के सक्रिय सदस्य कमाने के लिए गाँव से महानगरों की ओर चले गये। धीरे-धीरे इस दल की सभी कार्यवाहियाँ ठप्प पड़ने लगीं। लेकिन गाँव में हिन्दू एकता का प्रभाव बढ़ रहा था। हिन्दू एकता का प्रभाव कैसे बढ़ रहा था? जो लोग अयोध्या राम जन्मभूमि आन्दोलन में गये थे उनकी कहानियाँ वो युवा भी सुनने लगे थे जो उस समय तक पैदा भी नहीं हुए थे और धीरे-धीरे गाँव में यह और प्रभावशाली हो गयीं, जब 2014 में केन्द्र में भाजपा की सरकार बन गयी। 2014 में भाजपा की सरकार बनने के बाद क्या फिर से योग मंगल दल को बनाया गया? नहीं, फिर क्या जरूरत थी मंगल दल की। अब तो हिन्दू राज ही पूरे भारत पर आ गया था। गाँव के लोग हिन्दुत्व से कैसे जुड़े हुए हैं? हिन्दुत्व से मतलब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े हुए थे। योग मंगल दल भी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में ही अपनी आस्था रखता था। संगठित रूप से देखा जाए तो गाँव में पहली बार शाखा 2015 में लगायी गयी थी। उसके बाद गाँव में गुरु दक्षिणा जैसे कार्यक्रम होते रहते हैं। वर्तमान में शस्त्रपूजन का आयोजन भी गाँव में किया जाता है। इससे पहले गाँव में कभी भी न तो शाखा थी और न ही कभी इस प्रकार के हिन्दू एकता जैसी शब्दावली का प्रयोग हुआ था।[5]

2. स्थानीयता का हिन्दुत्व

इस वृत्तान्त में हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि हिन्दुत्व ने गाँव की आन्तरिक संरचना को कैसे बदला है? स्थानीय लोगों ने भाजपा के हिन्दुत्व की विचारधारा को स्थानीय देवी-देवताओं के माध्यम से एक नये लोकवृत्त का निर्माण किया। भाजपा के सरकार बनाने से पहले धर्म एक जातीय मसला था। किसी भी धार्मिक कार्यक्रम को करने के लिए शक्ति प्रदर्शन या संगठनात्मक आवरण देने की जरूरत नहीं पड़ती थी। लेकिन 2014 के बाद धर्म एक संगठनात्मक राजनीतिक मंच के रूप में सामने आया है। गौर करें, गाँव में कावड़ 'शिव शक्ति कावरिया संघ' के नाम से एक संगठनात्मक रूप ले चुका है। श्रावण मास में वैद्यनाथ धाम की यात्रा का आयोजन करता है। जिस पर ₹ 2500 का टिकट शुल्क लगाया जाता है। यह कावड़ यात्रा जब गाँव के बीच से होकर गुजरती है, तब इसमें बजने वाले गाने भाजपा की रैलियों जैसे लगते हैं। मसलन, जो राम को लाये हैं हम उनको लायेंगे... जय श्री राम... आदि। यहाँ मैं सतेन्द्र कुमार की इस बात से सहमत हूँ कि धर्म का यह संगठनात्मक आयोजन खास युवाओं में शक्ति प्रदर्शन का माध्यम है। इस प्रदर्शन की राष्ट्रीय राजनीति में भी महत्वपूर्ण भूमिका भी है। इसलिये धर्म को केवल एक बिन्दु से समझने की गलती नहीं करनी चाहिए, खास तौर पर भारत जैसे वैविध्यपूर्ण समाज में। भारतीय समाज का निर्माण कई परतों और स्तरों से मिलकर हुआ है।[6] इसे एक बड़े परिवर्तन के तौर पर भी देखा जा सकता है, जहाँ स्थानीय स्तर पर धार्मिकता और लोकाचार मिलकर कार्य करते थे। इनका कोई संगठित स्वरूप नहीं था। और न ही इनमें किसी भी प्रकार के शक्ति प्रदर्शन के इरादे शामिल थे। लोकधर्मिता से होते हुए कावड़ यात्रा धीरे-धीरे पूंजी, राजनीति तथा संगठित धर्म के साथ मिलकर नया रूप ग्रहण करने लगती है। आज की कावड़ यात्रा उस ग्रामीण और कस्बे की ढीली-ढाली असंगठित पारिवारिक धार्मिकता से संचालित यात्रा नहीं है बल्कि इस नयी कावड़ यात्रा को बाजारीकरण, कावड़ सेवा समितियों की राजनीति, धार्मिक कामना तथा संघ के हिन्दुत्ववादी कार्यक्रमों ने तैयार किया है।[7]

दरअसल, हिन्दुत्व का स्थानीयकरण केवल धार्मिकता से जुड़ा मामला नहीं था बल्कि यह स्थानीय रूप से एक ऐसी राजनीतिक समझ को विकसित कर रहा है जो संगठित हिन्दुत्व के आधार पर तय की जा रही है। मसलन, पुष्पनगर कल्याण समिति का गठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के आदर्शों को स्थानीय स्तर पर उतारने के लिए ही 2020 में बनाया गया। जिसमें आरएसएस द्वारा चलाये जा रहे गुरु दक्षिणा या शस्त्र पूजन जैसे कार्यक्रमों को अंजाम दिया जाता है। इस प्रकार गाँव की लोक संरचना का राजनीतिक परिवर्तन राष्ट्रीय राजनीति में व्याप्त हिन्दुत्व के परिवर्तन से जुड़ जाता है। अब गाँव की कहानियों में बुजुर्गों की कारस्तानियों से ज्यादा सावरकर और आरएसएस की गतिविधियों की चर्चा विद्यमान रहती है।

3. मातहत समाज का हिन्दुत्व

बीबीसी हिन्दी द्वारा अप्रैल 2024 में हिन्दुत्व पहचान और दलित के बीच बनते सम्बन्धों की एक पड़ताल की गयी थी, जिसमें नन्दकिशोर रैगर का आरएसएस से जुड़ाव क्यों और किन कारणों से है, इस पर प्रकाश डाला गया था। नन्दकिशोर रैगर दलित समाज से आते हैं। शुरूआती दिनों में नन्दकिशोर रैगर आरएसएस में व्यायाम करने के लिए जाते थे। लेकिन संघ में लगातार भागीदारी करते हुए रैगर को यह लगा कि 'संघ में ऊँची जाति का प्रभुत्व है' यह मात्र भ्रान्ति है। संघ सबके लिए है। संघ और भाजपा की सरकार बनने से पहले लोग एक ही विचारधारा के थे - 'कांग्रेस'। कांग्रेस के अलावा मोहल्ले में कोई कदम भी नहीं रख पाता था। लेकिन संघ से जुड़ने के बाद अन्य समाज के लोग भी हमारा सम्मान करते हैं। कहीं भी आता-जाता हूँ तो लोग 'मुझे प्रणाम करते हैं'। 'भाई साहब' कह कर बुलाते हैं। संघ दलित के पक्ष में है।[8] नन्दकिशोर रैगर की बात और उनका वीडियो जब क्षेत्रीय कार्य के दौरान दलितों की चौपाल पर रखा गया और वहाँ मौजूद दलितों के विचारों में हिन्दुत्व को लेकर दो हिस्से हो गये। एक हिस्से में लगभग 50-65 वर्ष के बुजुर्ग थे, जिसमें सोहनलाल का कहना था कि बाबू जब महामारी फैली थी तो कोई राजनीतिक दल हमारे बीच नहीं आया। कामकाज भी बिल्कुल बन्द हो चुका था। अपने जीवन में सालों बहनजी (बसपा) को वोट दिये। उनके लोग भी कभी नहीं आये। उस समय रामजी वाले आरएसएस ने हमें राशन, तेल और ₹ 500 दिये, हमारी देखभाल की। सोहनलाल की इस बात को सुन कर सनोज भड़क उठा। सनोज की उम्र 30 साल थी। सोहन और सनोज दोनों गाँव में ही दैनिक मजदूरी करते हैं। लेकिन सनोज भीमराव अम्बेडकर और संविधान को जानता है। राजनीतिक तौर पर सनोज भीम आर्मी का सक्रिय सदस्य भी है। उसका कहना था कि ये आरएसएस वाले हमसे वही काम कराना चाहते हैं जो हमारे बाप-दादाओं ने बन्धुआ रह कर किया था। भैया ये आरएसएस और मोदी सरकार हम दलितों को सिर्फ दलित बना रही है, लाभ सिर्फ ठाकुर-पंडित को ही मिल रहा है। इस बात को सुन कर लगभग हर उम्र के लोग सहमति में गर्दन हिला रहे थे। अपनी आवाज को और कड़क करते हुए सनोज ने यह भी कहा कि इसीलिये हमारी बस्ती में कोई पूजा-पाठ नहीं, सिर्फ बाबासाहब की पूजा होती है।[9]

क्षेत्र कार्य के दौरान पाया गया कि हिन्दुत्व की राजनीति ने ग्रामीण परिवेश की हर संरचना को, सामाजिक और राजनीति को अलग-अलग ढँग से प्रभावित किया है। जब हिन्दुत्व प्रभुत्वशाली जातियों के साथ अन्योन्य क्रिया करता है तब इससे निकलने वाला यूटोपिया हिन्दू राष्ट्र की कल्पना में परिवर्तित होता है। जहाँ राम जन्मभूमि आन्दोलन का सजीव चित्रण पहले बनता है। जिसका संगठनात्मक स्वरूप प्रभुत्वशाली जातियों के बीच राजनीतिक चेतना का आधार है। योग मंगल दल इसी राजनीतिक चेतना का नाम है। यह एक ऐसा धर्म आधारित राजनीतिक संगठन था जिसका ढाँचा पिरामिडीय नहीं था। इसी का परिणाम है कि विभिन्न वर्चस्वशाली उच्च जातियाँ आमने-सामने न हो कर एक साथ आ गयीं। जो जातियाँ अपने रंग-रुतबे के अनुसार दलबन्द थीं वह अब हिन्दुत्व के लिए एक साथ दिखने

लगीं। यह शासितों के हिन्दुत्व की ऐसी सफलता है जिसे राम जन्मभूमि आन्दोलन के समय भाजपा और संघ एक सुखद स्वप्न के रूप में देखा करती थीं। हिन्दुत्व के जिस तूफान ने 1990 के बाद से समूचे उत्तर प्रदेश को अपनी जद में कर लिया उसकी प्रतिध्वनि इन गाँवों में स्थायी रूप से दिखने लगी। गाँव का मन्दिर जो अब से पहले कुछ खास मौकों पर ही आबाद होता था, वह अब प्रतिदिन पूजा-पाठ, कीर्तन, राजनीतिक चर्चा का केन्द्र बन गया है। यहाँ एक लाउड स्पीकर भी लगा दिया गया है जिसके माध्यम से हर सुबह कीर्तन प्रसारित किये जाते हैं। इस परिवर्तन का स्वरूप धार्मिक है और विषयवस्तु राजनीतिक है जिसका उदेश्य हिन्दुओं को जाग्रत करना है।[10]

यह सुनील खिलनानी की उस परिकल्पना को भी सिद्ध कर देता है जहाँ वह मानते थे कि भारतीयता को पुनर्परिभाषित करने की आकांक्षा रखने वाला हिन्दू राष्ट्र हमेशा मजबूत राज्य को ऐसे औजार के रूप में देखता रहा है जिसके जरिये नयी अस्मिता गढ़ी जा सके।[11] यह नयी अस्मिता जब व्यावहारिक राजनीति का हिस्सा बनी तब सबसे पहले उसने पारम्परिक जाति संरचना में व्याप्त जाति आधारित कर्मकांड, पूजा पद्धति, समाज व्यवस्था के नीतिगत व्यवहारों को मजबूती प्रदान की। इसका असर राष्ट्रीय राजनीति के चुनावी समीकरणों पर भी पड़ना शुरू हुआ था। विकासशील समाज अध्ययन पीठ के चुनावी आँकड़ों के अनुसार 2009 में ऊँची जातियों के शहरी और ग्रामीण दोनों तरह के मतदाताओं ने भाजपा को कांग्रेस और अन्य दलों के मुकाबले ज्यादा बड़ी संख्या में वोट दिया। जैसे ग्रामीण इलाकों से भाजपा को 2009 में 33 प्रतिशत वोट मिले और शहरी इलाकों से 28 प्रतिशत वोट प्राप्त हुए थे। वहीं कांग्रेस ग्रामीण और शहरी दोनों इलाकों से 27 तथा 27 प्रतिशत वोट ही अपने पक्ष में कर पाई थी। लेकिन 2014 में भाजपा का यह आँकड़ा बढ़ कर 46 प्रतिशत (ग्रामीण) तथा 51 प्रतिशत (शहरी) तक जा पहुँचा था। वहीं कांग्रेस 18 प्रतिशत (ग्रामीण) और 20 प्रतिशत (शहरी) तक ही सिमट कर रह गयी।[12] इस प्रक्रिया ने लोकतान्त्रिक राजनीति की मूल परिभाषा को ही परिवर्तित कर दिया। जिसे रजनी कोठारी परिभाषित करते हुए यह मानते थे कि लोकतान्त्रिक राजनीति मूलत: आवश्यकताओं की राजनीति थी, जिसके दो पक्ष थे - पहला, जाति प्रथा ने नेतृत्व को राजनीतिक गोलबन्दी के लिए संरचनात्मक और विचारधारात्मक आधार प्रदान किया जिससे राजनीति को विभिन्न तबकों के प्रतिनिधि संगठन मिले और पहचान का वह पैमाना मिला जिसके लिए समर्थन को जमीन पर उतरा जा सके। दूसरा, स्थानीय दावों के कारण नेतृत्व को रियायती रुख अपनाना पड़ा। उनके बीच सत्ता की आकांक्षा को लेकर बनी सहमति को मान्यता देनी पड़ी, जिसके माध्यम से राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को पारम्परिक शैली में संयोजित किया गया।[13] रजनी कोठारी ने जिस संरचनात्मक और विचारधारात्मक आधार की ओर इशारा किया था, वह आज हिन्दुत्व के रूप में स्थानीय राजनीति में उच्च जातियों के प्रभुत्व को कायम करने में मददगार सिद्ध हुई है। राजनीतिक स्पर्धा के स्थान पर राजनीतिक गोलबन्दी की ऐसी चर्चा चल पड़ी है जिसमें जाति और धर्म की रक्षा का लक्ष्य सर्वोपरी है। इस बात को कहने में स्थानीय लोगों के चेहरे पर जो गर्व था वह

'गर्व से कहो हम हिन्दू हैं' जैसी भावना से प्रेरित था। उच्च जातियों में हिन्दुत्व भविष्य की कल्पनाओं में केन्द्रित हिन्दू राष्ट्र से संचालित होता है।

वहीं मातहत समाज का हिन्दुत्व; राष्ट्र की कल्पना से ज्यादा राजनीति और इतिहास में अपने स्थान और आवश्यकता की तलाश में हिन्दुत्व के करीब आया है। गौरतलब है कि मातहत समाज जब हिन्दुत्व के करीब आया तब राजनीतिक गोलबन्दी दो आधारों पर बँट जाती है - पहला, मातहत समाज हिन्दुत्व और भाजपा में अपने गौरवशाली इतिहास की झलकियाँ देखने के लिए गोलबन्द हुए, जिसका फायदा भाजपा को सरकार बनाने में मिलता रहा। नन्दकिशोर रैगर तथा सोहनलाल इसी राजनीतिक गोलबन्दी का परिणाम हैं। सोहनलाल अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए भाजपा का दामन थाम रहे हैं, वहीं रैगर अपने आत्मसम्मान के लिए हिन्दुत्व और आरएसएस के साथ खड़े हैं। सोहनलाल का भरोसा अब इस बात पर है कि महामारी जैसी विकट समस्या में उनके साथ उनकी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी नहीं थी बल्कि रामजी वाले आरएसएस के कार्यकर्ता उनके बीच मौजूद थे। यहाँ सोहनलाल और उनके जैसे उम्र (50-65 वर्ष) के लोगों के बीच आरएसएस एक सामाजिक संगठन के रूप में अपनी छवि बनाये हुए है। जबकि राजनीतिक भागीदारी के तौर पर इनका वोट बसपा को ही जाता रहा है। यहाँ बताते चलें कि पूर्वी उत्तर प्रदेश में चर्मकार एकमुश्त वोट बसपा को करता था। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उनके कार्यकर्ताओं की मौजूदगी यह आँकड़ा तोड़ रही है। सोहनलाल के दिन की शुरूआत अब जय भीम से नहीं बल्कि राम-राम से शुरू होती है। दिलचस्प है कि गाँव में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की पहुँच को भारतीय राज्य की पहुँच के रूप में देखा जा रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्वयं को एक सांस्कृतिक संगठन के रूप में परिभाषित करता है, लेकिन वंचित वर्गों के बीच लगभग उसकी छवि सरकार के रूप में विद्यमान है। यह बात और स्पष्ट होती है कि सोहनलाल की आवश्यकताओं की पूर्ति भले ही आरएसएस ने की हो लेकिन आरएसएस की छवि सोहनलाल के लिए एक सांस्कृतिक संगठन न होकर सरकार के रूप में विद्यमान है। इस प्रकार की गतिविधियों ने लोकतन्त्र की परिभाषा में विद्यमान लोकप्रिय सम्प्रभुता का मूल विचार आधुनिक राज्य के ढाँचे की ओर धकलने में मदद की है। लोकतन्त्र की जिस कल्पना को लेकर सुनील खिलनानी ने 'भारत के विचार की सैद्धान्तिकी' का निर्माण किया था वह सन्देहात्मक होती जा रही है। जहाँ उनका मानना था कि लोकतन्त्र का विचार न केवल उसकी राजनीतिक अवधारणाओं में व्याप्त हो गया है बल्कि लोकतन्त्र के विचार ने भारतीय समाज व्यवस्था और राज्य के माई-बाप वाले चरित्र का क्षय भी किया है।[14] सोहनलाल की कहानी खिलनानी के इस विचार के विपरीत है। यहाँ आधुनिक राज्य वंचितों के बीच एक बार फिर अपनी माई-बाप वाली छवि लेकर उपस्थित हुआ है। यह माई-बाप वाली छवि उसे औपनिवेशिक राज्य से जोड़ती है, जहाँ आबादी को प्रजा का दर्जा प्राप्त था, नागरिकों का नहीं। इससे यह जाहिर है कि औपनिवेशिक शासन लोकप्रिय सम्प्रभुता को मान्यता नहीं देता था।[15] भारतीय राज्य के इस चरित्र ने औपनिवेशिक राज्य और उत्तर औपनिवेशिक राज्य के ऐतिहासिक मानकों को और मजबूती

प्रदान की है जिससे जमीनी लोकतान्त्रिक सम्बन्धों में एक राजनीतिक विरोधाभास बनता जा रहा है। यह राजनीतिक विरोधाभास लोकतान्त्रिक भागीदारी तथा राजनीतिक चेतना के बीच विद्यमान है। इसके दो पक्ष हैं -

(1) सामाजिक संरचना के हर वर्ग के पास उसकी अपनी एक राजनीतिक समझ विकसित हुई है। लेकिन उसका आधार केवल हिन्दुत्व है। उच्च जातियों का हिन्दुत्व एक राष्ट्र की कल्पना के साथ-साथ अन्य जातियों और धर्मों से असुरक्षा महसूस करता है। वहीं मातहत समाज एक तरफ हिन्दुत्व से अपने राजनीतिक और ऐतिहासिक स्थान की उम्मीद से संवैधानिक राजनीति से दूर हो रहा है और दूसरी तरफ युवा दलितों के द्वारा संविधान को ही धर्मग्रन्थ के रूप में हिन्दू पूजा पद्धतियों के अनुसार ढाला जा रहा है।

(2) भारतीय राज्य की जो सार्वभौमिक राजनीतिक समझ है वह पहले से ही यह मानकर चलती है कि वही एक मात्र जरिया है जो समाज के विभिन्न पक्षों को एक दूसरे से जोड़कर कानूनी मान्यता देता है। राज्य की इस समझ के पीछे जो तर्क है वह संविधान के अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष सभी समान हैं - से संचालित होता है। इससे राज्य को नागरिकों के बीच चल रहे राजनीतिक सवालों से बचने की भारी छूट मिल जाती है। इसका एक सकारात्मक परिणाम चुनावी भागीदारी में लगातार हो रही वृद्धि है। क्योकि वंचितों ने अपनी आवश्यकताओं की आपूर्ति के लिए लोकतन्त्र में ही अपनी माँगों को सुदृढ़ करना आज भी जारी रखा है।

इन विश्लेषणों के आधार पर यह माना जा सकता है कि भारतीय लोकतन्त्र का स्थानीय और क्षेत्रीय स्वरूप आज दोराहे पर खड़ा है, जिसका एक रास्ता हिदुत्व, भाजपा और आरएसएस की कार्य योजना के आधार पर तय किया जा रहा है। जिसमें स्थानीय समस्या बिजली, पानी, सड़क जिसका सीधा सम्बन्ध रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़ा हुआ है, उसे लगभग भुलाया जा चुका है। दूसरा रास्ता, संविधान की बढ़ती लोकप्रियता की ओर जाता है। इस लोकप्रियता में सबसे अधिक भूमिका समाज के मातहत वर्गों की है जो पहचान की राजनीति को संविधान की तर्ज पर गढ़ना चाहते हैं ताकि राज्य और समाज के सत्ता ढाँचे में अपनी उचित हिस्सेदारी की माँग कर सके, जिसके माध्यम से अतीत के सामाजिक और ऐतिहासिक अर्थों को पुनर्परिभाषित किया जा सके। संविधान को अधिकार, न्याय और समानता के साथ-साथ हकदारी के रूप में भी परिभाषित किया जा रहा है। सनोज की राजनीतिक चेतना इसी का परिणाम है। भीम सेना के उदय के बाद और चन्द्रशेखर के संसद में पहुँचने के बाद जो राजनीतिक परिदृश्य सामने आया है उसमें एक दूसरे से प्रतिद्वन्द्वात्मक और हिंसक सम्बन्ध रखने वाली कई जातियाँ एक दूसरे के नजदीक आने और एकता स्थापित करने की कोशिश कर रही हैं। हालाँकि सुधा पाई और सज्जन कुमार अपने हाल के अध्ययन, उत्तर प्रदेश की राजनीति में दलित गोलबन्दी को त्रिकोणीय आधार पर देखते हैं। पहला, मायावती जिन्होंने दलित आधार के साथ सर्वजन एजेंडे का इस्तेमाल कर पूर्ववर्ती कांग्रेस की

तरह एक सर्वसमावेशी पार्टी बनाने की कोशिश की है। वहीं दूसरी ओर, नरेन्द्र मोदी जिन्होंने दलित समाज के उल्लेखनीय हिस्से को भगवा बैनर के तले लाने में सफलता पायी है। तीसरा, एक नये दलित नेता चन्द्रशेखर आजाद ने हिन्दुत्व आधिपत्य के सामने एक चुनौती पेश कर दी है और उन्होंने कांशीराम और डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के आधार पर दलित आन्दोलन की ज्यादा प्रभावी ढँग से दावेदारी प्रस्तुत की है। माया, मोदी और आजाद के बीच के इस त्रिकोणीय मुकाबले और एक दूसरे में समाहित होती जा रही प्रवृत्तियों और इनके जरिए पैदा हुई सम्भावनाएँ हमारे विवरण को रोचक बनाती हैं। यह न केवल दलित राजनीति बल्कि भारत में लोकतान्त्रिक राजनीति के भविष्य के लिए बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं।[16] आरएसएस द्वारा दलितों सहित सभी सामाजिक समूहों को समाहित करने के लिए अपनाई गई रणनीतियों, अम्बेडकर की पुनर्व्याख्या और उनके समावेश तथा हिन्दुत्व की राजनीतिक अपील ने भारतीय लोकतन्त्र में भागीदारी और उसके चरित्र को बदल दिया है।[17] इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय लोकतन्त्र का स्थानीय और क्षेत्रीय स्वरूप पश्चिम के उदारवादी लोकतन्त्र की अवधारणा को चुनौती ही नहीं देता बल्कि लोकतन्त्र के विविध जनस्वरूपों की सम्भावना को बल देता है। पुष्पनगर गाँव की जन राजनीति में व्याप्त हिन्दुत्व ने पश्चिम में विकसित लोकतन्त्र की परिभाषा और अवधारणा की सार्वभौमिकता को ठेंगा दिखाया है। सतेन्द्र कुमार के इस विचार को स्वीकार किया जाना चाहिए कि पश्चिम में बनी इन परिभाषाओं, अवधारणाओं और संस्थानों को विभिन्न संस्कृतियों, स्थान, समय तथा धर्मों के लोग कैसे समझते हैं तथा अपने प्रयोग में लाने के लिए इनका कैसे पुनर्गठन करते हैं, यह अलग से समझने की जरूरत है।[18]

उपर्युक्त विश्लेष्ण के आधार पर शासितों के हिन्दुत्व का चरितार्थ केवल भाजपा और आरएसएस के चुनावी जीत तक सीमित नहीं है बल्कि इसकी व्यापकता को स्थानीय स्तर पर बने धार्मिक और राजनीतिक संगठनो ने ले लिया है जिसका उपयोग अन्य क्षेत्रीय दल भी करना चाहते हैं, जिससे जन समान्य के बीच हिन्दुत्व कोई सांस्कृतिक संगठन से निकली स्वतन्त्र विचारधारा नहीं है बल्कि जनस्मृतियों में यह पूरी कल्पना सरकार के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। हिन्दुत्व; हिन्दू अस्मिता की रक्षा, आवश्यकता और सम्मान की राजनीति का प्रहरी, विकास की राजनीति के चालक के रूप में जनस्मृतियों के बीच विद्यमान हैं। यही कारण है कि लोकतन्त्र की परिभाषा में अधिकार, समानता, न्याय जैसे मूल्य शिथिल पड़ते जा रहे हैं और इनके स्थान पर स्थानीय हिन्दुत्व अपने आवेग में कभी मध्यकालीन भारत को जलील करता हुए प्राचीन भारत से अपने तर्क, अपने नायक की तलाश करता फिर रहा है। इन सब के बावजूद भी संविधान की बढ़ती लोकप्रियता ही हिन्दुत्व के विचार को चुनौती दे सकती है। क्योंकि संविधान की बढ़ती लोकप्रियता सत्ता और हैसियत के लिए एक नयी जमीन तैयार कर रही है जो हिन्दुत्व के कर्मकांडीय दर्जे पर आधारित समुदायों की शब्दावलियों से बाहर है। जैसे-जैसे हिन्दुत्व सरकार या सांस्कृतिक समुदायों की शक्ल ले रहा

है उसके विपरीत ही संविधान की लोकप्रियता वंचितों के बीच एक विचारधारात्मक घेरा बना रही है। जिसमें संविधान स्वयं एक विचारधारा का रूप ले चुका है।

टिप्पणियाँ

1. अमर्त्य सेन (2005) भारतीय अर्थतन्त्र, इतिहास और संस्कृति. नयी दिल्ली : राजपाल प्रकाशन : 56-57.
2. सुहास पल्शीकर (2004) : 5426-5430. साथ ही अभय कुमार दुबे (2019) : 185.
3. अभय कुमार दुबे (2019) : 187.
4. यह पूरी चर्चा पूर्वी उत्तर प्रदेश के जिला आजमगढ़ तहसील फूलपुर गाँव पुष्पनगर थाना दीदारगंज में किये गये क्षेत्रीय दौरे पर आधारित है. दिनांक 13 अगस्त 2024 .
5. क्षेत्रीय दौरा 15 अगस्त 2024.
6. सतेन्द्र कुमार (2018) बहुजन धार्मिकता : धर्म का नया स्वरूप संकलित बदलता गाँव बदलता देहात : नयी समाजिकता का उदय. नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : 114.
7. वही : 119
8. देखें, बीबीसी हिन्दी के यूट्यूब चैनल पर दलित पहचान स्वीकार और तिरस्कार https://www.youtube.com/watch?v=Kl3GRwd_XWU.
9. कार्य क्षेत्र में की गयी बातचीत के अनुसार, दिनांक 16 अगस्त 2024.
10. हालाँकि जी.के. लिटन ने अपने मुजफ्फरनगर के शोध में यह दिखाया था कि कैसे बाबरी विध्वंस के बाद उत्तर प्रदेश की राजनीति में धार्मिक आधारों का प्रयोग बढ़ता गया. विस्तृत विश्लेषण के लिए देखें, जी.के. लिटन (1996), साथ ही हिलाल अहमद (2013) : 490.
11. सुनील खिलनानी (2001) : 202
12. विकाशील समाज अध्ययन पीठ के इन आँकड़ों पर सैद्धान्तिक नजर के लिए देखें, प्रतिमान का चुनाव विशेषांक. प्रतिमान, जनवरी-जून 2014. वर्ष 2, खंड 2, अंक 1, नयी दिल्ली : भारतीय भाषा कार्यक्रम, विकासशील समाज अध्ययन पीठ तथा वाणी प्रकाशन.
13. रजनी कोठारी (2003) : 203
14. सुनील खिलनानी (2001) : 37
15. पार्थ चटर्जी (2025) : 46-47
16. सुधा पाई तथा सज्जन कुमार (2023)
17. बद्रीनारायण यह मानते हैं कि दूरदराज के गाँवों तक हिन्दुत्व को पहुचने के लिए संघ के कार्यकर्ताओं ने 'नमो रथ' वाहन का इतेमाल किया जो उनकी रणनीति का अहं हिस्सा था। रिपोर्ट के मुताबिक ऐसे 400 वाहनों को इकट्ठा किया गया और उत्तर प्रदेश, उतराखंड एवं हिमाचल प्रदेश के गाँव-गाँव तक पहुँचने के लिए बड़े पैमाने पर इनका उपयोग किया गया। इन वाहनों पर नरेन्द्र मोदी की बड़ी तस्वीर मौजूद थी और विज्ञापन गीतों के माध्यम से नरेन्द्र मोदी के पक्ष में प्रचार किया गया। संघ कार्यकर्ताओं ने घर-घर जाकर भी प्रचार किया। विस्तृत विमर्श के लिए देखें, बद्रीनारायण (2021).
18. सतेन्द्र कुमार (2018) बहुजन धार्मिकता : धर्म का नया स्वरूप संकलित बदलता गाँव बदलता देहात : नयी समाजिकता का उदय. नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : 49-50.

सन्दर्भ

सुधा पाई तथा सज्जन कुमार (2023). *माया, मोदी आजाद : दलित पॉलिटिक्स इन द टाइम ऑफ हिन्दुत्व.* नयी दिल्ली : हार्पर कॉलिंस.

अमर्त्य सेन (2005). *भारतीय अर्थतन्त्र, इतिहास और संस्कृति.* नयी दिल्ली : राजपाल प्रकाशन.

बद्रीनारायण (2021). *रिपब्लिक ऑफ हिन्दुत्व : हाउ संघ इज रिशेपिंग इंडियन डेमोक्रसी.* नयी दिल्ली: पेंगुइन.

पार्थ चटर्जी (2025). *शासितों की राजनीति* (अनुवादक - कुँवर प्रांजल सिंह), नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

अभय कुमार दुबे (सम्पादित). *राजनीति की किताब : रजनी कोठारी का कृतित्व,* नयी दिल्ली : विकासशील समाज अध्ययन पीठ तथा वाणी प्रकाशन.

सुनील खिलनानी (2001). *भारतनामा* (अनुवादक - अभय कुमार दुबे), नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

जी.के. लिटन (1996). 'इनक्लूसिव व्यू ऑफ रिलीजन : अ रूरल डिस्कोर्स इन उत्तर प्रदेश', *इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली,* खंड 31, अंक 23.

हिलाल अहमद (2013). मुजफ्फरनगर 2013; 'राजनीतिक समाजशास्त्र के आइने में'. *प्रतिमान,* वर्ष 1, खंड 1, अंक 2. नयी दिल्ली : भारतीय भाषा कार्यक्रम, विकासशील समाज अध्ययन पीठ तथा वाणी प्रकाशन.

बीबीसी हिन्दी के यूट्यूब चौनल पर दलित पहचान स्वीकार और तिरस्कार https://www.youtube.com/watch?v=K|3GRwd_XWU.

सतेन्द्र कुमार (2018) *बहुजन धार्मिकता : धर्म का नया स्वरूप संकलित बदलता गाँव बदलता देहात : नयी समाजिकता का उदय.* नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सुहास पल्शीकर (2004). 'मैजोरिटेरियन मिडिल ग्राउंड*?', इकोनॉमिक एंड पोलिटिकल वीकली.* खंड 39, अंक 51.

अभय कुमार दुबे (2019). *हिन्दू एकता बनाम ज्ञान की राजनीति.* नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 62-74)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद : सामाजिक न्याय आधारित एक समावेशी दृष्टि

बिनय कुमार उपाध्याय*

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद सामाजिक न्याय पर आधारित एक समावेशी दृष्टि प्रस्तुत करता है जो जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को समाप्त कर एक समान और न्यायसंगत समाज की स्थापना पर केन्द्रित है। उनकी राष्ट्रवादी सोच का मूल आधार सामाजिक और आर्थिक समानता है जिसके लिए वे संवैधानिक सुरक्षा, शिक्षा, आर्थिक सशक्तीकरण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे उपायों को आवश्यक मानते थे। अम्बेडकर ने मुख्यधारा के बहुसंख्यकवादी और बहिष्कृत विचारधाराओं विशेषकर हिन्दू राष्ट्रवाद की आलोचना करते हुए जाति-व्यवस्था रहित और सामाजिक एकता पर आधारित राष्ट्र की कल्पना की। उनकी दृष्टि में सामाजिक न्याय ही राष्ट्रीय एकता और समग्र विकास की कुंजी है जो सभी अल्पसंख्यक और हाशिये पर पड़े वर्गों के अधिकारों की रक्षा करते हुए विविधता और समानता को एक साथ जोड़ती है। इस प्रकार अम्बेडकर का राष्ट्रवाद न केवल भारत के सामाजिक ढाँचे को पुनर्गठित करने का मार्गदर्शन करता है, बल्कि आधुनिक राष्ट्र-निर्माण में समावेशी और न्यायसंगत नीतियों की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

---

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
E-mail: upadhyaybinaykumar@gmail.com

परिचय

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद सामाजिक न्याय पर आधारित एक समावेशी दृष्टि प्रस्तुत करता है जिसमें जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को समाप्त कर एक समान और न्यायसंगत समाज की स्थापना पर जोर दिया गया है। उनकी राष्ट्रवादी सोच का मूल आधार सामाजिक और आर्थिक समानता है जिसके लिए उन्होंने संवैधानिक सुरक्षा, शिक्षा, आर्थिक सशक्तीकरण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे उपायों को आवश्यक माना। अम्बेडकर ने मुख्यधारा के राष्ट्रवादी आन्दोलनों विशेषकर हिन्दू राष्ट्रवाद की आलोचना करते हुए बहुसंख्यकवादी और बहिष्कृत विचारधाराओं का खंडन किया और एक समावेशी, जाति-व्यवस्था रहित और सामाजिक एकता पर आधारित राष्ट्र की कल्पना की (अम्बेडकर, 1991)। उनकी दृष्टि में सामाजिक न्याय ही राष्ट्रीय एकता और समग्र विकास की कुंजी है जो सभी अल्पसंख्यक और हाशिये पर पड़े वर्गों के अधिकारों की रक्षा करते हुए विविधता और समानता को एक साथ जोड़ती है। इस प्रकार अम्बेडकर का राष्ट्रवाद न केवल भारत के सामाजिक ढाँचे को पुनर्गठित करने का मार्गदर्शन करता है, बल्कि आधुनिक राष्ट्र-निर्माण में समावेशी और न्यायसंगत नीतियों की आवश्यकता को भी रेखांकित करता है।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का जीवन और योगदान

डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर भारतीय समाज के एक महान समाज सुधारक, विधिवेत्ता और संविधान निर्माता थे। उन्होंने जाति-व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए दलितों और वंचित वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके शिक्षण, राजनीतिक सक्रियता और सामाजिक न्याय के प्रति समर्पण ने भारत के सामाजिक और राजनितिक ढाँचे को गहराई से प्रभावित किया।

भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्रवाद की अवधारणा

भारत में राष्ट्रवाद का अर्थ केवल देशभक्ति नहीं, बल्कि विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वर्गों के बीच समरसता और समानता की स्थापना भी है। यह अवधारणा बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी भारत के सन्दर्भ में सामाजिक एकता और समावेशन पर आधारित है।

राष्ट्र निर्माण में सामाजिक न्याय का महत्व

सामाजिक न्याय राष्ट्रीय एकता और स्थिरता के लिए आधारशिला है। भारत जैसे वैविध्यपूर्ण समाज में जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर भेदभाव को समाप्त करके समान अवसर और अधिकार सुनिश्चित करना राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को सशक्त बनाता है। अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को राष्ट्रवाद का अभिन्न हिस्सा माना और इसे समावेशी राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य बताया (अम्बेडकर, 1936)।

इस शोधपत्र में यह समझने का प्रयास किया गया है कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर का राष्ट्रवाद परम्परागत राष्ट्रवाद से किस प्रकार भिन्न था और उसमें सामाजिक न्याय की भूमिका क्या थी। अम्बेडकर ने स्वतन्त्रता संघर्ष को केवल औपनिवेशिक शासन से मुक्ति तक सीमित नहीं किया, बल्कि इसे सामाजिक असमानताओं और छुआछूत से मुक्ति का संघर्ष भी माना। उनका राष्ट्रवाद तब तक अधूरा था जब तक समाज के अन्यायग्रस्त वर्गों को समान अवसर और अधिकार नहीं मिलते। उन्होंने स्पष्ट किया कि 'सच्चा राष्ट्रवाद' वही हो सकता है जो सभी के लिए समानता, न्याय और मानवाधिकार सुनिश्चित करे (अम्बेडकर, 1936)।

राष्ट्रवाद का वैचारिक विवेचन

राष्ट्रवाद को पारम्परिक रूप से एक साझा पहचान, सामूहिक स्वीकृति और राजनीतिक सार्वभौमिकता की वकालत के रूप में देखा गया है। सिद्धान्तीय दृष्टिकोणों में एन्डरसन का 'काल्पनिक समुदाय', जेलनर का 'औद्योगिकीकरण-आधारित राष्ट्र-निर्माण' तथा स्मिथ जैसे सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक निरन्तरता पर जोर शामिल है। व्यावहारिक विश्लेषण में राष्ट्रवाद को दो प्रमुख श्रेणियों में बाँटा जा सकता है - (1) नागरिक/नैतिक राष्ट्रवाद - जहाँ सदस्यता संवैधानिक अधिकारों और कर्तव्यों पर आधारित होती है, और (2) जातीय/सांस्कृतिक राष्ट्रवाद - जहाँ भाषा, धर्म और वंश जैसे तत्वों को राष्ट्रवादी पहचान की नींव माना जाता है। यह आवश्यक है कि ये परिभाषाएँ परस्पर विरोधी न होकर ऐतिहासिक और संरचनात्मक कारकों के सन्दर्भ में समझी जाएँ।

भारत में राष्ट्रवाद के विविध रूप

भारतीय सन्दर्भ में राष्ट्रवाद के कई समान्तर और प्रतिस्पर्धी रूप रहे हैं। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय का सामाजिक-रूप राष्ट्रवाद, राज्य-निर्मित राष्ट्रवाद जो संवैधानिक सार्वभौमिकता पर टिका था, क्षेत्रीय और भाषायी राष्ट्रवाद तथा जातिगत/धार्मिक आधारित राष्ट्रवाद। इसके अलावा नव-राष्ट्रवादी प्रवृत्तियाँ जो सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को प्रमुखता देती हैं, अक्सर बहुलतावाद और सामाजिक समावेशन के सिद्धान्तों से टकराती हैं। इन विविधताओं का विश्लेषण यह दर्शाता है कि भारत में राष्ट्रवाद एकरूप विचार नहीं बल्कि परिवर्तनशील और संघर्षरत सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया है।

बहिष्कारी राष्ट्रवादी विचारधाराओं की आलोचना

बहिष्कारी राष्ट्रवाद तब उत्पन्न होता है जब राष्ट्रीय पहचान को किसी एक सांस्कृतिक या धार्मिक मानदण्ड से जोड़कर दूसरों को अल्पसंख्यक या घुसपैठिए के रूप में चिह्नित किया जाता है। इस प्रकार का राष्ट्रवाद सामाजिक असमानताओं को वैधानिक या सांस्कृतिक रूप से स्थायी कर देता है, नागरिक अधिकारों की सार्वभौमिकता को प्रभावित करता है और लोकतान्त्रिक बहस के दायरे को सीमित कर देता है। आलोचनात्मक सिद्धान्त

यह बतलाते हैं कि ऐसे राष्ट्रवादी तर्क लोकतान्त्रिक वैधता तथा सामाजिक समरसता के लिए खतरनाक होते हैं और वे संरचनात्मक असमानताओं को तर्कसंगत बनाकर बहिष्कृत समूहों की आवाज दबा देते हैं।

सामाजिक न्याय और समावेशी राष्ट्रवाद : सामाजिक न्याय की परिभाषा (राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में)

सामाजिक न्याय का अर्थ केवल आर्थिक पुनर्वितरण तक सीमित नहीं है; यह मान्यता, वितरण और प्रक्रियात्मक समावेशन का समग्र सिद्धान्त है। राजनीतिक सन्दर्भ में सामाजिक न्याय का आशय है - सभी नागरिकों को समान अधिकार, अवसर और सम्मान सुनिश्चित करना तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुरूप विशेष समायोजन प्रदान करना जिससे समान भागीदारी सम्भव हो सके।

सामाजिक न्याय और राष्ट्रवाद का सम्बन्ध

समावेशी राष्ट्रवाद वह है जो राष्ट्रीय एकता को अधिकारों और समान अवसरों के व्यापक दायरे के साथ जोड़ता है। यह दृष्टि कहती है कि राष्ट्र की पहचान तभी टिकाऊ होगी जब उसके सभी वर्ग, जाति, धर्म, भाषा और लिंग समान संवैधानिक सुरक्षा और प्रतिनिधित्व पाएँ। सामाजिक न्याय इस अर्थ में राष्ट्रवाद को सिर्फ सांस्कृतिक एकरूपता की अपेक्षा समानता-आधारित सार्वजनिक नीतियों से जोड़ता है।

राष्ट्र निर्माण में समावेशिता का महत्व

समावेशी नीतियाँ सामाजिक स्थिरता, वैधानिक निष्पक्षता और लोकतान्त्रिक गुणवत्ता को बढ़ाती हैं। जब राष्ट्रवाद समावेशी होता है तो वह बहुलतावादी समाजों में आपसी विश्वास और राजनीतिक सहभागिता को प्रोत्साहित करता है जो दीर्घकालिक विकास तथा सामाजिक समरसता के लिए अनिवार्य है। समावेशी राष्ट्रवाद जातिगत, धार्मिक या सांस्कृतिक बहिष्कारों के स्थान पर न्यायोन्मुख संरचनात्मक सुधारों और संस्थागत समानता पर जोर देता है।

यह ढाँचा दर्शाता है कि राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय का संयोजन एक ऐसा वैचारिक उपकरण है जो बहुसंख्यकवाद और बहिष्कार की प्रवृत्तियों के विरुद्ध काम कर सकता है। अम्बेडकर की दृष्टि इसी समावेशी और न्यायोन्मुखी राष्ट्रवाद के प्रतिच्छायात्मक सिद्धान्तों के साथ उपयुक्त सैद्धान्तिक आधार उपलब्ध कराती है जिसे आगे के अध्ययनों में ऐतिहासिक और नीतिगत रूपों में देखा गया है।

अम्बेडकर के राष्ट्रवादी चिन्तन की आधारशिला

डॉ. अम्बेडकर का राष्ट्रवादी चिन्तन उनके व्यक्तिगत अनुभवों, शिक्षा और दीर्घकालिक सामाजिक अनुभवों से गहराई से प्रभावित था। एक दलित परिवार में जन्म लेकर

यूरोप और अमेरिका में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले अम्बेडकर ने भारतीय समाज की जातिगत विभाजन की वास्तविकताओं को अन्तरराष्ट्रीय लोकतान्त्रिक और संवैधानिक मानदण्डों के प्रकाश में समझा। उनकी विदेश यात्रा और कानून तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र की पढ़ाई ने उन्हें आधुनिकता, समानता और कानून के माध्यम से संरचनात्मक सुधारों के वैचारिक औजार दिये। इसी पृष्ठभूमि ने उन्हें यह सोचने पर प्रेरित किया कि स्वतन्त्रता केवल औपनिवेशिक शासन से मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक असमानताओं और मानव मर्यादा के व्यापक पुनर्निर्माण की माँग भी है।

बौद्ध धर्म का अम्बेडकर की सोच पर विशेष प्रभाव रहा। उन्होंने बौद्ध धर्म में निहित समानता, करुणा और सामाजिक बन्धनों से मुक्ति के सिद्धान्तों को एक वैकल्पिक नैतिक और सामाजिक व्यवस्था के रूप में देखा। बौद्ध धर्म अपनाने और उसके सैद्धान्तिक तत्वों पर पुनर्विचार करने से उन्होंने भारतीय सामाजिक व्यवस्था में आध्यात्मिक मान्यताओं के साथ-साथ जातिप्रथा के विरोध को एक नीति-आधारित रूप दिया। बौद्ध विचारधारा ने अम्बेडकर को यह दृष्टि दी कि धर्म और नैतिकता के माध्यम से भी सामाजिक बहिष्कार को चुनौती दी जा सकती है, साथ ही उन्होंने यह भी माना कि वास्तविक परिवर्तन के लिए संस्थागत और वैधानिक उपाय अनिवार्य हैं (अम्बेडकर, 1957)।

जाति व्यवस्था पर अम्बेडकर की तीव्र आलोचना उनके राष्ट्रवाद का केन्द्र रही। वे जाति को केवल सामाजिक विभाजन नहीं मानते थे, बल्कि उसे राष्ट्र के विनाशकारी तत्व के रूप में देखते थे। यह उस समय की सामाजिक एकता और राजनीतिक समानता का सबसे बड़ा अवरोध था। उनके अनुसार जब तक किसी समाज में वर्ण या जाति के आधार पर भेदभाव जारी रहेगा तब तक समान नागरिकता और सार्वभौमिक भागीदारी पर आधारित राष्ट्रवाद सम्भव नहीं है। अत: उन्होंने जाति-आधारित अधीनता, अस्पृश्यता और सामाजिक बहिष्कार को समाप्त करने के लिए संवैधानिक सुरक्षा, शिक्षात्मक और आर्थिक सशक्तीकरण का आग्रह किया (अम्बेडकर, 1936)।

अम्बेडकर के राष्ट्रवाद के प्रमुख घटक

अम्बेडकर के राष्ट्रवादी विचारों का पहला और प्रमुख केन्द्र-बिन्दु सामाजिक और आर्थिक समानता है। वे राष्ट्र को केवल राजनीतिक संस्थाओं के समुच्चय के रूप में नहीं देखते थे, बल्कि उसे ऐसे समाज के रूप में परिभाषित करते थे जहाँ सभी नागरिकों को समान अवसर, सम्मान और सुशासन मिले। उनका मानना था कि राजनीतिक स्वतन्त्रता का सार तब ही पूरा होता है जब वह सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता से जुड़ी हो यानी जमीन, शिक्षा, रोजगार तथा स्वास्थ्य के समान अवसरों के माध्यम से नागरिकता का वास्तविकरण हो (अम्बेडकर, 1936)।

दूसरा महत्वपूर्ण घटक संवैधानिक सुरक्षा और संस्थागत उपायों पर जोर है। अम्बेडकर ने संविधान को सामाजिक न्याय का उपकरण माना जो बुनियादी अधिकारों, समावेशी नीतियों, आरक्षण और विशेष प्रतिनिधित्व के माध्यम से बहिष्कृत समूहों को बराबरी

का मार्ग बताने वाला दस्तावेज था। संवैधानिक और कानून के प्रति उनका विश्वास इस विचार में प्रतिफलित होता है कि विधिक संरचना ही सामाजिक असमानताओं को व्यवस्थित रूप से चुनौती दे सकती है। अत एव उन्होंने संवैधानिक प्रावधानों - समानता के अधिकार, आरक्षण तथा विशेष कल्याण नीतियों पर बल दिया (अम्बेडकर, 1947)।

तीसरे घटक के रूप में उनका लक्ष्य था एक जातिहीन और वर्गहीन समाज। यह आदर्श एक तत्काल व्यवहार्य मॉडल से अधिक एक दूरगामी लक्ष्य था। एक ऐसा समाज जहाँ मानवीय गरिमा, समान अवसर और वर्गीय विषमताओं का उन्मूलन हो। अम्बेडकर ने यह स्पष्ट किया कि यह लक्ष्य केवल आर्थिक नीतियों से नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, शैक्षिक सशक्तीकरण और संवैधानिक गारंटी से सम्भव है। वे भौतिक पुनर्वितरण के साथ-साथ मान्यता आधारित नीतियों और प्रक्रियात्मक समावेशन पर भी जोर देते थे ताकि बहिष्कृत समुदायों का सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण हो सके (अम्बेडकर, 1947)।

मुख्यधारा के राष्ट्रवादी आन्दोलनों की अम्बेडकर द्वारा की गई आलोचना

अम्बेडकर और महात्मा गाँधी/कांग्रेस के बीच विचारों में गहरा अन्तर था। कांग्रेस का गतिरोध अक्सर व्यापक जन-केन्द्रित आजादी और सांस्कृतिक एकता के सिद्धान्तों पर टिका रहता था जबकि अम्बेडकर का केन्द्रबिन्दु संरचनात्मक असमानताओं के उन्मूलन पर था। गाँधी ने अक्सर वर्ण-आधारित सामाजिक संरचनाओं में सुधार के लिए आत्म-शुद्धि और नैतिक पुनर्रचना पर बल दिया, किन्तु अम्बेडकर ने कहा कि केवल नैतिक उपदेशों या समाजिक सुधार के आह्वानों से वास्तविक औपनिवेशिक तथा जातिगत शोषण नहीं हटेगा। इसके लिए कानूनी और नीतिगत हस्तक्षेप आवश्यक है। इसीलिये उन्होंने स्वतन्त्रता आन्दोलन में दलितों के अधिकारों और विशेष प्रतिनिधित्व के मुद्दों पर कांग्रेस के साथ कई बार टकराव किया (अम्बेडकर, 1945)।

हिन्दू राष्ट्रवाद के प्रति अम्बेडकर की निन्दा तीव्र और तर्कसंगत थी। वे उस विचार के विरोध में थे जो राष्ट्र की पहचान को किसी एक धार्मिक-सांस्कृतिक मानदण्ड विशेषत: हिन्दू धर्म के साथ जोड़ देता है। उनके अनुसार ऐसा राष्ट्रवाद बहिष्कार, अल्पसंख्यककरण और सामाजिक विभाजन को बढ़ावा देता है। उन्होंने चेतावनी दी थी कि जब राष्ट्रवाद संस्कृति या धर्म से जुड़ कर विशेष लाभ प्रदान करने लगे तो वह लोकतन्त्र और अधिकारों के सिद्धान्तों के विरुद्ध जा सकता है (अम्बेडकर, 1945)।

अम्बेडकर का अलग मतदान और आरक्षण के प्रति समर्थन भी इसी तर्कशक्ति का परिणाम था। वे मानते थे कि बहिष्कृत समूहों को केवल सामान्य चुनाव प्रक्रिया में शामिल कर देने से उनकी वास्तविक भागीदारी सुनिश्चित नहीं होगी। ऐसे सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्यों में विशेष प्रावधान आवश्यक हैं ताकि वे प्रतिनिधित्व पा सकें और नीतिगत निर्णयों में प्रभावशाली बन सकें। आरक्षण और विशेष निर्वाचन प्रावधानों को वे अस्थायी किन्तु

आवश्यक साधन मानते थे जो सामाजिक असमानताओं को घटाने और समान आधार पर भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए लागू किये जाते हैं (अम्बेडकर, 1947)।

डॉ. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद एक समावेशी, न्यायोन्मुख और संवैधानिक राष्ट्रवाद था जो राजनीतिक स्वतन्त्रता को सामाजिक और आर्थिक समानता से जोड़ता है। उनकी विचारधारा ने राष्ट्रवाद के बहिष्कारकारी रूपों की तीव्र आलोचना करते हुए यह स्थापित किया कि सच्चा राष्ट्रवाद वही है जो समाज के सबसे कमजोर वर्गों को अधिकार, सम्मान और प्रतिनिधित्व देता है। अम्बेडकर की यह दृष्टि आज भी प्रासंगिक है क्योंकि समावेशन और सामाजिक न्याय के बिना किसी भी बहुसांस्कृतिक राष्ट्र की स्थिरता सन्देहास्पद रहती है। अत: उनके विचार नीतिगत विमर्श और संवैधानिक अभ्यास के लिए मार्गदर्शक बने हुए हैं।

अम्बेडकर का सामाजिक न्याय का चिन्तन : परिभाषा और परिप्रेक्ष्य

सामाजिक न्याय अम्बेडकर के राष्ट्रवाद की आधारशिला है। उनके विचार में सामाजिक न्याय केवल वांछित नीतियों का समूह नहीं था, बल्कि वह सार्वजनिक जीवन का एक नैतिक और वैधानिक सिद्धान्त था जिस पर राष्ट्र की स्थिरता, लोकतन्त्र की प्रामाणिकता और नागरिकता का वास्तविक अर्थ निर्भर करता है। अम्बेडकर सामाजिक न्याय को व्यापक तीन आयामों में देखते थे - स्वीकार्यता, वितरण और प्रक्रियात्मक समावेशन। अर्थात् केवल सम्पत्ति और संसाधनों का पुनर्वितरण ही पर्याप्त नहीं है; सामाजिक प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक मान्यता और निर्णय-निर्माण में प्रभावशाली भागीदारी भी अनिवार्य है।

उनके दृष्टिकोण में सामाजिक न्याय का दायरा केवल कानून व्यवस्था तक सीमित नहीं रहा। यह शिक्षा, रोजगार, सामाजिक प्रतिष्ठा, धार्मिक-सांस्कृतिक मान्यताओं में बदलाव और ऐतिहासिक गुंजाइशों के समायोजन तक विस्तारित था। इसलिये अम्बेडकर ने सामाजिक न्याय को संविधान के मूलभूत सिद्धान्तों के साथ जोड़कर देखा, जो थे - समानता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व के साथ-साथ सकारात्मक कार्रवाई के माध्यम से बहिष्कृति समूहों की क्षतिपूर्ति सुनिश्चित करना।

सामाजिक न्याय और लोकतन्त्र का सम्बन्ध

अम्बेडकर के लिए लोकतन्त्र केवल बहुमत का राज नहीं था। वह नागरिक समानता और प्रक्रियात्मक सहभागिता का एक ऐसा ढाँचा था जिसमें हर व्यक्ति की गरिमा और भागीदारी सुनिश्चित हो। अत: यदि किसी समाज में जातिगत, आर्थिक या सामाजिक विभाजन ऐसे हों कि कुछ समूहों को सार्वजनिक जीवन से निकाल दिया गया हो तो वहाँ पारम्परिक लोकतन्त्र केवल नाम मात्र का रहेगा। इसलिये सामाजिक न्याय को लोकतन्त्र का अनिवार्य साथी माना गया जहाँ तक लोग समान अवसर, सुरक्षा और प्रतिनिधित्व न पायें, सच्चा लोकतन्त्र असम्भव है।

राज्य की भूमिका

अम्बेडकर ने राज्य को सामाजिक न्याय के सुनिश्चितकर्ता के रूप में देखा। उनका मत था कि निजी-परस्पर सहयोग या सामाजिक सुधार की नैतिक अपीलें पर्याप्त नहीं हैं; राज्य को सक्रिय नीति-निर्माण, संवैधानिक संरक्षण और नियामक ढाँचों के माध्यम से असमानताओं का सामना करना होगा। इस दृष्टि से राज्य का कर्तव्य तीन तरह का निहित है - (1) कानूनी समता और अधिकारों की गारंटी; (2) आरक्षण, वित्तीय नीतियाँ और कल्याणकारी कार्यक्रमों के माध्यम से व्यावहारिक समताकरण; (3) शैक्षिक और सांस्कृतिक हस्तक्षेप से बहिष्कृत समूहों की प्रतिष्ठा और आत्मविश्वास का पुनर्निर्माण। राज्य के इन सक्रिय कदमों को अम्बेडकर अस्थायी नहीं, बल्कि आवश्यक और लक्ष्योन्मुखी उपाय मानते थे जब तक सामाजिक असमानताएँ संरचनात्मक रूप से समाप्त नहीं हो जातीं (अम्बेडकर, 1947)।

सामाजिक न्याय प्राप्त करने की रणनीतियाँ

संवैधानिक प्रावधान और कानूनी सुरक्षा

अम्बेडकर ने संविधान को सामाजिक न्याय का प्रधान उपकरण माना। संवैधानिक प्रावधान समानता के अधिकार, आरक्षण, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए विशेष सुरक्षा, अभिव्यक्ति के अधिकार के साथ-साथ सकारात्मक कार्यवाही, ये सब सामाजिक असमानताओं को कानूनी रूप से चुनौती देने के साधन थे। अम्बेडकर के अनुसार कानून न केवल निषेध करे बल्कि अवसरों का निर्माण करे; इसलिये संवैधानिक अनुच्छेद, प्रवर्तन संस्थाएँ और न्यायिक संरक्षण तक पहुँच सुनिश्चित करने वाले तन्त्र महत्वपूर्ण हैं।

शिक्षा का महत्त्व और आर्थिक सशक्तीकरण

शिक्षा अम्बेडकर के सामाजिक न्याय के विचार में केन्द्रीय भूमिका निभाती है। शिक्षा न केवल रोजगार और आर्थिक उन्नति का साधन है, बल्कि यह जातिगत पूर्वाग्रहों, सामाजिक बहिष्कार और अवमाननाओं के विरुद्ध मानसिक उत्थान का माध्यम भी है। अम्बेडकर ने बहिष्कृत समुदायों के लिए शैक्षिक आरक्षण, छात्रवृत्तियों और विशेष प्रशिक्षण का समर्थन किया ताकि वे प्रतिस्पर्धी रूप से आगे बढ़ सकें। आर्थिक सशक्तीकरण के तहत उन्हें भूमिहीनता, बेरोजगारी और संसाधन अनुपस्थिति जैसे संरचनात्मक मुद्दों का समाधान आवश्यक लगा। व्यावहारिक नीतियाँ जैसे भूमि-सुधार, प्राथमिक रोजगार अवसर और लघु-उद्योग संवर्द्धन का प्रयोग सामाजिक बराबरी के लिए जरूरी थे (अम्बेडकर, 1936)।

राजनीतिक प्रतिनिधित्व और संस्थागत भागीदारी

अम्बेडकर मानते थे कि बहिष्कृत वर्गों के वास्तविक सशक्तीकरण के लिए केवल संरक्षणात्मक नीतियाँ ही नहीं, बल्कि राजनीतिक निर्णय-निर्माण में उनकी सक्रिय उपस्थिति

भी आवश्यक है। इसी विचारधारा के अनुरूप उन्होंने अलग निर्वाचक प्रावधानों और आरक्षण का सुझाव दिया ताकि न केवल उनकी आवाज सुनी जाए बल्कि वे नीतियों के निर्माण में वास्तविक प्रभाव रख सकें। राजनीतिक प्रतिनिधित्व ने नीतिगत प्राथमिकताओं में बदलाव लाने, लोक कल्याण के कार्यक्रमों को लक्षित करने और सामाजिक असमानताओं का दीर्घकालिक निदान करने में निर्णायक भूमिका निभाई है।

सामाजिक न्याय का राष्ट्रीय एकीकरण पर प्रभाव

असमानताओं का समाधान करके ही राष्ट्रीय एकता को कायम रखा जा सकता है। सामाजिक असमानताओं का खुलासा राष्ट्रीय एकता के लिए सर्वोपरि जोखिम है। अम्बेडकर का तर्क यह था कि जब तक समाज के बड़े हिस्से को नागरिक सम्मान और आर्थिक आधार पर बराबरी नहीं दी जाती तब तक राष्ट्रीय एकता सतही और अस्थिर रहेगी। सामाजिक न्याय के प्राथमिक उपाय शिक्षा, रोजगार, संवैधानिक सुरक्षा राष्ट्रीय समरसता की नींव रखते हैं। वे असन्तोष और सामाजिक विद्रोह की जड़ को हटाकर स्थायी एकीकरण को सम्भव बनाते हैं।

अन्तर-जातीय सौहार्द और सामाजिक समेकन

अम्बेडकर की नीतियाँ और सामाजिक न्याय की पहलें अन्तर-जातीय मेलजोल और सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती हैं। जब बहिष्कृत समूहों को समान अवसर और सम्मान मिलता है तो सामाजिक दूरी घटती है, पारस्परिक विश्वास बनता है और सामुदायिक सहयोग का वातावरण निर्मित होता है। शिक्षा, सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समान कानूनी सुरक्षा इन सबका योगदान है जो पारम्परिक विभाजन रेखाओं को कम करता है और साझा नागरिक पहचान को मजबूती देता है।

समावेशी नीतियों के माध्यम से लोकतान्त्रिक संस्थानों को सुदृढ़ बनाना

समावेशी नीतियाँ लोकतान्त्रिक संस्थानों की वैधानिक और कार्यात्मक विश्वसनीयता बढ़ाती हैं। जब नीतियाँ सभी तबके के हितों का समावेश करती हैं तो संस्थानों पर जनता का विश्वास बढ़ता है। यह भ्रष्टाचार, अविश्वास और हिंसा जैसी समस्याओं को कम कर देता है। अम्बेडकर के अनुसार, संवैधानिक सुरक्षा और समावेशी प्रतिनिधित्व संस्थागत जड़त्व को लोकतान्त्रिक रूप से जवाबदेह बनाते हैं और लम्बे समय में सामाजिक स्थिरता तथा विकास के लिए अनुकूल माहौल बनाते हैं।

डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक न्याय आधारित राष्ट्रवाद न केवल नैतिक सिद्धान्त है बल्कि व्यावहारिक नीतिगत रूपरेखा भी है जो देश की एकता, लोकतन्त्र की सच्चाई और समाज के सभी वर्गों की गरिमा सुनिश्चित करने का मार्ग दिखाती है। उनकी सोच के अनुसार राज्य, संविधान और नीतिगत उपाय एक साथ कार्य करें तो उपेक्षित समाज राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से सशक्त बन कर वास्तविक राष्ट्रीय समावेशन सुनिश्चित कर

सकता है। आज के बहुसांस्कृतिक और असमानताओं से ग्रस्त समाज में अम्बेडकर का यह सिद्धान्त राष्ट्रीय नीति और लोकतान्त्रिक अभ्यास के लिए मार्गदर्शक बना हुआ है।

अम्बेडकर की समावेशी राष्ट्रवाद की दृष्टि

अम्बेडकर के समावेशी राष्ट्रवाद का मूल आधार विविधता और बहुलतावाद के प्रति गहरा सम्मान है। उनके अनुसार राष्ट्र केवल एक सांस्कृतिक - एक रूप पहचान नहीं हो सकता; वास्तविक राष्ट्रीय समरसता तभी सम्भव है जब भाषा, धर्म, जाति, क्षेत्र और सांस्कृतिक भिन्नताओं को समान नागरिक अधिकार और समाज में सम्मान के साथ स्वीकार किया जाए। इसी कारण उन्होंने 'स्वतन्त्रता' को केवल औपनिवेशिक शासक से मुक्ति नहीं माना, बल्कि वह सामाजिक गौरव, मान, अवसर और मान्यताओं की बराबरी भी थी जो प्रत्येक समुदाय के लिए आश्वस्ति होनी चाहिए। अम्बेडकर ने 'बन्धुत्व' पर जोर देकर कहा कि सामाजिक एकत्व का अर्थ सहानुभूति और सहयोग है न कि बहुसंख्यक के राष्ट्रवादी वर्चस्व की अधीनता। इसलिए वे किसी भी प्रकार के बाहुल्यवादी-विरोधी या बहिष्करणी विचारधाराओं के स्पष्ट विरोधी थे क्योंकि वह लोकतन्त्र के सिद्धान्तों और मानवाधिकारों के मूलभूत नियमों को क्षति पहुँचाती हैं।

अल्पसंख्यक समुदायों की भूमिका और सुरक्षा

अम्बेडकर की समावेशिता में अल्पसंख्यकों को केवल सराहनीय सामाजिक तत्व के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उन्हें राष्ट्रनिर्माण की सक्रिय और समान भागीदारी की स्थिति में स्थापित करना आवश्यक माना गया। उन्होंने अल्पसंख्यक अधिकारों की कानूनी सुरक्षा, निरंकुश बहुमत से संरक्षण और नीतिगत प्रतिनिधित्व जैसे विशेष निर्वाचकीय प्रावधान और आरक्षण की वकालत की, ताकि ऐतिहासिक रूप से वंचित समूहों की राजनीतिक आवाज सुनिश्चित हो और नीतिगत निर्णयों में उनका वास्तविक प्रभाव बने। अम्बेडकर इस बात से भी अवगत थे कि प्रतिनिधित्व मात्र संख्या नहीं; वह इस बात का माध्यम है जिससे नीतियाँ बहिष्कृत हितों को ध्यान में रखकर निर्मित हों और समाज में 'होने' की भावना मजबूत हो। अत: समावेशी राष्ट्रवाद में अल्पसंख्यकों के संरक्षण, समान अवसर और निर्णायक प्रक्रियाओं में उनकी हिस्सेदारी को केन्द्रीय स्थान मिला।

लैंगिक समानता : समावेशी राष्ट्रवाद का अनिवार्य अंग

अम्बेडकर के समावेशी राष्ट्रवाद में लिंग-न्याय का स्थान केन्द्रीय है। उन्होंने न केवल महिलाओं के सामाजिक स्वरूप पर टिप्पणी की, बल्कि कानून निर्माण और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से उनके अधिकार सुनिश्चित करने का सक्रिय प्रयास किया। उनके द्वारा समर्थित हिन्दू कोड बिल और उससे सम्बन्धित सुधारों का उद्देश्य विवाह, उत्तराधिकार और सम्पत्ति के मामलों में महिलाओं को समान नागरिक अधिकार प्रदान करना

था ताकि सामाजिक एवं आर्थिक भागीदारी में महिलाओं की उपस्थिति सुनिश्चित हो सके। अम्बेडकर ने पितृसत्तात्मक संरचनाओं की तीव्र आलोचना की और कहा कि जब तक पारिवारिक, धार्मिक और सामाजिक संस्थाएँ महिलाओं को गैर-बराबरी पर आधारित भूमिकाओं में बाँधती रहेंगी, तब तक राष्ट्रीय विकास और समावेशी नागरिकता अधूरी रहेगी (अम्बेडकर, हिन्दू कोड बिल 1951)। इसलिये लिंग-न्याय को उन्होंने राष्ट्र की समग्र प्रगति और सामाजिक समेकन के लिए अनिवार्य माना तथा शिक्षा, कानूनी अधिकार और आर्थिक सशक्तीकरण को इसका मुख्य माध्यम बताया।

संक्षेप में, अम्बेडकर का समावेशी राष्ट्रवाद तीन स्तम्भों - विविधता का सम्मान, अल्पसंख्यकों का संरक्षित और प्रभावी प्रतिनिधित्व तथा लैंगिक समानता - पर टिका हुआ है। उनके अनुसार यही वे नीतिगत और संवैधानिक उपाय हैं जो सामाजिक विभाजन को कम कर, नागरिकता की सार्थक समानता को स्थापित कर, दीर्घकालिक राष्ट्रीय समरसता और लोकतान्त्रिक स्वास्थ्य को सुनिश्चित कर सकते हैं। इस दृष्टि में अम्बेडकर का राष्ट्रवाद न केवल आलोचनात्मक और विकल्पात्मक विचार था, बल्कि व्यावहारिक नीतियों और संवैधानिक ढाँचे के माध्यम से लागू होने वाले दिशा-निर्देश भी प्रस्तुत करता है जो आज के बहुसांस्कृतिक और असमानताओं से ग्रस्त समाज में भी अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद आज के भारतीय सन्दर्भ में अत्यन्त प्रासंगिक बना हुआ है। सबसे पहले, सामाजिक असमानताएँ और जाति-आधारित भेदभाव आज भी सामाजिक संरचना में गहरे जुड़े हुए हैं। शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक अवसरों में असमान पहुँच बरकरार है। अम्बेडकर की चेतावनी थी कि बिना संरचनात्मक सुधार और लक्ष्योन्मुख नीतियों के केवल संवैधानिक अधिकारों की घोषणा अपर्याप्त रहेगी। यही कारण है कि आरक्षण, लक्षित कल्याण और अभिविनियोजन जैसे उपाय आज भी नीतिगत बहस का केन्द्र बने हुए हैं।

दूसरा, धर्मनिरपेक्षता और बहुलतावाद पर चुनौतियाँ बढ़ी हैं। सांस्कृतिक एकरूपता सुनिश्चित करने या किसी एक पहचान को प्रधान करने के प्रयास सामाजिक समरसता को कमजोर कर सकते हैं। अम्बेडकर का जोर धर्म/संस्कृति को राष्ट्र की पहचान से पृथक रखते हुए नागरिक अधिकार और समानता को सर्वोपरि मानने पर था। यह दृष्टि आज के बहस-परिसरों में लोकतान्त्रिक तर्कों और अल्पसंख्यक सुरक्षा के लिए मार्गदर्शक है।

तीसरा, अम्बेडकर के विचार वर्तमान मुद्दों के समाधान के लिए वैचारिक और नीतिगत रूप से उपयोगी हैं। उनके संवैधानिकवाद, सामाजिक न्याय पर आधारित नीतियों, शिक्षा और आर्थिक सशक्तीकरण के आग्रह और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव आज भी सामाजिक असमानता, आर्थिक असन्तुलन और जातीय धार्मिक तनाव के समतुल्य उपाय प्रदान करते हैं। उन्होंने राज्य को सक्रिय एजेंट माना, जो कानूनी संरक्षण, सकारात्मक कार्रवाई और संस्थागत सुधार के माध्यम से असमानताओं को कम कर सके।

निष्कर्षत: अम्बेडकर की समावेशी और न्यायोन्मुख राष्ट्रवादी दृष्टि न केवल ऐतिहासिक महत्त्व रखती है, बल्कि आधुनिक भारत में सामाजिक स्थिरता, लोकतान्त्रिक सामर्थ्य और राष्ट्रीय एकता सुनिश्चित करने के लिए व्यावहारिक नीतिगत ढाँचा भी प्रदान करती है।

निष्कर्ष

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का राष्ट्रवाद परम्परागत राजनीतिक या सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से मौलिक रूप से भिन्न था। उनके राष्ट्रवाद का केन्द्रबिन्दु सामाजिक न्याय था। वे मानते थे कि राजनीतिक स्वतन्त्रता तब तक पूर्ण नहीं मानी जा सकती जब तक संरचनात्मक असमानताएँ, विशेषकर जातिगत और आर्थिक विषमताएँ, समाप्त न हों। अम्बेडकर के अनुसार संवैधानिक संस्थाएँ, कानून और सकारात्मक नीतियाँ (जैसे - आरक्षण, विशेष प्रतिनिधित्व और सामाजिक कल्याण) सामाजिक समावेशन सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य साधन हैं। उन्होंने बौद्ध और आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं से प्रेरणा लेकर यह तर्क स्थापित किया कि नैतिक चेतना के साथ-साथ वैधानिक और संस्थागत हस्तक्षेप आवश्यक हैं ताकि बहिष्कृत समूहों को वास्तविक नागरिक प्रतिष्ठा और अवसर मिल सकें।

समावेशिता अम्बेडकर के राष्ट्रवादी चिन्तन की अभिनिवेशी शर्त है। उनका राष्ट्रवाद विविधता को न केवल सहन करता है, बल्कि विविधता को राष्ट्रीय शक्ति और स्थायित्व का आधार मानता है। अम्बेडकर ने बहुसंख्यकवादी और बहिष्कारी विचारधाराओं की आलोचना करते हुए स्पष्ट किया कि किसी भी राष्ट्र की एकता तभी टिकाऊ होगी जब उसके सभी समाजिक घटक न्याय, सम्मान और निर्णय-प्रक्रियाओं में समतल भागीदारी पाएँ। इस दृष्टि में लिंग-न्याय, अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा और आर्थिक-पाठ्य सशक्तीकरण भी राष्ट्रीय निर्माण के अनिवार्य घटक हैं।

अम्बेडकर का राष्ट्रवाद न केवल वैचारिक आलोचना है, बल्कि व्यावहारिक नीतिगत मार्गदर्शिका भी है। यह संविधान, शिक्षा, आर्थिक नीतियों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व को समेकित कर सामाजिक समता की दिशा में काम करने का व्यापक ढाँचा प्रस्तुत करता है।

निहितार्थ और भविष्य के दिशानिर्देश

समकालीन भारत के लिए पाठ

अम्बेडकर के विचार आज के सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में कई नीतिगत और नैतिक पाठ प्रदान करते हैं। पहला पाठ यह है कि सामाजिक असमानताओं का निरन्तर सामना करना ही राष्ट्रीय स्थिरता और लोकतान्त्रिक गुणवत्ता को बनाये रखता है, जिसका अर्थ है लक्ष्योन्मुख नीतियाँ, संवैधानिक संरक्षण और शिक्षा के माध्यम से सशक्तीकरण। दूसरा, राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक एकरूपता की अपेक्षा न्याय-आधारित समावेशिता की कसौटी पर

परखना। यह अल्पसंख्यकों और उपेक्षित समूहों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। तीसरा, लैंगिक समानता, आर्थिक अवसर और राजनीतिक सहभागिता को राष्ट्र निर्माण के केन्द्र में रखना। यह दीर्घकालिक विकास और सामाजिक समरसता के लिए अनिवार्य है।

राष्ट्रवाद की पुनर्कल्पना के लिये आह्वान

आखिरकार अम्बेडकर हमें यह चुनौती देते हैं कि राष्ट्रवाद को फिर से परिभाषित किया जाए। जहाँ राष्ट्र की पहचान किसी एक सांस्कृतिक या धार्मिक मानदण्ड से नहीं बल्कि समानता, गरिमा और न्याय के साझा बन्धनों से निर्मित हो। यह पुनर्कल्पना केवल शैक्षणिक अभ्यास नहीं, बल्कि एक नीति-आधारित, संवैधानिक और सामुदायिक प्रयास का आह्वान है। यदि वर्तमान और भावी पीढ़ियाँ अम्बेडकर की न्यायोन्मुख दृष्टि को अपनाएँगी तो राष्ट्रवाद न केवल राजनीतिक एकता का प्रतीक बनेगा बल्कि सामाजिक समरसता और सार्वभौमिक अधिकारों का व्यावहारिक विमर्श बनकर रह जाएगा।

अम्बेडकर का राष्ट्रवाद आज भी नीतिगत दिशा, संवैधानिक सिद्धान्त और नैतिक प्रेरणा के लिये प्रासंगिक है। यह याद दिलाता है कि राष्ट्र तभी सशक्त होता है जब उसके सबसे कमजोर नागरिकों की गरिमा और अधिकार उसकी प्राथमिकता हों।

सन्दर्भ सूची

अम्बेडकर, बी.आर. (1936). *अन्हाइलेशन ऑफ कास्ट विद ए रिप्लाय टु महात्मा गाँधी।*

अम्बेडकर, बी.आर. (1991). 'अन्हाइलेशन ऑफ कास्ट'। इन वी. मून (एड.), *डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर : राइटिंग्स ऐन्ड स्पीचेज*(वॉल्यूम 1). गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र।

अम्बेडकर, बी.आर. (1947). *स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज : व्हाट आर देयर राइट्स एंड हाउ टु सिक्योर देम इन द कॉन्स्टिट्यूशन ऑफ फ्री इंडिया,* सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली।

अम्बेडकर, बी.आर. (1945). *व्हाट कांग्रेस एण्ड गाँधी हेव डन टु द अनटचेबल्स।*

अम्बेडकर, बी.आर. (1945). *पाकिस्तान ऑर द पार्टिशन ऑफ इंडिया,* सिद्धार्थ बुक्स, दिल्ली।

अम्बेडकर, बी.आर. (1948). *दि अनटचेबल्स,* अमृत बुक कम्पनी, नई दिल्ली।

अम्बेडकर, बी.आर. (1957). *बुद्ध एंड हिज धम्मा,* पीएसी, बम्बई।

अम्बेडकर, बी.आर., 'डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेज', वॉल्यूम 14,पार्ट 1, इन वी. मून (एड.), *हिन्दू कोड बिल रेफर्ड टू सेलेक्ट कमिटी।*

कीर, धनंजय (1960). *डॉ. अम्बेडकर : लाइफ एंड मिशन.* पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 75-83)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

पालन-पोषण शैलियों में जेंडर की भूमिका और बाल विकास पर उनका प्रभाव

गुरपिन्दर कुमार*

प्रस्तुत शोध आलेख पेरेंटिंग (पालन-पोषण) शैलियों में जेंडर के अन्तर और बाल विकास पर उनके प्रभावों की तथा माता-पिता द्वारा अपनायी गई पेरेंटिंग शैलियों और बच्चों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास के बीच प्रासंगिकता की पड़ताल करता है। अध्ययन पेरेंटिंग शैलियों पर जेंडर के प्रभाव के लिए विभिन्न सिद्धान्तों और अनुभवजन्य अध्ययनों पर आधारित है। निष्कर्ष बताते हैं कि जेंडर पेरेंटिंग मोड को प्रभावित करता है। अध्ययन बाल विकास चरणों में पेरेंटिंग शैलियों के महत्व पर भी प्रकाश डालता है, आधिकारिक पेरेंटिंग अधिक सकारात्मक बाल परिणामों से जुड़ी है। शोध निष्कर्ष माता-पिता और देखभाल करने वालों को स्वस्थ और खुश बच्चों को शिक्षित करने के तरीके के बारे में अन्तर्दृष्टि भी प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द : जेंडर, पालन-पोषण, बाल विकास, जेंडर भूमिकाएँ।

*शोधार्थी, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज एवं सम्प्रति सहायक प्रोफेसर, सेंटर फॉर वुमेन स्टडीज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: wsgurpinder@gmail.com

परिचय

जेंडर को लम्बे समय से मानव व्यवहार का एक बुनियादी हिस्सा माना जाता रहा है, जिसका सामाजिक भूमिकाओं, शिक्षा और मानसिक स्वास्थ्य सहित जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है। हाल ही में, शोधकर्ताओं ने पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका और बाल विकास पर इसके असरदार प्रभाव की खोज में तेजी से रुचि दिखाई है (ब्लूम, 2007)। पेरेंटिंग शैलियाँ व्यवहार के तरीके हैं जिनका उपयोग बच्चों को पालने के लिए किया जाता है, और यह बाल विकास के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे - शैक्षणिक उपलब्धि, भावनात्मक विनियमन और सामाजिक क्षमता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करने के लिए दिखाया गया है। जबकि बढ़ते साहित्य ने पेरेंटिंग शैलियों और बाल विकास के बीच सम्बन्धों का पता लगाया है, इन पेरेंटिंग प्रथाओं को आकार देने में जेंडर की भूमिका पर कम ध्यान दिया गया है। मौजूदा अध्ययनों के अनुसार, माता और पिता अक्सर अलग-अलग पेरेंटिंग शैलियों को अपनाते हैं, माताओं के लिए अधिक पोषण और स्नेही शैली का उपयोग करने की अधिक सम्भावना होती है। इसके विपरीत, पिता अधिक आधिकारिक या अनुशासनात्मक तरीके अपनाते हैं (चाओ, 1994)। पेरेंटिंग शैलियों में यह जेंडर-आधारित अन्तर बच्चे के विकास के परिणामों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकते हैं, लेकिन अभी भी बहुत कुछ ऐसा है जो उनके विशिष्ट प्रभावों के बारे में अच्छी तरह से समझा नहीं गया है। इस शोधपत्र का उद्देश्य पेरेंटिंग शैलियों और बाल विकास में जेंडर के प्रभाव पर वर्तमान साहित्य की व्यापक समीक्षा करना है। विशेष रूप से, सबसे पहले पेरेंटिंग शैलियों में अन्तर और शैक्षणिक उपलब्धि, आत्मसम्मान और व्यवहार जैसे बाल विकास परिणामों पर उनके प्रभाव की पड़ताल करेंगे (प्लेक, 1994)। फिर उन सम्भावित कारकों का पता लगाएँगे जो सांस्कृतिक और सामाजिक अपेक्षाओं सहित पेरेंटिंग शैलियों में इन जेंडर-आधारित अन्तरों को प्रभावित करते हैं, और पेरेंटिंग हस्तक्षेपों और सहायता कार्यक्रमों के निहितार्थ भी शामिल हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य वर्तमान शोध में अन्तराल को सम्बोधित करना है और सकारात्मक बाल परिणामों को आगे बढ़ाने के लिए जेंडर-संवेदनशील पेरेंटिंग प्रथाओं के महत्व पर प्रकाश डालना है (पोमेरेंट्ज, 1998)।

पेरेंटिंग शैलियाँ और उनके प्रभाव

पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चों के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। पिछले कुछ वर्षों में शोधकर्ताओं ने पेरेंटिंग शैलियों और बच्चे के परिणामों को आकार देने में उनकी भूमिका पर अधिक ध्यान दिया है। यह साहित्य समीक्षा पेरेंटिंग शैलियों, पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर भिन्नता, बच्चे के विकास में पेरेंटिंग शैलियों की भूमिका और पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका और बच्चे के विकास पर उनके प्रभावों का अवलोकन प्रदान करती है।

पेरेंटिंग शैलियों का अवलोकन

पेरेंटिंग शैलियाँ पेरेंटिंग प्रथाओं के व्यापक तरीके हैं जिन्हें माता-पिता अपने बच्चों को सामाजिक बनाने और पालने के लिए अपनाते हैं। ये शैलियाँ बच्चों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक और सामाजिक विकास को गहराई से प्रभावित करती हैं, उनके विश्वासों, मूल्यों और व्यवहारों को आकार देती हैं। शोधकर्ताओं ने माता-पिता द्वारा अपने बच्चों के साथ बातचीत में प्रदर्शित की जाने वाली गर्मजोशी और जवाबदेही, नियन्त्रण और स्वायत्तता के स्तर के आधार पर विभिन्न पेरेंटिंग शैलियों की पहचान की है (डार्लिंग, 1993)। बॉमरिंड की टाइपोलॉजी पेरेंटिंग शैलियों की सबसे व्यापक रूप से मान्यता प्राप्त और प्रभावशाली विधियों में से एक है (बॉमरिंड, 1991)। बॉमरिंड के अनुसार, चार पेरेंटिंग शैलियाँ आधिकारिक, सत्तावादी, अनुमोदक और असम्बद्ध हैं।

आधिकारिक पेरेंटिंग

यह पेरेंटिंग (पालन-पोषण) की सकारात्मक शैली है, जिसमें माता-पिता ही प्रभारी होते हैं, लेकिन वे यह भी स्वीकार करते हैं कि उनके लिए अपने बच्चों की व्यक्तिगत जरूरतों को सुनना और उनका जवाब देना महत्वपूर्ण है। इस शैली का वर्णन उदाहरण के द्वारा नेतृत्व करने और अपने बच्चों को अनुभव से सीखने में मदद करने के रूप में करना है। आधिकारिक माता-पिता गर्मजोशी और नियन्त्रण दोनों में उच्च होते हैं और स्पष्ट नियम और अपेक्षाएँ प्रदान करते हैं जबकि अपने बच्चों को अपनी राय व्यक्त करने और उम्र के अनुसार निर्णय लेने की अनुमति भी देते हैं।

सत्तावादी पेरेंटिंग

इस पेरेंटिंग शैली में अधिनायकवादी माता-पिता होते हैं, जो एक सख्त दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे अपने बच्चों से यह पूछने के बजाय कि उसे क्या करना चाहिए और कैसे व्यवहार करना चाहिए, उन पर वे नियन्त्रण की प्रबल इच्छा रखते हैं। सत्तावादी माता-पिता बच्चों को विकल्प नहीं देते हैं और उनके लिए नियम निर्धारित करते हैं। पेरेंटिंग की इस शैली को संक्षेप में प्रस्तुत करने का एक अच्छा तरीका यह वाक्यांश है - 'जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो, जैसा मैं करता हूँ वैसा नहीं'। इसमें बातचीत के लिए बहुत कम जगह है, और वे शायद ही कभी अपने बच्चों को अपनी पसन्द बनाने की अनुमति देते हैं।

अनुमोदक पेरेंटिंग

इस पेरेंटिंग शैली में अनुमोदक माता-पिता होते हैं, जो अक्सर अपने बच्चों की माँगों के आगे झुक जाते हैं और हर बात से ऊपर उनके दोस्त बन जाते हैं। यह शैली अक्सर तब सामने आती है जब माता-पिता बहुत व्यस्त होते हैं और उन्हें इस बात का अपराधबोध होता है कि वे अपने बच्चों के साथ उतना समय नहीं बिता पाते जितना वे चाहते हैं। हालाँकि, इस शैली

में माता-पिता में गर्मजोशी तो अधिक होती है, लेकिन नियन्त्रण की इच्छा कम होती है, इसलिए उनके बच्चों को स्पष्ट सीमाएँ या नियम निर्धारित किए बिना काफी स्वतन्त्रता मिलती है।

असम्बद्ध पेरेंटिंग

असम्बद्ध या उपेक्षापूर्ण पालन-पोषण ऐसी शैली है जिसमें माता-पिता अपने बच्चों की समग्र जरूरतों में न्यूनतम या कोई भागीदारी नहीं रखते हैं। दूसरे शब्दों में, पालन-पोषण की इस शैली में माता-पिता अपने बच्चों के जीवन के भावनात्मक, शारीरिक, शैक्षणिक या अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं में कम से कम भागीदारी रखते हैं और वे अपने बच्चों के जीवन के केवल मूल या बुनियादी पहलुओं जैसे भोजन, आश्रय, कपड़े आदि की व्यवस्था कर सकते हैं।

पेरेंटिंग शैलियों के अन्य दृष्टिकोणों में मैकोबी और मार्टिन की टाइपोलॉजी शामिल है जो माता-पिता के अपने बच्चों के लिए लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित करती है और दो प्रकार के नियन्त्रित माता-पिता के बीच अन्तर करती है - पहला वे जो आज्ञाकारिता का लक्ष्य रखते हैं और दूसरा वे जो स्वायत्तता का लक्ष्य रखते हैं। इसके अतिरिक्त, डायना बॉमरिंड ने एक संशोधित टाइपोलॉजी प्रस्तावित की है जो पाँचवीं पेरेंटिंग शैली, 'सहायक' को जोड़ती है, जो आधिकारिक पेरेंटिंग के समान है, लेकिन भावनात्मक समर्थन और जवाबदेही प्रदान करने पर जोर देती है (मैककोबी, 1983)।

पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चों के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं और उनके मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षणिक उपलब्धि और सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित कर सकती हैं (डार्लिंग, 1997)। विभिन्न पेरेंटिंग शैलियों को समझने से माता-पिता और देखभाल करने वालों को पेरेंटिंग प्रथाओं पर विचार करने और समायोजन करने में मदद मिल सकती है जो उनके बच्चों के लिए सकारात्मक परिणामों को बढ़ावा देती हैं।

पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर अन्तर

जेंडर भेद का पेरेंटिंग शैलियों पर प्रभाव पड़ सकता है जिससे पिता और माता अपने बच्चों के साथ बातचीत करने और उन्हें पालने के तरीके में भिन्नताएँ पैदा कर सकते हैं (बेल्स्की, 2010)। जबकि यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जेंडर के भीतर व्यक्तिगत अन्तर मौजूद हैं, पेरेंटिंग स्टाइल में जेंडर भेद के बारे में कई सामान्य अवलोकन किए जा सकते हैं।

माताएँ अपने बच्चों के साथ ज्यादा मौखिक और भावनात्मक संचार में माहिर होती हैं। वे अक्सर पोषण, आराम और एक सुरक्षित भावनात्मक बन्धन बनाने पर जोर देती हैं। माताएँ आम तौर पर अनुभूति और भावनाओं को व्यक्त करने के लिए बातचीत में शामिल होने की अधिक सम्भावना रखती हैं, साथ ही सक्रिय सुनने और सहानुभूति के माध्यम से समर्थन भी प्रदान करती हैं। दूसरी ओर, पिता आमतौर पर अधिक शारीरिक और चंचल बातचीत में संलग्न होते हैं। वे मारपीट, आउटडोर खेल और समस्या-समाधान कौशल सिखाने जैसी गतिविधियों के माध्यम से अन्वेषण, चुनौती और स्वतन्त्रता को प्रोत्साहित कर सकते हैं (कैबरेरा, 2000)।

परम्परागत रूप से, माताएँ बच्चों के पालन-पोषण के कार्यों, जैसे - भोजन, स्नान और देखभाल की प्राथमिक जिम्मेदारी लेने की अधिक सम्भावना रखती हैं। हालाँकि, हाल के वर्षों में पालन-पोषण में अधिक पितृत्व भागीदारी की ओर बदलाव आया है (ईस्टरब्रुक्स, 1984)। पिता अपने बच्चों के साथ खेलने, अनुशासन करने, शैक्षिक और मनोरंजक प्रयासों में भाग लेने जैसी गतिविधियों में तेजी से शामिल हो रहे हैं। पिता की यह बढ़ी हुई भागीदारी एक अधिक सन्तुलित और विविधतापूर्ण पालन-पोषण दृष्टिकोण में योगदान करती है।

पेरेंटिंग शैलियों में देखे गए जेंडर भेद में कई कारक योगदान करते हैं। सामाजिक अपेक्षाएँ और सांस्कृतिक मानदंड पेरेंटिंग के सम्बन्ध में जेंडर भूमिकाओं और अपेक्षाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। पारम्परिक जेंडर भूमिकाएँ अक्सर माताओं को पोषण और भावनात्मक देखभाल सौंपती हैं, जबकि पिता से अधिक आधिकारिक होने और अनुशासन प्रदान करने की अपेक्षा की जाती है। व्यक्तित्व, पालन-पोषण और व्यक्तिगत मान्यताओं में व्यक्तिगत भेद भी पेरेंटिंग शैलियों को प्रभावित कर सकते हैं (प्लेक, 2010)। उदाहरण के लिए, एक पिता जो एक पोषण करने वाले और शामिल पिता के साथ बड़ा हुआ है, वह अपने बच्चों के साथ समान व्यवहार प्रदर्शित करने की अधिक सम्भावना रखता है।

यह पहचानना जरूरी है कि पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर भेद निरपेक्ष या सार्वभौमिक रूप से लागू नहीं है। पेरेंटिंग में माता और पिता की भूमिकाएँ और अपेक्षाएँ लगातार विकसित हो रही हैं, और बच्चों के पालन-पोषण में साझा पेरेंटिंग और जेंडर समानता के महत्व की मान्यता बढ़ रही है। अन्तत:, सबसे कुशल पेरेंटिंग शैली माता-पिता की ताकत को जोड़ती है, एक सहायक और प्यार भरा माहौल बनाती है, और हर बच्चे की अनूठी माँगों को पूरा करती है।

बाल विकास पर पेरेंटिंग शैलियों का प्रभाव

बाल विकास को आकार देने में पेरेंटिंग शैलियाँ महत्वपूर्ण हैं जो संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक विकास के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करती हैं। विभिन्न पेरेंटिंग शैलियों के प्रभावों को समझना इस बारे में अन्तर्दृष्टि प्रदान कर सकता है कि वे बच्चों की भलाई और विकास को कैसे प्रभावित करते हैं।

पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। आधिकारिक पेरेंटिंग जिसमें गर्मजोशी, समर्थन और उचित अपेक्षाएँ जैसी विशेषताएँ होती हैं, सकारात्मक संज्ञानात्मक परिणामों को बढ़ावा देती हैं (डार्लिंग, 1993)। आधिकारिक वातावरण में पले-बढ़े बच्चे अक्सर शैक्षणिक उपलब्धि, समस्या-समाधान कौशल और संज्ञानात्मक लचीलेपन के उच्च स्तर का प्रदर्शन करते हैं। दूसरी ओर, सत्तावादी या अनुमोदक पेरेंटिंग शैलियाँ संज्ञानात्मक विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती हैं। आधिकारिक पेरेंटिंग, जो सख्त नियमों और नियन्त्रण पर जोर देती है, बच्चों की खोज और जिज्ञासा में बाधा डाल सकती है, सम्भावित रूप से उनके संज्ञानात्मक विकास को सीमित कर सकती है। इसी तरह अनुमोदक पेरेंटिंग, जिसमें कम नियन्त्रण और कुछ माँगें होती हैं, संरचना

और मार्गदर्शन की कमी का कारण बन सकती हैं, जो संज्ञानात्मक विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं।

पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक विकास को भी प्रभावित करती हैं (लैम्बोर्न, 1991)। आधिकारिक पेरेंटिंग दूसरों के साथ सुरक्षित लगाव और सकारात्मक सम्बन्धों को बढ़ावा देती है। आधिकारिक माता-पिता वाले बच्चों में अधिक सक्षम सामाजिक कौशल, उच्च आत्म-सम्मान और भावनात्मक विनियमन क्षमताएँ होती हैं। उनमें सहानुभूति, सहयोग और समस्या-समाधान कौशल विकसित होने की अधिक सम्भावना होती है, जो स्वस्थ सामाजिक सम्पर्क में योगदान देती है। इसके विपरीत, सत्तावादी पेरेंटिंग से सामाजिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे - आक्रामकता या अलगाव, क्योंकि बच्चे कम आत्मसम्मान से जूझ सकते हैं और सामाजिक स्थितियों को संचालित करने में कठिनाई हो सकती है। अनुमेय पेरेंटिंग आत्म-नियन्त्रण, आवेग विनियमन और सीमा-निर्धारण को चुनौती दे सकती है, जो बच्चों के सामाजिक और भावनात्मक कल्याण को प्रभावित करती है।

पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चे के विकास के परिणामों पर अन्य कारकों के प्रभाव को कम कर सकती हैं (कॉलिन्स, 2000)। उदाहरण के लिए, पेरेंटिंग स्टाइल से प्रभावित होने वाले माता-पिता और बच्चे के जुड़ाव की गुणवत्ता, बच्चों के विकास पर सामाजिक-आर्थिक स्थिति, माता-पिता के मानसिक स्वास्थ्य और पारिवारिक गतिशीलता जैसे कारकों के प्रभावों को आकार दे सकती है। सकारात्मक पेरेंटिंग शैलियाँ एक सुरक्षात्मक तत्व के रूप में कार्य कर सकती हैं, जो बच्चे के विकास पर प्रतिकूल परिस्थितियों की प्रतिकूल भूमिकाओं को कम करती हैं। इसके अतिरिक्त, पेरेंटिंग शैलियाँ बच्चे के परिणामों को आकार देने के लिए आनुवांशिक पूर्वाग्रहों, स्वभाव और सांस्कृतिक प्रभावों के साथ बातचीत कर सकती हैं।

अत: पेरेंटिंग शैलियाँ संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक परिणामों सहित बाल विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती हैं। आधिकारिक पेरेंटिंग सकारात्मक विकास को बढ़ावा देती है, जबकि सत्तावादी और अनुमोदक पेरेंटिंग शैलियों के प्रतिकूल प्रभाव हो सकते हैं। पेरेंटिंग शैलियों के प्रभाव को समझने से माता-पिता और देखभाल करने वालों को पोषण और सहायक वातावरण बनाने में मदद मिल सकती है जो इष्टतम बाल विकास को सुविधाजनक बनाती हैं।

पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका और बाल विकास पर उनके प्रभाव

पेरेंटिंग शैलियाँ बाल विकास के परिणामों को आकार देने में एक मुख्य प्रभाव डालती हैं, और जेंडर को पेरेंटिंग गतिशीलता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण तत्व के रूप में माना जाता है। पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका और बच्चे के विकास पर इसके प्रभाव को समझना बच्चों के लिए स्वस्थ और सकारात्मक परिणामों को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है (ड्रायरी, 2010)।

सबसे पहले, पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर अन्तर को बाल विकास परिणामों के एक महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता के रूप में पहचाना गया है। शोध से पता चलता है कि माता और पिता अलग-अलग पेरेंटिंग शैलियों को अपनाते हैं। माताएँ अक्सर अधिक पोषण और भावनात्मक रूप से उत्तरदायी दृष्टिकोण प्रदर्शित करती हैं तथा सहानुभूति, संचार और अपने बच्चों के साथ मजबूत भावनात्मक बन्धन बनाने पर जोर देती हैं। दूसरी ओर, पिता अक्सर अधिक आधिकारिक या अनुशासनात्मक शैली प्रदर्शित करते हैं, जो स्वतन्त्रता, समस्या समाधान और लचीलेपन को बढ़ावा देने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। पेरेंटिंग शैलियों में ये अन्तर बच्चे के विकास के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित कर सकते हैं, जिसमें संज्ञानात्मक क्षमताएँ, सामाजिक कौशल, भावनात्मक विनियमन और आत्मसम्मान शामिल हैं (गोलोम्बोक, 2015)।

दूसरा, बाल विकास परिणामों में जेंडर और पेरेंटिंग (पालन-पोषण) शैलियों की परस्पर क्रियाशील भूमिकाएँ देखी गई हैं। पालन-पोषण शैलियाँ बच्चे के जेंडर के साथ कैसे अन्त:क्रिया करती हैं, यह उनके अनुभवों और उत्पादों को आकार दे सकता है। शोध से पता चलता है कि आधिकारिक पालन-पोषण शैलियों का लड़कियों की शैक्षणिक उपलब्धि पर अधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। साथ ही, लड़कों को पिता की भागीदारी और उनके आधिकारिक या चुनौतीपूर्ण दृष्टिकोण से अधिक लाभ हो सकता है (मैकहेल, 2012)। ये अन्त:क्रियात्मक प्रभाव जेंडर, पालन-पोषण शैलियों और बाल विकास परिणामों के बीच सम्बन्ध की जटिलता को उजागर करते हैं, जो बाल विकास की पड़ताल करते समय जेंडर और पालन-पोषण प्रथाओं पर विचार करने की आवश्यकता पर बल देते हैं (फेयर्स, 1992)।

अन्त में, पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका और बाल विकास पर इसके प्रभावों को समझना पेरेंटिंग और बच्चे के विकास हस्तक्षेपों के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ रखता है। पेरेंटिंग शैलियों की विविधता और जेंडर के प्रभाव को पहचानने से प्रभावी हस्तक्षेपों के डिजाइन और कार्यान्वयन को सूचित करने में मदद मिल सकती है। पेरेंटिंग कार्यक्रमों और हस्तक्षेपों को जेंडर भेद के प्रति संवेदनशील होना चाहिए तथा माता और पिता दोनों की अनूठी माँगों के अनुरूप समर्थन और मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए (थॉम्पसन, 2016)। साझा पेरेंटिंग जिम्मेदारियों को बढ़ावा देना, खुले संचार को बढ़ावा देना और जेंडर-विशिष्ट चुनौतियों का समाधान करने वाले संसाधन प्रदान करना इष्टतम बाल विकास परिणामों में योगदान दे सकता है (सैंडलर, 2008)।

अत:, पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर भेद बाल विकास परिणामों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। जेंडर, पेरेंटिंग शैलियों और बाल विकास के बीच परस्पर क्रिया जटिल और बहुआयामी है। इन गतिशीलताओं को समझना सकारात्मक पेरेंटिंग प्रथाओं को बढ़ावा देने और स्वस्थ बाल विकास का समर्थन करने वाले हस्तक्षेपों को डिजाइन करने के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। पेरेंटिंग शैलियों में जेंडर की भूमिका पर विचार करके, शोधकर्ता और चिकित्सक बच्चों में इष्टतम विकास और कल्याण को बढ़ावा देने में माता-पिता का बेहतर समर्थन कर सकते हैं।

निष्कर्ष

संक्षेप में, साहित्य समीक्षा ने पेरेंटिंग शैलियों पर जेंडर के प्रभाव और बच्चे के विकास पर इसके प्रभाव की पड़ताल करने के महत्व पर जोर दिया है। पूर्व में हुए शोध ने मुख्य रूप से गर्मजोशी और नियन्त्रण के आयामों पर ध्यान केन्द्रित किया है, लेकिन हाल के शोध ने पेरेंटिंग पर जेंडर के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है।

अध्ययनों से पता चला है कि पिता और माता की पालन-पोषण शैली अलग-अलग होती है, पिता अपने बच्चों के साथ संवाद के ज्यादा प्रत्यक्ष और शारीरिक रूपों का इस्तेमाल करते हैं और ज्यादा शारीरिक खेल खेलते हैं। माताएँ अपने बच्चों के साथ बातचीत के दौरान ज्यादा अप्रत्यक्ष और मौखिक संचार का इस्तेमाल करती हैं। पालन-पोषण शैलियों में ये विविधताएँ संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक परिणामों सहित बच्चे के विकास को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित कर सकती हैं।

इसके अलावा, पेरेंटिंग में जेंडर भेद बच्चों की जेंडर भूमिकाओं के विकास से जुड़ा हुआ है। पिता अपने बेटों की जेंडर पहचान को आकार देने और पारम्परिक मर्दाना लक्षणों को प्रोत्साहित करने में अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकते हैं। इसके विपरीत, माताएँ अपनी बेटियों की जेंडर पहचान को आकार देने और पारम्परिक स्त्रैण लक्षणों को प्रोत्साहित करने में अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती हैं।

साहित्य यह भी बताता है कि सांस्कृतिक और सामाजिक कारक पेरेंटिंग में इन जेंडर भेदों में योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए, पारम्परिक जेंडर भूमिकाएँ और अपेक्षाएँ लड़कों और लड़कियों के लिए उचित व्यवहार के बारे में माता-पिता की मान्यताओं को प्रभावित कर सकती हैं, और ये मान्यताएँ पेरेंटिंग प्रथाओं के माध्यम से बच्चों तक पहुँच सकती हैं।

सभी साहित्य समीक्षाएँ जेंडर, पालन-पोषण शैलियों और बाल विकास के बीच जटिल सम्बन्ध को बेहतर ढँग से समझने के लिए भविष्य के अध्ययनों की माँग पर जोर देती है। इसमें पालन-पोषण और बाल विकास हस्तक्षेपों के लिए भी महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। उदाहरण के लिए, हस्तक्षेपों को अधिक सन्तुलित और जेंडर-समावेशी पालन-पोषण प्रथाओं को बढ़ावा देने के लिए रूपांकित किया जाना चाहिए जो जेंडर की परवाह किए बिना प्रत्येक बच्चे की अनूठी जरूरतों और प्राथमिकताओं पर विचार करते हैं। इसके अतिरिक्त, हस्तक्षेपों को पालन-पोषण में जेंडर भेद में योगदान देने वाले अन्तर्निहित सामाजिक और सांस्कृतिक कारकों को सम्बोधित करना चाहिए और पालन-पोषण प्रथाओं में अधिक जेंडर समानता को बढ़ावा देना चाहिए।

सन्दर्भ

बॉमरिंड, डी. (1991). 'द इन्फ्लुएंस ऑफ पेरेंटिंग स्टाइल ऑन अडोलसेंट कॉम्पिटेंस एंड सब्सटेंस यूज', *जर्नल ऑफ अर्ली अडोलसेंस,* 11(1), 56-95. https://doi.org/10.1177/0272431691111004

बेल्स्की, जे. (2010). 'चाइल्डहुड एक्सपीरियंस एंड द डेवलपमेंट ऑफ रिप्रोडक्टिव स्ट्रेटेजीज'. इन टी.के. शैकलफोर्ड एवं डी.पी. श्मिट (सम्पा.), *द हैंडबुक ऑफ इवोल्यूशनरी साइकोलॉजी* (पृ. 296-318). वाइली।

ब्लूम, एल.बी., एवं जेम्बार, एम.जे. (2007). 'पेरेंटिंग स्टाइल्स एंड चाइल्ड बिहेवियर प्रॉब्लम्स : अ लॉन्गिट्यूडिनल एनालिसिस', *जर्नल ऑफ एबनॉर्मल चाइल्ड साइकोलॉजी,* 35(5), 867-882. https://doi.org/10.1007/s10802-007-9135-0

कैबरेरा, एन.जे., टैमिस-लेमोंडा, सी.एस., ब्रैडली, आर.एच., होफर्थ, एस., एवं लैम्ब, एम.ई. (2000). 'फादरहुड इन द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी', *चाइल्ड डेवलपमेंट,* 71(1), 127-136. https://doi.org/10.1111/1467-8624.00133

कॉलिन्स, डब्ल्यू.ए., मैकोबी, ई.ई., स्टीनबर्ग, एल., हेदरिंगटन, ई.एम., एवं बॉर्नस्टीन, एम.एच. (2000). 'कंटेम्पररी रिसर्च ऑन पेरेंटिंग : द केस फॉर नेचर एंड नर्चर', *अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट,* 55(2), 218-232।

चाओ, आर.के. (1994). 'बियॉन्ड पैरेंटल कंट्रोल एंड ऑथॉरिटेरियन पेरेंटिंग स्टाइल : अंडरस्टैंडिंग चाइनीज पेरेंटिंग', *चाइल्ड डेवलपमेंट,* 65(4), 1111-1119. https://doi.org/10.2307/1131308

डार्लिंग, एन. एवं स्टीनबर्ग, एल. (1993). 'पेरेंटिंग स्टाइल ऐज कॉन्टेक्स्ट : एन इंटीग्रेटिव मॉडल', *साइकोलॉजिकल बुलेटिन,* 113(3), 487-496. https://doi.org/10.1037/0033-2909.113.3.487

डार्लिंग, एन., एवं टोयोकोवा, टी. (1997). *कंस्ट्रक्शन एंड वैलिडेशन ऑफ द पेरेंटिंग स्टाइल इन्वेंटरी II (PSI-II).* पोस्टर प्रस्तुति, सोसाइटी फॉर रिसर्च इन चाइल्ड डेवलपमेंट, वॉशिंगटन, डी.सी.

द्वायरी, एम. (2010). 'पेरेंटिंग स्टाइल्स एंड मेंटल हेल्थ ऑफ पैलेस्टिनियन-अरब अडोलसेंट्स', *ट्रांसकल्चरल साइकियाट्री,* 47(4), 563-589

ईस्टब्रुक्स, एम.ए. एवं गोल्डबर्ग, डब्ल्यू.ए. (1984). 'टॉडलर डेवलपमेंट इन द फैमिली', *चाइल्ड डेवलपमेंट,* 55(3), 740-752. https://doi.org/10.2307/1130190

फेयर्स, वी. एवं कॉम्पास, बी. ई. (1992). 'द रोल ऑफ फादर्स इन चाइल्ड एंड अडोलसेंट साइकोपैथोलॉजी', *साइकोलॉजिकल बुलेटिन,* 111(3), 387-412

गोलोम्बोक, एस. एवं टास्कर, एफ. (2015). 'डोनर कंसेप्शन एंड पेरेंटिंग : अ कमेंट्री', *जर्नल ऑफ फैमिली साइकोलॉजी,* 29(6), 785-789।

झोउ, क्यू., सैंडलर, आई.एन., मिलसैप, आर.ई., वोल्चिक, एस.ए., डॉसन-मैकक्लूर, एस.आर. एवं कैमेरोटा, एम. (2008). 'द रोल ऑफ मैटरनल कंट्रोल'. *डेवलपमेंटल साइकोलॉजी,* 44(6), 1649-1665।

थॉम्पसन, आर. (2016). 'फादर्स' कंट्रीब्यूशन्स टू चिल्ड्रन्स' सोशल डेवलपमेंट'. इन एम.ई. लैम्ब एवं एल.ए. शेरोड (सम्पा.), *इन्फेंट एंड अर्ली चाइल्डहुड मेंटल हेल्थ* (पृ. 227-242). अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन।

प्लेक, जे.एच. (2010). 'पैटरनल इन्वॉल्वमेंट'. इन एम. लैम्ब (सम्पा.), *द रोल ऑफ द फादर इन चाइल्ड डेवलपमेंट* (पृ. 58-93). वाइली।

प्लेक, जे.एच., सोनेनस्टीन, एफ.एल., एवं कु, एल.सी. (1994). 'मैस्क्युलिनिटी आइडियोलॉजी', *जर्नल ऑफ सोशल इश्यूज,* 50(3), 67-86. https://doi.org/10.1111/j.1540-4560.1994.tb02482.x

पोमेरेन्ट्ज, ई.एम., एवं रूबल, डी.एन. (1998). 'मैटरनल कंट्रोल एंड चाइल्ड सेल्फ-इवैल्यूएशन'. *चाइल्ड डेवलपमेंट,* 69(2), 458-478. https://doi.org/10.1111/j.1467-8624.1998.tb06165.x

मैकोबी, ई.ई., एवं मार्टिन, जे.ए. (1983). 'सोशलाइजेशन इन द फैमिली'. इन पी.एच. म्यूसन एवं ई.एम. हेदरिंगटन (सम्पा.), *हैंडबुक ऑफ चाइल्ड साइकोलॉजी* (अंक 4, पृ. 1-101). वाइली।

मैकहेल, जे.पी., वॉलर, एम.आर., एवं पियरसन, जे. (2012). 'कोपेरेंटिंग इंटरवेंशन्स'. *फैमिली प्रोसेस,* 51(3), 284-306।

लैम्बोर्न, एस.डी., माउंट्स, एन.एस., स्टीनबर्ग, एल., एवं डॉर्नबुश, एस.एम. (1991). 'पैटर्न्स ऑफ कॉम्पिटेंस एंड एडजस्टमेंट'. *चाइल्ड डेवलपमेंट,* 62(5), 1049-1065।

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 84-93)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

भारतीय राजनीति में दल-बदल और दल-बदल विरोधी कानून की प्रभावशीलता और कमियाँ

रोशनी खातून*

भारतीय राजनीति में दल-बदल एक गम्भीर समस्या के रूप में सामने आया है जो लोकतान्त्रिक प्रक्रिया और स्थिरता को प्रभावित करता है। दल-बदल से राजनीतिक अनिश्चितता बढ़ती है जिससे सरकारों का कार्यकाल छोटा हो जाता है और नीति निर्माण में बाधा उत्पन्न होती है। इस समस्या से निपटने के लिए भारत में दल-बदल विरोधी कानून लागू किया गया है जिसका उद्देश्य विधायकों को अपनी पार्टी के प्रति वफादार बनाए रखना है। हालाँकि, इस कानून की प्रभावशीलता सीमित रही है क्योंकि इसमें कई खामियाँ है, जैसे - पार्टी नेतृत्व का अत्यधिक नियन्त्रण और कानूनी जटिलताएँ, जिनका दुरुपयोग करके दल-बदल को वैधता मिल जाती है। इसके अलावा यह कानून राजनीतिक नैतिकता और जवाबदेही बढ़ाने में पूरी तरह सफल नहीं हो पाया है। इस कानून की वजह से निर्वाचित प्रतिनिधियों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर भी बहस छिड़ गई है। इसलिये दल-बदल विरोधी कानून में सुधार और राजनीतिक संस्कृति में जागरूकता आवश्यक है ताकि भारतीय लोकतन्त्र की मजबूती सुनिश्चित हो सके।

*शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
E-mail: roshnikhatunswn786@gmail.com

परिचय

'डिफेक्शन' (दल-बदल) शब्द की उत्पत्ति 'डिफेक्टो' से हुई है जो लैटिन भाषा का एक शब्द है। इसका अर्थ होता है 'किसी व्यक्ति अथवा उद्देश्य का त्याग करना, जिसके प्रति वह निष्ठा या कर्तव्य बोध से बँधा हुआ हो'। दल-बदल की राजनीति वह स्थिति होती है जब कोई निर्वाचित प्रतिनिधि अपने उस राजनीतिक दल का त्याग करता है जिसके चुनाव चिह्न पर उसने चुनाव जीता है और इसके बाद किसी अन्य राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण कर लेता है, उसके प्रति प्रतिबद्ध हो जाता है, उसके निर्देशों का पालन करता है और अपने मूल राजनीतिक दल के विरुद्ध होता है। सांसदों/विधायकों द्वारा राजनीतिक दल-बदल एक रणनीति के तहत प्रयोग किया जाता है जिससे उनका निजी स्वार्थ और उनकी महत्वाकांक्षा पूर्ण हो सके और सत्ता में लाभ का पद मिले। इस तरह के कृत्य लोकतान्त्रिक मूल्यों के लिए घातक हैं। जनता के आदेश का, उनके मत का, लोकतन्त्र पर विश्वास का अपमान है। लोकतन्त्र में जनता की ही सरकार होती है और ऐसे कार्य एक स्वस्थ लोकतन्त्र के लिए खतरनाक हैं (मल्होत्रा, 2005)। 26 जनवरी 1950 को भारत एक गणतन्त्रात्मक लोकतन्त्र बना और इसी दिन भारत का संविधान लागू होने के साथ इसने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया (काश्यप, 1991)। भारत जैसे संसदीय लोकतन्त्र में सरकार की स्थिरता बनाए रखने के लिए दल-बदल हमेशा से एक चुनौती रही है। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद से ही दल-बदल की प्रवृत्ति भारतीय राजनीति में देखने को मिलने लगी। इसका उच्चतम बिन्दु 1960-70 के दशक में देखने को मिला जब कई राज्यों में लगातार दल-बदल के कारण सरकारें गिरीं। इससे लोकतान्त्रिक मूल्यों, इसकी विश्वसनीयता पर प्रश्न उठने लगे। इसलिये 1985 ई. में 52वें संविधान संशोधन द्वारा दल-बदल विरोधी कानून लाया गया और संविधान में इसके निमित्त 10वीं अनुसूची जोड़ी गई (भारत का संविधान, दसवीं अनुसूची, 1985)। इसका उद्देश्य राजनीतिक दलों के सदस्यों को अनुशासित रखना, निर्वाचित हुए विधायकों/सांसदों के अवसरवादी दल-बदल पर रोक लगाना और सरकारों की स्थिरता को कायम रखना था।

दल-बदल विरोधी कानून जब लाया गया था, यह तब भी बहुत प्रासंगिक विषय था और आज भी उतना ही प्रासंगिक है। 1985 के 52वें संविधान संशोधन और 2003 के 91वें संशोधन की सीमाओं, खामियों और व्यावहारिकता पर बहस जारी है। हाल के वर्षों में कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि राज्यों में राजनीतिक दल-बदल के घटनाक्रम इस कानून की प्रभावशीलता पर सवाल उठाते हैं। यह राजनीतिक नैतिकता से जुड़ा हुआ मुद्दा भी है। दल-बदलू विधायकों की वजह से मतदाताओं का विश्वास लोकतन्त्र से टूटता है, लोकतन्त्र की नैतिकता प्रभावित होती है। इसलिये निर्वाचित प्रतिनिधियों के आचरण को नियन्त्रित करने, जनादेश का सम्मान और रक्षा करने, शासन व्यवस्था को स्थिर करने के लिए यह विषय और भी ज्यादा प्रासंगिक हो जाता है।

वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को देखें तो यह गठबन्धन और बहुदलीय व्यवस्था का दौर है। इस व्यवस्था में सरकारों के स्थिर रहने पर दल-बदल का सीधा प्रभाव पड़ता है। इसलिये ऐसा लोकतन्त्र जहाँ राजनीतिक दल कमजोर हैं या गठबन्धन की राजनीति है वहाँ दल-बदल विरोधी कानून आवश्यक है। यह कानून सशक्त लोकतन्त्र के लिए, जनादेश की रक्षा के लिए मूल आधार है।

चूंकि, इस कानून को लाने का उद्देश्य भारतीय लोकतन्त्र में स्वस्थ और स्थिर राजनीतिक वातावरण को स्थापित करना था लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इसमें कई कमियाँ और चुनौतियाँ सामने आई हैं। प्रमुख समस्याओं में विभाजन और विलय के मुद्दे उठे, त्यागपत्र देकर पुनः चुनाव लड़ना, अध्यक्ष के निर्णय लेने में देरी, उनकी निष्पक्षता पर सवाल, राजनीतिक खरीद-फरोख्त जैसी बातें सामने आईं।

इस शोध लेख का उद्देश्य केवल कानून की धारा की व्याख्या करना नहीं है, बल्कि इसके व्यावहारिक प्रभाव, कमियाँ और भविष्य में सुधार की सम्भावनाओं पर दृष्टि डालना है ताकि लोकतन्त्र और अधिक मजबूत बन सके।

प्रमुख राजनीतिक दल-बदल के घटनाक्रम

भारत में दल-बदल के इतिहास को देखें तो यह स्वतन्त्रता से पूर्व भी देखने को मिलता है। इसका पहला उदाहरण श्री श्यामलाल नेहरू का मिलता है जिन्होंने केन्द्रीय विधान परिषद् में कांग्रेस का पक्ष छोड़कर ब्रिटिश पक्ष का समर्थन किया था। यह घटना वैचारिक उलझनों का परिणाम थी। एक अन्य उदाहरण हाफिज मुहम्मद इब्राहिम का भी मिलता है जो 1937 में उत्तरप्रदेश विधानसभा में मुस्लिम लीग के निर्वाचित प्रतिनिधि थे, कांग्रेस पार्टी के साथ जुड़ गए (भटनागर, 2008)।

स्वतन्त्रता से पूर्व या स्वतन्त्रता के पश्चात् शुरूआती वर्षों में नेताओं द्वारा या निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने राजनीतिक दलों को छोड़कर अन्य दलों में शामिल होना या नयी राजनीतिक पार्टी बनाने का उदाहरण मिलता है। ये वैचारिक प्रतिबद्धता और उनकी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को दर्शाता है। इनका सरकार की अस्थिरता पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा। इन्होंने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता की आदर्श मिसाल दी। जैसे 1934 में कांग्रेस के भीतर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बन गई थी लेकिन इसने 1948 में कांग्रेस को छोड़ दिया और इसके सभी सदस्य जो विधानसभा सदस्य थे, इस्तीफा देकर पुनः चुनाव लड़ने के लिए अग्रसर हुए और पुनः निर्वाचन की माँग की (दस्तूर, 1960)।

चव्हाण समिति की रिपोर्ट जो 1969 में आई थी, इसने भारतीय राजनीति में होने वाले दल-बदल का विस्तार से उल्लेख किया है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के पहले दो दशक को देखें अर्थात् 1947-1967 तक का समय देखें तो लगभग 542 दल-बदल की घटनाएँ हुईं। 1967-68 के दौरान इसकी तुलना में मात्र बारह महीने में लगभग 438 दल-बदल की घटनाएँ सामने आईं। कुल 376 निर्वाचित निर्दलीय

प्रतिनिधियों में से 157 विभिन्न राजनीतिक दलों में गये। कई दल-बदलुओं को मन्त्रीपरिषद् में भी जगह मिली (चव्हाण समिति की रिपोर्ट, 1969)।

1960 का जो दशक था व्यापक अस्थिरता का दशक बना। जहाँ बार-बार सरकारें गिर रही थीं। यह आँकड़े उस दौर की राजनीतिक अस्थिरता और अवसरवादिता को दर्शाते हैं। सबसे ज्यादा भूमिका तो स्वतन्त्र उम्मीदवारों की रही। यह लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए एक गम्भीर चुनौती बन गई। इसलिये 1985 में 52वें संविधान संशोधन द्वारा दल-बदल विरोधी कानून लाया गया। भारत में बहुत सारे राजनीतिक दल-बदल हुए हैं और वर्तमान समय में भी हो रहे हैं। इससे जुड़े कुछ प्रमुख उदाहरणों के माध्यम से इस स्थिति की गम्भीरता को समझ सकते हैं। 1967 के दौर के कुछ प्रमुख घटनाक्रम हैं -

1. ***हरियाणा (1967) : गयालाल का घटनाक्रम :*** हरियाणा 1 नवम्बर 1966 को बना और 1967 में पहली बार विधानसभा चुनाव हुए। गयालाल स्वतन्त्र विधायक के रूप में निर्वाचित हुए थे। चुनाव जीतने के कुछ ही घंटों में वह कांग्रेस में शामिल हो गए, अगले कुछ घंटों में संयुक्त मोर्चा में गये फिर शाम तक कांग्रेस में शामिल हुए। अन्तत: 15 दिन पूरे होने तक वह पुन: संयुक्त मोर्चा में सम्मिलित हो गए। इस तरह यह घटना 'आया राम गया राम' से मशहूर हुई। संयुक्त विधायक दल का नेतृत्व कर रहे राव बीरेंद्र सिंह ने टिप्पणी की - 'गया राम अब आया राम है' (दिवान, 1979)।
2. ***राजस्थान (1967) : सरकार की अस्थिरता :*** विधानसभा की कुल 184 सीटें थीं जिसमें से 89 सीटों पर कांग्रेस पार्टी चुनाव जीती। बहुमत नहीं होने पर किसी भी पार्टी की सरकार नहीं बनी और राष्ट्रपति शासन लगा। इसी दौरान पार्टियाँ एक दूसरे के विधायकों को तोड़कर सरकार बनाने का प्रयास करने लगीं। जनसंघ और संयुक्त मोर्चा 94 विधायकों के साथ सरकार बनाने के लिए दावा कर रहे थे, उधर कांग्रेस पार्टी भी दावा कर रही थी। 21 विधायक ऐसे थे जिनका नाम दोनों पार्टियों की समर्थन सूची में था। इन 21 विधायकों से पुन: पार्टी के पक्ष में मत देने के लिए कहा गया और इसके बाद कांग्रेस ने सरकार बनाई। मोहनलाल सुखाड़िया मुख्यमन्त्री बने और विधायकों की संख्या को जोड़ते-जोड़ते 89 से 108 कर ली (व्यास, 2023)।
3. ***पंजाब (1967) : सरकार का गिरना :*** पंजाब में तब कुल विधानसभा सीट 104 थीं जिनमें से 48 सीट पर कांग्रेस जीती थी। अकाली दल के नेता गुरनाम सिंह ने अन्य राजनीतिक दलों से गठबन्धन करके पीपल्स युनाइटेड फ्रंट सरकार बनाई लेकिन यह सरकार 1967 में गिर गई जब सत्ता पक्ष के लशमन सिंह गिल ने अन्य विधायकों के साथ दल-बदल करके कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनाई। यह भी अगस्त, 1968 में गिर गई (वार्षिक प्रतवेदन 1968-1969, गृह मन्त्रालय, भारत सरकार)।
4. ***बिहार (1967) : सरकार के गिरने का घटनाक्रम :*** कुल 318 सीटों पर चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को 128 सीटें और संसोपा को 68 सीटें मिली। संसोपा, जनक्रान्ति दल, प्रसोपा, जनसंघ, कम्युनिस्ट पार्टी ने मिलकर गठबन्धन की सरकार बनाई

जिसमें मुख्यमन्त्री महामाया प्रसाद सिन्हा और उप मुख्यमन्त्री कर्पूरी ठाकुर बने। मन्त्रीमण्डल की संरचना से नाखुश होकर बी.पी. मण्डल के नेतृत्व में कुछ विधायकों ने दलबदल करके कांग्रेस के साथ सरकार बनाई। मण्डल सरकार को समर्थन देने पर कांग्रेस के बीच भी तनाव शुरू हो गए। 50 दिन में ही सरकार गिर गई। लोकतान्त्रिक कांग्रेस नाम से अलग गुट बना और भोला पासवान शास्त्री विपक्षी विधायकों के समर्थन से मुख्यमन्त्री बने। यह सरकार भी चार महीने ही चली।

4. ***उत्तरप्रदेश (1967) का दौर*** - 1967 में चुनाव हुए जिसमें कांग्रेस को बहुमत नहीं मिला। संयुक्त विधायक दल ने गठबन्धन सरकार बनाई और चरण सिंह मुख्यमन्त्री बने। लेकिन 1968 में दल-बदल के कारण यह सरकार गिर गई फिर कांग्रेस की सरकार बनी और ये भी 1969 में गिर गई।

इस तरह यह दौर अस्थिरताओं का दौर था। हाल-फिलहाल की घटनाओं को देखे तो कुछ प्रमुख उदाहरण सामने आते हैं जो दल-बदल विरोधी कानून को पूरी तरह प्रासंगिक बनाते हैं और इस बात पर जोर देते हैं कि इसकी समीक्षा की जानी चाहिए। कुछ प्रमुख उदाहरण हैं -

1. ***उत्तराखंड 2016 :*** उत्तराखंड विधानसभा की कुल सीट 70 हैं। 2016 में कांग्रेस के 32 विधायक थे जिन्होंने प्रगतिशील लोकतान्त्रिक मोर्चा के साथ गठबन्धन की सरकार बनाई। सत्तापक्ष कांग्रेस के नौ विधायकों ने मुख्यमन्त्री हरीश रावत से बगावत कर दी जिस वजह से राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा, क्योंकि सरकार अल्पमत में आ गई थी। पुन: बहुमत परीक्षण से सरकार को गुजरना पड़ा और हरीश रावत की सरकार पुन: बहाल हुई (हसन, 2018)।
2. ***अरुणाचल प्रदेश 2016 :*** यहाँ विधानसभा की कुल सीट 60 हैं। कांग्रेस को चुनाव में 43 सीटों के साथ पूर्ण बहुमत मिला लेकिन 43 में से 42 विधायक, जिसमें मुख्यमन्त्री पेमा खांडू भी थे भाजपा के समर्थन में आ गए और इस तरह एक विचारधारा की सरकार दूसरे विचारधारा की सरकार में परिवर्तित हो गई (एनडीटीवी, 2016)।
3. ***कर्नाटक 2019 :*** इस राज्य में कुल विधानसभा की सीट 224 हैं। 2019 में भाजपा के 104 विधायक, कांग्रेस के 78 विधायक तथा जेडीएस के 37 विधायक थे। कांग्रेस-जेडीएस की गठबन्धन सरकार बनी लेकिन सत्तापक्ष के 17 विधायकों ने एक साथ इस्तीफा दिया और एच.डी. कुमारस्वामी की सरकार गिर गई। सुप्रीम कोर्ट ने विधायकों को अयोग्य तो ठहराया लेकिन पुन: उपचुनाव लड़ने की अनुमति मिल गई। वे भाजपा से चुनाव लड़े, कई मन्त्री तक बने और भाजपा की सरकार बनी (द हिन्दू, 2019)।
4. ***मध्यप्रदेश 2020 :*** कुल विधानसभा की सीट 230 हैं, जिसमें से 2018 के चुनाव में कांग्रेस गठबन्धन को 114 और एनडीए को 109 सीट मिली थीं। कांग्रेस ने अन्य के साथ मिल कर सरकार बनाई थी। 2020 में सत्तापक्ष से ज्योतिरादित्य सिन्धिया गुट

के 22 विधायक भाजपा में शामिल हो गए और कमलनाथ सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। भाजपा ने इन दल-बदलुओं के सहयोग से सरकार बनाई और शिवराज सिंह पुन: मुख्यमन्त्री बने (इंडियन एक्सप्रेस, 2020)।

5. ***महाराष्ट्र 2022 :*** महाराष्ट्र में कुल विधानसभा की सीट 288 हैं, जिसमें से 2022 में एनडीए के पास 105 विधायक थे। शिवसेना के 56, कांग्रेस के 44, एनसीपी के 54 विधायकों ने मिलकर महाविकास अघाड़ी गठबन्धन की सरकार बनाई थी और उद्धव ठाकरे मुख्यमन्त्री थे। 2022 में सत्तापक्ष से एकनाथ शिन्दे के नेतृत्व में 40 विधायकों ने अपना समर्थन वापस ले लिया और भाजपा के समर्थन से नयी सरकार बनी और एकनाथ शिन्दे मुख्यमन्त्री बने। इस घटना के फलस्वरूप शिवसेना के दो टुकड़े हो गये और आधिकारिक शिवसेना शिन्दे गुट को माना गया और दूसरा भाग उद्धव ठाकरे की शिवसेना कहलाई (स्क्रोल.इन, 2022)।

6. ***गोवा 2022 :*** इस समय गोवा में कांग्रेस को एक बड़ा राजनीतिक झटका लगा, क्योंकि पार्टी के 11 में से 8 विधायक भाजपा में शामिल हो गये, जिससे राज्य में कांग्रेस की स्थिति काफी कमजोर हो गई। दलबदल करने वालों में पूर्व मुख्यमन्त्री दिगम्बर कामत और विपक्ष के पूर्व नेता माइकल लोबो जैसे प्रमुख नेता शामिल थे। इस कदम के बाद 40 सदस्यीय विधानसभा में कांग्रेस के पास अब केवल 3 विधायक बचे हैं। यह घटनाक्रम गोवा में कांग्रेस की आन्तरिक कलह और असन्तोष को दर्शाता है और भाजपा की ताकत को और बढ़ाता है। इससे राज्य की राजनीतिक गतिशीलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा और विपक्ष पूरी तरह कमजोर हो गया (द हिन्दू, 2022)।

इन गम्भीर परिस्थितियों का अध्ययन करने के बाद दल-बदल विरोधी कानून के प्रावधानों को समझना जरूरी है ताकि यह तथ्य सामने आ सके कि इस कानून के होने के बाद भी दल-बदल की प्रवृत्ति पर लगाम क्यों नहीं लग पाया है और किस तरह इसकी कमियों का फायदा उठा कर अयोग्यता से बच भी जाते हैं। इनसे सम्बन्धित कुछ प्रमुख विवाद हैं जिनके अध्ययन के माध्यम से इसकी कमियों को समझ सकते हैं और भविष्य में सुधार के बेहतर उपाय मिल सकते हैं। इनका वर्णन अग्रलिखित है -

1. 1985 का 52वाँ संविधान संशोधन

निरर्हता : 10वीं अनुसूची में निरर्हता से सम्बन्धित कुछ प्रावधान दिये गये हैं कि कौन सदन के सदस्यता से निरर्हक होंगे - ऐसे निर्वाचित सदस्य जो स्वेच्छा से अपने मूल राजनीतिक दल को छोड़ते हैं, या उस सदन में अपने पार्टी व्हिप के विरुद्ध मतदान करते हैं या मतदान से अनुपस्थित रहते हैं या उन्हें इससे सम्बद्ध 15 दिन के भीतर क्षमादान नहीं मिला हो (भारत का संविधान, दसवीं अनुसूची, 1985)।

निर्दलीय सदस्यों के बारे में कहा गया है कि वह अयोग्य हो जाएँगे अगर चुनाव जीतने के बाद किसी दूसरी पार्टी में शामिल हो जाते हैं, इसी तरह मनोनीत सदस्यों के बारे में कहा गया है कि वह भी सदन की सदस्यता से अयोग्य हो जाएँगे अगर छह महिने बाद किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित होते हैं।

विवाद और सुझाव : स्वेच्छा से त्याग पत्र देते हैं तो सदन की सदस्यता चली जाती है, लेकिन कभी-कभी निर्वाचित सदस्यों की गतिविधियों को, उनकी असहमति को, उनकी अभिव्यक्ति के अधिकार को पार्टी के खिलाफ मान लिया जाता और उनकी सदस्यता खत्म कर दी जाती है। अत: ये आवश्यक है कि विधायकों/सांसदों की लोकतान्त्रिक असहमति के अधिकार को स्पष्ट किया जाये और इसके तथा दल-बदल के बीच का अन्तर स्पष्ट किया जाये।

इसी तरह निर्दलीय सदस्यों को भी मनोनीत सदस्यों की तरह ही छह माह का अवसर दिया जाये ताकि वह भी इस अवधि के बीच किसी पार्टी में शामिल हो जाएँ या मनोनीत और निर्दलीय के लिए एक ही प्रावधान रखा जाये कि वह किसी भी राजनीतिक दल में शामिल नहीं हो सकते हैं, वह अपना स्वतन्त्र विचार रखें।

अपवाद : उपर्युक्त निरर्हता में विभाजन के मामले में छूट दी गई थी, अर्थात् किसी राजनीतिक दल का उस सदन में सदस्यों की कुल संख्या के 1/3 अगर पार्टी से अलग होते हैं तो उन पर अयोग्यता लागू नहीं होगी। इस पैरा का बहुत दुरुपयोग हुआ और बड़े स्तर पर दल-बदल होते रहे। दिनेश गोस्वामी समिति (1990), विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट (1999) और संविधान समीक्षा आयोग ने इसे समाप्त करने की सिफारिश की। 1985 से 2003 तक लगातार दुरुपयोग होने के बाद 91वें संशोधन 2003 के माध्यम से इसे समाप्त किया गया। अब इसकी जगह 2/3 अर्थात् विलय की अवधारणा को रखा गया है लेकिन इसका भी दुरुपयोग इसी तरह हो रहा है और यह खास कर छोटे राज्यों में घातक है क्योंकि वहाँ विधानसभा सीटें कम होती हैं। इसलिये यह सुझाव है कि इस पर पर भी चर्चा होनी चाहिए और सही समाधान होना चाहिए।

सदन का अध्यक्ष : इनकी निष्पक्षता बनाये रखने के लिए कहा गया है कि ये अध्यक्ष बनने के बाद अपनी पार्टी छोड़ने के लिए स्वतन्त्र हैं। 10वीं अनुसूची के तहत जो भी अयोग्य होंगे उनके सम्बन्ध में निर्णय लेने का अधिकार इन्हें दिया गया है। लेकिन हमेशा इनकी निष्पक्षता और निर्णय लेने में होने वाली देरी या शीघ्रता की वजह से सवाल उठते रहे हैं। ऐसा सवाल उठता रहा है कि इनका निर्णय सत्तापक्ष को लाभ पहुँचाने के लिए होता है। निर्णय लेने की कोई समय-सीमा भी निर्धारित नहीं है, जैसे - के. मीहो सिंह बनाम मणिपुर विधानसभा अध्यक्ष 2020 के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा कहा गया है कि जानबूझ कर निर्णय को लम्बित नहीं रखा जा सकता है और अध्यक्ष को समय-सीमा के अन्दर निर्णय देना चाहिए नहीं तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है (केशम मेघचन्द्र सिंह बनाम स्पीकर, मणिपुर विधानसभा, 2020)। इसी तरह तेलंगाना में 2023 का दल-बदल का मामला जिसमें

बीआरएस के दस विधायक कांग्रेस में शामिल हो गए थे - को अभी तक लम्बित रखा गया जिससे 2025 में सुप्रीम कोर्ट को टिप्पणी करनी पड़ी है - "तेलंगाना स्पीकर तय करे कि नया साल कहाँ मनाएँगे, बीआरएस विधायकों की अयोग्यता पर जल्द फैसला करें नहीं तो कोर्ट आना होगा।" (दैनिक भास्कर, 25 नवम्बर 2025)। इसलिये सुझाव है कि अध्यक्ष से सम्बन्धित जो भी प्रावधान हैं उसमें संशोधन किया जाये। या इससे सम्बन्धित फैसला लेने का अधिकार एक स्वतन्त्र निकाय को दिया जाये जो गैर-राजनीतिक निकाय हो।

2. 2003 का 91वाँ संविधान संशोधन

इस संशोधन के तहत 10वीं अनुसूची को और मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है। जैसे - लोकसभा हो या राज्यों की विधानसभा इसमें मन्त्रीपरिषद् का आकार सीमित कर दिया गया है और कहा गया है कि सदन की कुल सदस्य संख्या के 15 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए और साथ में राज्यों के लिए यह कहा गया है कि मन्त्रीपरिषद् की संख्या 12 से कम भी नहीं हो। साथ ही यह भी जोड़ा गया है कि जो दल-बदल के तहत अयोग्य होंगे उन्हें कोई मन्त्री का पद नहीं मिलेगा और कोई भी राजनीतिक लाभ का पद भी नहीं मिलेगा (भारत का संविधान, दसवीं अनुसूची, 1985)।

सुझाव ये है कि दल-बदल करने पर अयोग्य होने वालों पर दंड का प्रावधान, भारी जुर्माना और साथ में उनको मिलने वाली पेंशन भी रद्द कर दी जाना चाहिए। अगला कोई भी उपचुनाव नहीं लड़े।

दल-बदल विरोधी कानून की आलोचना का एक आधार यह भी है कि यह उस स्थिति पर बात नहीं करता है जब किसी सदस्य को राजनीतिक दल उनके व्यवहार के आधार पर अपनी पार्टी से निष्कासित कर देता है। पार्टी से निष्कासित होने के बाद भी वह सदन का सदस्य बना रहता है और सदन में पार्टी के व्हिप से बँधा हुआ रहता है। इस मामले को सुप्रीम कोर्ट ने जी. विश्वनाथन बनाम टी.एन. विधानसभा अध्यक्ष 1996 में स्पष्ट किया (जी विश्वनाथन बनाम तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष, 1996) और ये फैसला अमर सिंह बनाम भारत संघ 2011 (अमर सिंह बनाम भारत संघ, 2017), विनोद कुमार बनाम दिल्ली विधानसभा अध्यक्ष 2014 में भी बरकरार रखा गया है (द इकोनॉमिक्स टाइम्स, नवम्बर 10, 2014)। इसलिये जरूरी है कि इस मुद्दे को भी समझते हुए इसको दसवीं अनुसूची में स्पष्ट किया जाना चाहिए क्योंकि यह मुद्दा कहीं न कहीं पार्टी की तानाशाही भी दिखाता है कि अगर प्रतिनिधि किसी बात से असहमत होते हैं, पार्टी के खिलाफ अपनी बातों को रखते हैं तो उन्हें सीधे निष्कासित कर दिया जाएगा।

इसकी आलोचना का एक आधार यह भी है कि यह जनप्रतिनिधियों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाता है। अनुच्छेद 105 और 194 के तहत दिये गये विशेषाधिकारों का उल्लंघन करता है। चूंकि इस कानून को लाने का उद्देश्य सरकार की स्थिरता को बनाए रखना था ताकि नीतियाँ सुचारू रूप से लागू हो सकें, सरकार को मजबूती

मिले, निर्वाचित प्रतिनिधियों में नैतिकता हो, स्वस्थ लोकतन्त्र की स्थापना हो। लेकिन सवाल उठता है कि इस तरह सरकार का स्थायित्व जरूरी है या लोकतन्त्र में अभिव्यक्ति की आजादी का प्राकृतिक अधिकार का कोई महत्व है? क्या वह जिस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व कर रहा है और हित पार्टी लाइन के विरुद्ध जा रहा है तो प्रतिनिधि ऐसी स्थिति में क्या करे। इसलिये जरूरी है कि दल-बदल के आधार पर अयोग्यता और ऐसे मामलों के बीच अन्तर स्पष्ट हो। इस पर विचार किया जाना चाहिए। कुछ इस तरह के प्रावधान हों कि दोनों मुद्दों के बीच एक सन्तुलन बन सके।

इसमें यह भी जोड़ा जाना चाहिए कि अगर कोई भ्रष्टाचार में लिप्त पाया जाता है तो वह भी अयोग्य होगा। जिनका अपराध सिद्ध हो जाता है और सजा पा लेते हैं उनको भी यहाँ इस कानून के तहत अयोग्य घोषित करने के लिए प्रावधान जोड़ा जाना चाहिए।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि दल-बदल विरोधी कानून की आवश्यकता वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त प्रासंगिक है क्योंकि इससे राजनीतिक स्थिरता और जनादेश की रक्षा होती है। दल-बदल से राजनीतिक दलों की विश्वसनीयता और लोकतान्त्रिक मूल्यों को चोट पहुँचती है, जिससे शासन में अस्थिरता उत्पन्न होती है। ऐसे कानून से विधायकों को अनुशासन में रखा जा सकता है और जनता के मत का अपमान रोका जा सकता है। हालाँकि, वर्तमान दल-बदल विरोधी कानून में कुछ कमियाँ भी हैं। यह कानून कभी-कभी विधायकों की स्वतन्त्र निर्णय क्षमता को सीमित करता है और राजनीतिक दलों के अन्दरूनी लोकतन्त्र को प्रभावित कर सकता है। इसके अलावा कानून के दुरुपयोग की सम्भावना भी रहती है जिससे राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और वैधानिक विवाद बढ़ सकते हैं। इसलिये दल-बदल विरोधी कानून को और अधिक स्पष्ट, न्यायसंगत और निष्पक्ष बनाना आवश्यक है ताकि यह लोकतन्त्र की रक्षा करते हुए विधायकों के अधिकारों का भी सम्मान कर सके। समग्र रूप से इस कानून की प्रासंगिकता और आवश्यकता बनी रहेगी लेकिन इसे समय-समय पर सुधार कर वास्तविक लोकतान्त्रिक हितों की पूर्ति करनी होगी।

सन्दर्भ

अमर सिंह बनाम भारत संघ (2017, 17 अप्रैल). सर्वोच्च न्यायालय, भारत, प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://www.casemine.com/judgement/in/5a65cba84a93263320776d97.

अरुणाचल प्रदेश स्विचरू : कांग्रेस ने मुख्यमन्त्री पेमा खांडू को खोया (2016, 17 सितम्बर). एनडीटीवी, प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://www.ndtv.com/india-news/congress-government-in-arunachal-pradesh-in-trouble-again-after-lawmakers-leave-party-1459483.

भटनागर, जी.के. (2008). *भारतीय राजनीति का संक्षिप्त इतिहास*, नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

भारत का संविधान (1985). दसवीं अनुसूची.

दस्तूर, ए.जे. (1960). 'भारतीय समाजवाद के पच्चीस वर्ष', *इंडियन क्वार्टरली*, 16(2), 105-119.

दिवान, परास (1979). 'आया राम गया राम : दलबदल की राजनीति', *इंडियन लॉ इंस्टिट्यूट जर्नल*, 21(3), 291-312.

भारत सरकार, गृह मन्त्रालय। (1969). वार्षिक प्रतिवेदन 1968-1969। प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://www.mha.gov.in/sites/default/files/REPORT_1968_69_12022021.pdf.

हसन, जोया (2018). *भारत में लोकतन्त्र और उत्तरदायित्व का संकट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

इंडियन एक्सप्रेस (2020, 21 मार्च). फ्लोर टेस्ट से पहले कमलनाथ ने दिया इस्तीफा, प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://indianexpress.com.

काश्यप, सुभाष (1991). *हमारी संसद*, नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास.

केशम मेघचन्द्र सिंह बनाम स्पीकर, मणिपुर विधानसभा (2020). SCC Online SC 55.

मल्होत्रा, जी.सी. (2005). *भारत एवं कॉमनवेल्थ में दलबदल कानून*, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली.

एनडीटीवी राजस्थान (2023, 23 नवम्बर). राजस्थान में पहली बार राष्ट्रपति शासन लागू। प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://rajasthan.ndtv.in/rajasthan-news/president-rule-was-imposed-for-the-first-time-in-rajasthan-on-13-march-1967-due-to-no-party-getting-majority-in-the-assembly-4598391.

स्क्रोल.इन (2022, 30 जून). उद्धव ठाकरे ने मुख्यमन्त्री पद से इस्तीफा दिया, प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://scroll.in.

द हिन्दू (2019, 23 जुलाई). कर्नाटक में गठबन्धन सरकार गिरी। प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://www.thehindu.com.

द हिन्दू (2022, 15 सितम्बर). गोवा में कांग्रेस संकट.

जी. विश्वनाथन बनाम तमिलनाडु विधानसभा अध्यक्ष (1996, 24 जनवरी). सर्वोच्च न्यायालय, भारत.

विनोद कुमार बिन्नी बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय याचिका वापसी। (2014, 10 नवम्बर). द इकोनॉमिक टाइम्स, प्राप्त किया गया 20 नवम्बर 2025 को, से : https://economictimes.indiatimes.com.

चव्हाण समिति रिपोर्ट (1969).

दैनिक भास्कर (द.क.). तेलंगाना स्पीकर मामले पर सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणी, प्राप्त किया गया 25 नवम्बर 2025 को, से : https://dainik.bhaskar.com.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 94-106)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थी स्वीकार्यता

अभिषेक वर्मा*

ऑनलाइन शिक्षा इन्टरनेट की सहायता से आभासी माध्यम में शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य कक्षागत अन्तःक्रिया को परिभाषित करती है। प्रारम्भ में ऑनलाइन शिक्षा में आने वाली समस्याओं का समाधान वर्तमान में सभी शिक्षक एवं विद्यार्थी कर सकने में सक्षम होते जा रहे है। लेकिन क्या विद्यार्थी प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा व्यवस्था को स्वीकार कर रहे है या करना चाहते है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए ही इस शोधपत्र का निर्माण किया गया है। ऑनलाइन शिक्षा के प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता प्रतिमान के आयामों को ऑनलाइन शिक्षा के आधार पर निरूपित करते हुए एक ऑनलाइन शिक्षा स्वीकार्यता मापनी का निर्माण कर प्रतिदर्श के रूप में प्रयागराज जिले के आठ विद्यालयों के कुल 290 बच्चों का चयन किया गया तथा प्रदत्त विश्लेषण हेतु मात्रात्मक शोध विधि के अन्तर्गत बहुरेखीय प्रतिगमन विधि का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणाम से निष्कर्ष निकलता है कि प्रौद्योगिकी को बारम्बार उपयोग करने वाले अनुभवी विद्यार्थियों के लिए ऑनलाइन शिक्षा प्रायः उपयोग में सरल एवं सहज है। अतः कहा जा सकता है कि ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों में प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता सार्थक रूप से बढ़ी है।

मुख्य शब्द : ऑनलाइन शिक्षा, स्वीकार्यता प्रतिमान, प्रयास प्रत्याशा, प्रदर्शन प्रत्याशा।

---

*शोधार्थी, महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail: say2abhishek1996@gmail.com

प्रस्तावना

प्राय: ऑनलाइन शिक्षा इन्टरनेट की सहायता से आभासी माध्यम में शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य होने वाली कक्षागत अन्त:क्रिया को परिभाषित करती है (प्रियदर्शनी, 2020)। इस परिभाषा की सार्थकता दूरस्थ शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था के लिए उपयुक्त है, परन्तु अचानक आये परिवर्तित शैक्षिक प्रतिमान ने इसकी उपयुक्तता एवं आनुभविक स्थिति दोनों को ही अलग रूप से स्थापित करने का कार्य किया है (एहब एवं नासेर, 2022), क्योंकि वर्तमान में ऑनलाइन शिक्षा एक संगठित स्वरूप के साथ प्रस्तुत की जाने वाली व्यवस्था बन चुकी है। कोविड-19 महामारी के दो वर्षों बाद यदि ऑनलाइन शिक्षा पर संज्ञान ले तो हम पाएँगे कि प्रारम्भ में ऑनलाइन शिक्षा के साथ आने वाली समस्याओं का लगभग समाधान वर्तमान में सभी शिक्षक एवं विद्यार्थी कर सकने में सक्षम होते जा रहे हैं जो ऑनलाइन शिक्षा को परम्परागत शिक्षा का एक अंग बनाता है। यदि हम ऑनलाइन शिक्षा को विद्यालयीन शिक्षा में जोड़ दें तो ऑनलाइन शिक्षा का विद्यालय में निवेश प्रारम्भ में खर्चीला एवं अनावश्यक प्रतीत हो सकता है, लेकिन अगर इसके दूरगामी परिणामों की ओर ध्यान दिया जाए तो पाएँगे कि ऑनलाइन अधिगम आगामी भविष्य में विद्यालयों के लिए लागत प्रभावशीलता का प्रतिनिधित्व कर सकता है क्योंकि ऑनलाइन अधिगम एवं शिक्षण के लिए वृहद् भौतिक प्रांगण, अनावश्यक कार्मिकों एवं संसाधनों की आवश्यकता नहीं होती है (मागाल्हेस, 2020), केवल सम्भावित रूप से बढ़े हुए शिक्षार्थियों के नामांकन को समायोजित करने की आवश्यकता ही होगी। इन सभी शैक्षिक कक्षाओं को इंटरनेट कनेक्शन की सुविधा वाले किसी भी स्थान पर संचालित किया जा सकता है। ऑनलाइन अधिगम द्वारा शिक्षार्थियों तक विषय विशेषज्ञों की पहुँच आसानी से सम्भव हो सकेगी जिससे वे विषयवस्तु को प्रभावी ढँग से समझ सकते हैं एवं विषय से सम्बन्धित सामग्री को प्रिंट मीडिया के अतिरिक्त ऑनलाइन ऑडियो-वीडियो एवं डेटाबेस के रूप में भी संगृहीत कर सकते हैं। इसकी उपलब्धता से शिक्षार्थियों को पुन: अभ्यास के अवसर प्राप्त होते रहेंगे (अगुइलेरा, 2020)। इन सभी विशेषताओं को आयामित करें तो हम पाएँगे कि ये विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षा अपनाने में अपना योगदान दे सकती है।

प्रौद्योगिकी की स्वीकृति और उपयोग का सिद्धान्त प्रतिमान

प्रौद्योगिकी की स्वीकृति और उपयोग का सिद्धान्त एक प्रौद्योगिक स्वीकार्यता प्रतिमान है जो मनुष्य द्वारा किसी प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए उसके व्यवहार में आये परिवर्तन का अध्ययन करता है। इसके लिए वेंकटेश एवं अन्य (2003) द्वारा तात्कालिक प्रचलित कुल 10 प्रौद्योगिकी आधारित प्रतिमानों (इनोवेशन ऑफ डिफ्यूजन थ्योरी, सोशल कॉग्निटिव थ्योरी, थ्योरी ऑफ रीजंड एक्शन, थ्योरी ऑफ प्लान्ड बिहेवियर, टेक्नोलॉजी एक्सेप्टेंस मॉडल, मॉडल ऑफ पीसी युटिलाइजेशन, मोटिवेशनल मॉडल, डी-कम्पोज्ड थ्योरी ऑफ प्लान्ड बिहेवियर, टेक्नोलॉजी एक्सेप्टेंस मॉडल 2, टेक्नोलॉजी एक्सेप्टेंस मॉडल 3)

को केन्द्र में रखकर गहन विश्लेषण करते हुए एक एकीकृत प्रतिमान का प्रतिपादन किया। जो साभिप्राय व्यवहार एवं उपभोगित व्यवहार पर आधारित था। इसमें प्रयास प्रत्याशा, प्रदर्शन प्रत्याशा, सामाजिक प्रभाव एवं सुविधाजनक स्थिति चर (स्वतन्त्र) निर्धारक चर के रूप में लिंग, आयु, अनुभव, जागरूकता एवं स्वैच्छिकता चर मध्यस्थ चर के रूप में तथा साभिप्राय व्यवहार तथा उपभोगित व्यवहार को (आश्रित) अन्तर्जात चर के रूप में स्थापित किया हैं, जिसका वर्णन अधोलिखित है -

प्रदर्शन प्रत्याशा

प्रदर्शन प्रत्याशा को उस डिग्री के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके लिए उपयोगकर्ता को विश्वास है कि इस प्रौद्योगिकी (सिस्टम) का उपयोग करने से उसे व्यावसायिक (नौकरी) प्रदर्शन में लाभ प्राप्त करने में सहायता मिलेगी (वेंकटेश एवं अन्य, 2003)। ऑनलाइन शिक्षा में प्रदर्शन प्रत्याशा एवं नवीन प्रौद्योगिकी (सिस्टम) के प्रति साभिप्राय उपयोग या वास्तविक उपयोग के मध्य सम्बन्ध निम्न प्रश्नों को सृजित करती है -

प्रयास प्रत्याशा

प्रयास प्रत्याशा 'एक प्रणाली के उपयोग से सम्बन्धित आसानी' का प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात् प्रयास प्रत्याशा किसी व्यक्ति विशेष द्वारा उपयोग की जाने वाली प्रौद्योगिकी (सिस्टम) की सुगमता को बताता है। ऑनलाइन शिक्षण में प्रयास प्रत्याशा को इन्हीं अवधारणाओं के रूप में समझा जा सकता है कि क्या ऑनलाइन माध्यम में शिक्षण शिक्षक के उपयोग के सन्दर्भ अपेक्षित विचार पर निर्भर करता है?

सामाजिक प्रभाव

सामाजिक प्रभाव उस डिग्री का प्रतिनिधित्व करता है जिसके आधार पर व्यक्ति विशेष किसी वर्ग या समूह का अनुसरण करते हुए नवचारित प्रौद्योगिकी को अपने कार्यों में उपयोग करने के पक्ष में चिन्तन करते हैं (वेंकटेश एवं अन्य, 2003)। सामाजिक प्रभाव, नवीन प्रौद्योगिकी (सिस्टम) को उपयोग करने के साभिप्राय व्यवहार का अन्तिम प्रत्यक्ष निर्धारक हैं।

सुविधा की स्थिति

यू.टी.ए.यू.टी. प्रतिमान में सुविधा की स्थिति उस डिग्री का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ एक व्यक्ति का यह मानना होता है कि एक संगठनात्मक एवं बुनियादी प्रौद्योगिकी ढाँचा नवीन प्रौद्योगिकी (प्रणाली) के उपयोग का समर्थन करने के लिए उपस्थित हैं (वेंकेटश एवं अन्य, 2003)। ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में भी शिक्षार्थी को इन्टरनेट कनेक्टिविटी, शिक्षणशास्त्रीय प्रतिमान आधारित समस्या, प्रतिपुष्टि आधरित समस्या, प्रौद्योगिकी सह-

सामग्री उपलब्धता एवं अन्य प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिसका प्रभाव उसके ऑनलाइन शिक्षण के समय उपभोगित व्यवहार पर पड़ता है।

मध्यस्थ चर

उपर्युक्त सिद्ध निर्धारकों के अतिरिक्त वेंकटेश एवं अन्य (2003) द्वारा चार मध्यस्थ चरों क्रमशः लिंग, आयु, अनुभव एवं स्वैच्छिकता को भी इस प्रतिमान में एकीकृत किया है। मध्यस्थ चर लिंग एवं अनुभव/जागरूकता निर्धारक चर प्रयास प्रत्याशा, प्रदर्शन प्रत्याशा, सामाजिक प्रभाव को मध्यस्थ चर आयु निर्धारक चर प्रयास प्रत्याशा, प्रदर्शन प्रत्याशा, सामाजिक प्रभाव एवं सुविधाजनक स्थिति को तथा मध्यस्थ चर स्वैच्छिकता निर्धारक चर सुविधाजनक स्थिति को प्रभावित करती है (चित्र 1)।

आश्रित चर - साभिप्राय व्यवहार एवं वास्तविक व्यवहार

साभिप्राय व्यवहार किसी प्रौद्योगिकी (प्रणाली) के उपयोग के साभिप्राय या उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करती है एवं वास्तविक व्यवहार प्रौद्योगिकी (प्रणाली) के प्रत्यक्ष उपयोग का प्रतिनिधित्व करता है। नवचारित प्रौद्योगिकी (प्रणाली) के उपयोग की इच्छा या उद्देश्य समयानुरूप परिवर्तनशील होता है लेकिन वास्तविक व्यवहार उपयोग का प्रत्यक्ष रूप होता है (मागाल्हेस, 2020)।

चित्र 1
प्रौद्योगिकी की स्वीकृति एवं उपयोग का एकीकृत सिद्धान्त

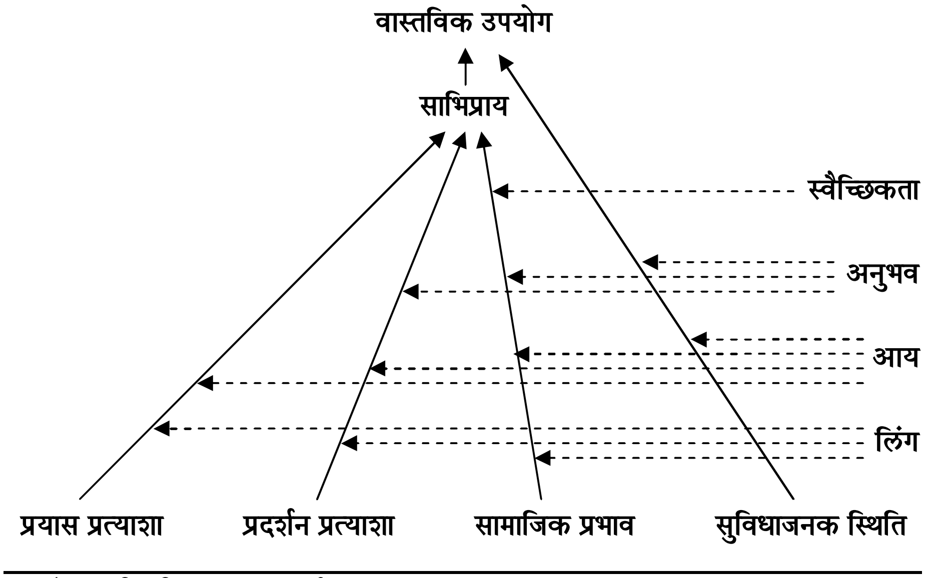

शोध उद्देश्य

विद्यालय में ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थी स्वीकार्यता का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

शून्य परिकल्पना $(H_0)_1$ - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रदर्शन प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।

शून्य परिकल्पना $(H_0)_2$ - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रयास प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से नहीं प्रभावित करती है।

शून्य परिकल्पना $(H_0)_3$ - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा के सामाजिक कारक विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।

शून्य परिकल्पना $(H_0)_4$ - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की सुविधाजनक स्थिति विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से नहीं प्रभावित करती है।

शून्य परिकल्पना $(H_0)_5$ - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा का साभिप्राय व्यवहार विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है।

शोध विधि

प्रस्तुत शोध कार्य में मात्रात्मक शोध उपागम के अन्तर्गत विवरणात्मक शोध विधि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन की कार्य प्रणाली एवं प्रदत्त संकलन

प्रस्तुत शोध अध्ययन मात्रात्मक शोध उपागम के विवरणात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। प्रदत्तों के एकत्रीकरण हेतु सर्वेक्षण शोध विधि का उपयोग किया है जिसे गूगल फॉर्म और प्रत्यक्ष मापनी की सहायता से एकत्रित किया गया है।

जनसंख्या एवं न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु केन्द्रित जनसंख्या के रूप में उन विद्यार्थियों को रखा गया है जो ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं या करने का प्रयास कर रहे हैं। इस आधार पर सुविधाजनक प्रतिदर्श विधि का उपयोग करते हुए (इलाहाबाद) प्रयागराज जिले के आठ विद्यालयों के कक्षा 8, 9, 10 के विद्यार्थियों को चयनित किया है (तालिका 1)।

तालिका 1
जनसंख्या एवं न्यादर्श

क्र.सं.	कक्षा	कुल संख्या	पूर्ण मापनी	अपूर्ण मापनी
1	8	125	105	20
2	9	100	85	15
3	10	130	100	30
	कुल	355	290	65

शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधार्थी द्वारा तीन बिन्दु आधारित स्वनिर्मित विद्यार्थी प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी का निर्माण किया गया जो यूनिफाइड थ्योरी ऑफ एक्सेप्टेंस एंड यूज ऑफ टेक्नोलॉजी प्रतिमान के अनुरूप है इसके प्रथम प्रारूप में कुल 78 कथनों को रखा गया था। विश्वसनीयता एवं वैधता निर्धारित करने के पश्चात् अन्तरिम रूप से इसमें कुल 30 कथनों को स्थान दिया गया है। जिसका वर्णन अधोलिखित है।

तालिका 2
स्वनिर्मित शिक्षक स्वीकार्यता मापनी के अन्तिम प्रारूप में कथनों का विवरण

क्र.सं.	आयाम	कथनों की स्थिति	कुल कथन
1	प्रदर्शन प्रत्याशा	1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8	8
2	प्रयास प्रत्याशा	9, 10, 11, 12, 13	5
3	सामाजिक प्रभाव	14, 15, 16, 17, 18	5
4	सुविधा की स्थिति	19, 20, 21, 22, 23	5
5	साभिप्राय व्यवहार	24, 25, 26, 27	4
6	उपभोगित व्यवहार	28, 29, 30	3

शोध उपकरण की विश्वनीयता एवं वैधता

शोधार्थी द्वारा एसपीएसएस सॉफ्टवेयर की सहायता से कॉर्नबैक अल्फा प्रविधि को अपनाते हुए स्वनिर्मित शिक्षक स्वीकार्यता मापनी की विश्वसनीयता की गणना की गयी है। जिसका विवरण अधोलिखित है -

तालिका 3
विश्वसनीयता सांख्यिकी (कॉर्नबैक अल्फा)

मापनी	कॉर्नबैक अल्फा	मानकीकृत एकांश पर आधारित कॉर्नबैक अल्फा	कुल एकांश	मानक विश्वसनीयता
स्वनिर्मित प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी	0.708	0.750	30	0.65

स्वनिर्मित विद्यार्थी प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी के कॉर्नबैक अल्फा विश्वसनीयता गुणांक का मान क्रमश: 0.750 प्राप्त हुआ है जो कॉर्नबैक अल्फा के मानक विश्वसनीयता

गुणांक 0.65 से अधिक है। अत: शोध हेतु प्रयुक्त स्वनिर्मित शिक्षक स्वीकार्यता मापनी का विश्वसनीयता स्तर निम्न उत्कृष्ट माना जा सकता है। वहीं प्रस्तुत उपकरण को विषयवस्तु वैधता, रचनात्मक वैधता एवं रूप वैधता के रूप में विशेषज्ञों से आँकलित कराया गया है।

आकड़ों का विश्लेषण

प्रस्तुत शोध उद्देश्य की प्रतिपूर्ति हेतु शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित शिक्षक स्वीकार्यता मापनी को मुख्यत: दो भागों में विभाजित किया गया था। प्रथम भाग में ऑनलाइन शिक्षा में भाग लेने वाले विद्यार्थियों का सामान्य परिचय, जैसे - नाम, कक्षा, लिंग, विद्यालय, उपलब्ध डिवाइस; तथा दूसरे भाग में प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी के 30 कथनों को रखा गया है -

1. प्रदाताओं के लिंग एवं आयु का विवरण

तालिका 4 में प्रदाताओं का आयु एवं लिंग सम्बन्धी विवरण प्रस्तुत किया गया है जिसके अनुसार लगभग 36 प्रतिशत (105), 29 प्रतिशत (85), 35 प्रतिशत (100), क्रमश: कक्षा 8, 9, 10 के प्रदाताओं ने इस शोध कार्य में प्रतिभाग किया। वहीं लिंग के अनुसार लगभग 62 प्रतिशत (179) पुरुष प्रदाता तथा 38 प्रतिशत (111) स्त्री प्रदाताओं ने इस शोध कार्य में प्रतिभाग किया।

तालिका 4

लिंग एवं आयु का विवरण

क्र.सं.	लिंग	कक्षा-8	कक्षा-9	कक्षा-10	कुल
1	पुरुष	72	55	52	179
2	स्त्री	33	30	48	111
	कुल संख्या	105	85	100	290

2. विद्यार्थियों के पास उपलब्ध डिवाइस

तालिका 5 विद्यार्थियों द्वारा ऑनलाइन शिक्षा लेने के लिए प्रयोग किये जाने वाले डिवाइसों का वर्णन करता है। इसके अनुसार लगभग 64 प्रतिशत विद्यार्थी स्मार्टफोन, लगभग 23 प्रतिशत विद्यार्थी लैपटॉप एवं लगभग 10 प्रतिशत विद्यार्थी ऑनलाइन शिक्षा लेने के लिए टैब का प्रयोग करते हैं।

तालिका 5

डिवाइसों की उपलब्धता

क्र.सं.	डिवाइस	प्रदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	स्मार्टफोन	185	64.00
2	लैपटॉप	68	23.00
3	टैब	30	10.00
4	सभी	07	3.00

3. प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी का विश्लेषण

तालिका 6 में प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता मापनी के सभी आयामों का माध्य एवं मानक विचलन प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 6
विवरणात्मक सांख्यिकीय सम्प्रत्यय

सम्प्रत्यय	कुल प्रदत्त (N)	निम्नतम मान	उच्चतम मान	माध्य	मानक विचलन
प्रदर्शन प्रत्याशा	290	10	24	18.96	2.049
प्रयास प्रत्याशा		5	15	9.90	2.317
सुविधाजनक स्थिति		7	15	12.25	1.112
सामाजिक कारक		5	15	13.06	1.169
साभिप्राय व्यवहार		5	12	7.97	1.602
उपभोगित व्यवहार		3	9	7.40	1.061

शोध उद्देश्य की सभी परिकल्पनाओं का परिकलन करने हेतु शोधार्थी द्वारा बहुरेखीय प्रतिगमन प्रविधि का उपयोग किया गया है।

प्रथम तीन शून्य परिकल्पनाओं का वर्णन तालिका 7 के अन्तर्गत किया जा रहा है -

तालिका 7
R^2 (मॉडल फिट)

प्रतिमान सारांश				
प्रतिमान	R	R^2	एडजेस्टड R^2	अनुमानित मानक त्रुटि
1	.906[a]	.740	.756	1.464

[a]प्रीडिक्टर : (सम्प्रत्यय) प्रदर्शन प्रत्याशा, प्रयास प्रत्याशा एवं सामाजिक कारक R का मान-स्वतन्त्र चर एवं आश्रित चर के मध्य सह सम्बन्ध गुणांक को प्रदर्शित करता है।
R^2 का मान आश्रित चर (साभिप्राय व्यवहार) को प्रभावित करने में स्वतन्त्र चर (प्रदर्शन प्रत्याशा, प्रयास प्रत्याशा एवं सामाजिक कारक) के योगदान के प्रतिशत को दर्शाता है।
एडजेस्टड R^2 का मान स्वतन्त्र चरों के कुल प्रसरण के प्रतिशत को दर्शाता है।

तालिका 7 के अनुसार विद्यार्थियों का ऑनलाइन शिक्षा के प्रति साभिप्राय व्यवहार को प्रदर्शन प्रत्याशा, प्रयास प्रत्याशा एवं सामाजिक कारक प्रभावित करने में 74 प्रतिशत योगदान देते है एवं एडजेस्टड R^2 के मान के अनुसार इन तीनों स्वतन्त्र चरों का कुल प्रसरण 75.6 प्रतिशत है जो ऑनलाइन शिक्षा की स्वीकार्यता में इन चरों की भागीदारी को प्रदर्शित करता है।

तालिका 8
एनोवा मान

एनोवा						
प्रतिमान		वर्गो का योग	Df	माध्य वर्ग	F	सार्थकता स्तर
1	प्रतिगमन	122.787	3	40.929	21.984	.000[b]
	रिजिड्यूल	374.208	286	1.862		
	कुल	496.995	289			

a. आश्रित चर - साभिप्राय व्यवहार

b. प्रीडिक्टर (सम्प्रत्यय) प्रदर्शन प्रत्याशा, प्रयास प्रत्याशा एवं सामाजिक कारक

एनोवा तालिका 8 यह प्रदर्शित करती है कि $F(3, 286) = 21.984$, $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है। अत: ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में विद्यार्थी के आश्रित चरों पर पड़ने वाले स्वतन्त्र चरों के प्रभावों को सफलतापूर्वक पूर्वकथित करने में सक्षम है।

गुणांक तालिका 9 आश्रित चर के पूर्वकथन में प्रत्येक स्वतन्त्र चर का व्यक्तिगत योगदान दर्शाती है।

तालिका 9
गुणांक

गुणांक						
प्रतिमान		अमानकीकृत गुणांक		मानकीकृत गुणांक	T	सार्थकता स्तर
		B	मानक त्रुटि	बीटा		
1	सम्प्रत्यय	2.414	.985		2.450	.015
	प्रदर्शन प्रत्याशा	-.009	.044	-.013	-.207	.836
	प्रयास प्रत्याशा	.259	.043	.396	5.994	.000
	सामाजिक प्रभाव	.172	.059	.195	2.932	.004

आश्रित चर : साभिप्राय व्यवहार

इस प्रकार गुणांक तालिका 9 प्रदर्शन प्रत्याशा साभिप्राय व्यवहार (इरादतन व्यवहार) के पूर्वकथन में सार्थक योगदान को दर्शा रही है, बीटा का मान -0.009 (लगभग नगण्य) मान यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में प्रदर्शन प्रत्याशा में वृद्धि होने पर साभिप्राय व्यवहार में अत्यन्त निम्न स्तर की कमी आती है। अत: शून्य परिकल्पना 1 - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रदर्शन प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है, स्वीकृत होती है। इसलिये शोध परिकल्पना ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रदर्शन प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है, अस्वीकृति होती है। लैंडड्रम (2020) तथा ओपोकू (2020) द्वारा पूर्व में किये गये शोध कार्य

इसका समर्थन करते हैं। वहीं आदित्य एवं अन्य (2018) द्वारा किया गया शोधकार्य इसका विरोध करता हैं। उनके अनुसार प्रदर्शन प्रत्याशा साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। प्रौद्योगिक स्वीकृति की तत्परता उपयोगकर्ता के सामाजिक वातावरण एवं सामाजिक समूह की प्रभावकारिता पर निर्भर करती है।

प्रयास प्रत्याशा साभिप्राय व्यवहार (इरादतन व्यवहार) के पूर्वकथन में सार्थक योगदान को दर्शा रही है, क्योंकि प्रयास प्रत्याशा हेतु मानकीकृत बीटा का संगत टी मान = 5.994, $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: शून्य परिकल्पना 2 - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रयास प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है, अस्वीकृत होती है। इसलिये शोध परिकल्पना ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की प्रयास प्रत्याशा विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है, स्वीकृत होती है। बीटा का मान 0.259 यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में विद्यार्थियों की प्रयास प्रत्याशा में वृद्धि होने पर उनके साभिप्राय व्यवहार में भी वृद्धि होती है।

इसी प्रकार सामाजिक प्रभाव साभिप्राय व्यवहार (इरादतन व्यवहार) के पूर्वकथन में सार्थक योगदान को दर्शा रही है, क्योंकि सामाजिक प्रभाव हेतु मानकीकृत बीटा का संगत टी मान = 2.932, $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: शोध उद्देश्य की शून्य परिकल्पना 3 - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा के सामाजिक कारक विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है, अस्वीकृत होती है। इसलिये शोध परिकल्पना ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा के सामाजिक कारक विद्यार्थियों के साभिप्राय व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है, स्वीकृति होती है। बीटा का मान 0.172 मान यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में सामाजिक प्रभाव में वृद्धि होने पर साभिप्राय व्यवहार में भी वृद्धि होती है। राडोवन एवं अन्य (2017), लैंडड्रम (2020) तथा आदित्य एवं अन्य (2018) इस दोनों शोध परिणामों का समर्थन करते हैं। उद्देश्य की अन्तिम 2 शून्य परिकल्पनाओं (4, 5) का वर्णन तालिका 10 के अन्तर्गत किया गया है।

तालिका 10

R^2 (मॉडल फिट)

प्रतिमान सारांश				
प्रतिमान	R	R^2	एडजेस्टड R^2	अनुमानित मानक त्रुटि
1	.453[a]	.225	.237	1.398

a. प्रीडिक्टर (सम्प्रत्यय)

R का मान-स्वतन्त्र चर एवं आश्रित चर के मध्य सह सम्बन्ध गुणांक को प्रदर्शित करता है।

R^2 का मान आश्रित चर (वास्तविक व्यवहार) को प्रभावित करने में स्वतन्त्र चर (साभिप्राय व्यवहार एवं सुविधाजनक स्थिति) का योगदान के प्रतिशत को दर्शाता है।

एडजेस्टड R^2 का मान स्वतन्त्र चरों के कुल प्रसरण के प्रतिशत को दर्शाता है।

तालिका 10 के अनुसार विद्यार्थियों का ऑनलाइन शिक्षा के प्रति वास्तविक व्यवहार को साभिप्राय व्यवहार एवं सुविधाजनक स्थिति कारक प्रभावित करने में लगभग 22.5 प्रतिशत योगदान देते है एवं एडजेस्टड R^2 के मान के अनुसार इन दोनों स्वतन्त्र चरों का कुल प्रसरण 23.7 प्रतिशत है जो ऑनलाइन शिक्षा की स्वीकार्यता में इन चरों की भागीदारी को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त लगभग 2 प्रतिशत अन्य कारण भी ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों की प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता को प्रभावित करता है।

तालिका 11
एनोवा मान

एनोवा						
प्रतिमान		वर्गों का योग	Df	माध्य वर्ग	F	सार्थकता स्तर
1	प्रतिगमन	102.064	2	51.032	26.102	.000[b]
	रिजिड्यूल	394.931	287	1.955		
	कुल	496.995	289			

a. आश्रित चर - वास्तविक व्यवहार
b. प्रीडिक्टर (सम्प्रत्यय) साभिप्राय व्यवहार एवं सुविधाजनक स्थिति

एनोवा तालिका 11 यह प्रदर्शित करती है कि $F(2, 202) = 26.102$, $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है। अत: ऑनलाइन शिक्षा के सन्दर्भ में विद्यार्थी के आश्रित चरों (वास्तविक व्यवहार) पर पड़ने वाले स्वतन्त्र चरों (साभिप्राय व्यवहार एवं सुविधाजनक स्थिति) के प्रभावों को सफलता पूर्वक पूर्वकथित करने में सक्षम है।

तालिका 12
गुणांक

गुणांक						
प्रतिमान		अमानकीकृत गुणांक		मानकीकृत गुणांक	T	सार्थकता स्तर
		B	मानक त्रुटि	बीटा		
1	सम्प्रत्यय	1.313	.851		1.542	.125
	सुविधाजनक स्थिति	.287	.056	.326	5.127	.000
	साभिप्राय व्यवहार	.254	.060	.267	4.206	.000

आश्रित चर : उपभोगित व्यवहार

गुणांक तालिका 12 आश्रित चर के पूर्वकथन में प्रत्येक स्वतन्त्र चर का व्यक्तिगत योगदान दर्शाती है तालिका सुविधाजनक स्थिति उपभोगित व्यवहार के पूर्वकथन में सार्थक योगदान को दर्शा रही है, क्योंकि सुविधाजनक स्थिति हेतु मानकीकृत बीटा का संगत टी मान 5.127 $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: शून्य परिकल्पना 4 - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा की सुविधाजनक स्थिति विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से नहीं प्रभावित करती है, अस्वीकृत होती है। इसलिये शोध परिकल्पना ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की

ऑनलाइन शिक्षा की सुविधाजनक स्थिति विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप सें प्रभावित करती है, स्वीकृति होती है। बीटा का मान 0.326 यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षण के सन्दर्भ में सुविधाजनक स्थिति में वृद्धि होने पर साभिप्राय व्यवहार में भी वृद्धि होती है।

इसी प्रकार साभिप्राय व्यवहार हेतु मानकीकृत बीटा का संगत टी मान 4.206 $p = 0.000 < 0.05$ सार्थकता के 0.05 स्तर पर सार्थक है अत: उद्देश्य की शून्य परिकल्पना 5 - ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा का साभिप्राय व्यवहार विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित नहीं करती है, अस्वीकृत होती है। इसलिये शोध परिकल्पना ऑनलाइन शिक्षा के पूर्वकथन में विद्यार्थियों की ऑनलाइन शिक्षा का साभिप्राय व्यवहार विद्यार्थियों के उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। बीटा का मान 0.267 यह दर्शाता है कि ऑनलाइन शिक्षा के प्रति साभिप्राय व्यवहार में वृद्धि होने पर वास्तविक व्यवहार में भी वृद्धि होती है। अहमद एवं कबीर (2018), दानाजी एवं अन्य (2019), लैंडड्रम (2020) तथा ओपोकू एवं अन्य (2020) द्वारा पूर्व में किये गये शोधकार्य इसका समर्थन करते हैं। वहीं किम-सून, एवं अन्य (2020), तथा हंडोको (2020) द्वारा किया गया शोध कार्य इस शोध परिणाम के पक्ष में नहीं है। इनके अनुसार यह अनिवार्य नहीं हैं कि सुविधाजनक स्थिति हमेशा उपभोगित व्यवहार को सार्थक रूप से प्रभावित करे। यदि शिक्षकों को उचित जागरूकता एवं प्रशिक्षण प्राप्त होता हैं तो उससे ऑनलाइन शिक्षण के प्रति उपभोगित व्यवहार में सुधार हो सकता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत प्रतिमान से प्राप्त परिणाम से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रौद्योगिकी को बारम्बार उपयोग करने वाले अनुभवी विद्यार्थियों के लिए ऑनलाइन शिक्षा प्राय: उपयोग में सरल, सहज एवं मानसिक सहयोग में सहायक है। इसके अतिरिक्त कोविड के दौरान एवं उसके बाद प्रशासन एवं सरकार द्वारा चलाए जा रहे ऑनलाइन शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रम सभी विद्यार्थियों को बाह्य प्रेरणा भी प्रदान करती हैं जो नये विद्यार्थियों को ऑनलाइन शिक्षा के लिए प्रेरित करती है। निरन्तर ली गयी ऑनलाइन कक्षा से विद्यार्थियों ने यह भी अनुभव किया कि वे इन कक्षाओं को सामान्य कक्षाओं की ही भाँति स्वीकार करने लगें यदि शिक्षक सही तरीके से कक्षा के अधिगम उद्देश्य पूर्ण करें। यह आँकड़ों के रूप में तो कम दिखाई पड़ता है परन्तु ऑनलाइन शिक्षा के क्षेत्र यह उपलब्धि भी बहुत अधिक मानी जा सकती है (बोरा, 2024)। वहीं दूसरे चर के परिणाम ने यह सन्दर्भित किया है कि ऑनलाइन शिक्षा लेते समय विद्यार्थियों को नवीन प्रौद्योगिकी को अपनाने और संचालन में असुविधा, नेटवर्क कनेक्टिविटी, पोर्टल की अनभिज्ञता, कन्टेंट की अधिकता, आदि अन्य समस्याएँ भी आयीं जिसे निरन्तर ऑनलाइन कक्षा की अभ्यस्तता और अनुभव से कम करने का प्रयास किया जा रहा है जिससे विद्यार्थियों के आत्मपरक मानक में सुधार हो रहा है। इस प्रकार यह कह सकते हैं कि ऑनलाइन शिक्षा के प्रति विद्यार्थियों में प्रौद्योगिकी स्वीकार्यता सार्थक रूप से बढ़ी है।

सन्दर्भ

अगुइलेरा-हेर्मिदा, पी.ए. (2020). 'कॉलेज स्टूडेंट्स यूज एंड एक्सेप्टेंशन ऑफ इमरजेंसी ऑनलाइन लर्निंग ड्यू टू कोविड-19'. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च ओपन.*

अहमद, एस. एम. एवं कबीर ए. (2018). 'द एक्सेप्टेंस ऑफ स्मार्टफोन एज ए मोबाइल लर्निंग टूल : स्टूडेंट्स ऑफ बिजनेस स्टडीज इन बांग्लादेश', *मलेशियन ऑनलाइन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी,* 6(2). https://doi.org/10.17220/mojet.2018.04.003

आदित्य बी.आर. एवं पर्मडी, ए. (2018). 'इम्प्लीमेंटेशन ऑफ यूटीएयूटी मॉडल टू अंडरस्टैंड द यूज ऑफ वर्चुअल क्लासरूम प्रिंसिपल इन हायर एजुकेशन', *जर्नल ऑफ फिजिक्स कांफ्रेंस सीरीज.* https://ui.adsabs.harvard.edu/abs/2018JPhCS.978a2006A

एहब, टी. एवं नासेर, यू. (2022). 'हाई स्कूल साइंस टीचर्स एक्सेप्टेंस ऑफ यूजिंग डिस्टेंस एजुकेशन इन द लाइट ऑफ यूटीएयूटी', *यूरेशिया जर्नल ऑफ मैथमेटिक्स,* साइंस एंड टेक्नोलॉजी एजुकेशन. 18.

ओपोकू, डी., पोबी, एफ., एवं ओक्योरेह, आर. (2020). 'डिटरमीनेन्ट्स ऑफ ई-लर्निंग सिस्टम एडॉप्टेशन अमोंग घानियन यूनिवर्सिटी लेक्चर्स : एन एप्लीकेशन ऑफ इनफार्मेशन सिस्टम सक्सेज एंड टेक्नोलॉजी एक्सेप्टेंस मॉडल', *अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज एंड ह्यूमिनिटिज,* 5, 151-168.

किम-सून, एन.जी., अहमद, ए.आर., सिरिसा, एन.एम.एक्स., फन, टी. एवं ह्यूम, टी. (2016). 'बिहेवियरल फैक्टर्स अफेक्टिंग इंटेंशन टू यूज ई-लर्निंग में ई-लर्निंग'. *एडवांस साइंस लेटर्स,* 22, 1853-1864.

दानाजी, ए.ए., आयूब, ए.एफ.एम. एवं खाम्बरी, एम.एन.एम. (2019). 'द इफेक्ट्स ऑफ परसीव्ड यूजफुलनेस, कान्फर्मेशन एंड सेटिस्फेक्शन ऑन कान्टीन्युअस इंटेंशन इन यूजिंग मैसिव ओपन ऑनलाइन कोर्स (एम.ओ.ओ.सी.)'. *नॉलेज मैनेजमेंट एंड ई-लर्निंग,* 11(2), 201-214. https://doi.org/10.34105/j.kmel.2019.11.010

प्रियदर्शनी एच.डी.सी., एवं जेसुया, डी. (2021). 'टीचर्स परसेप्शन ऑन ऑनलाइन टीचिंग मेथेड ड्यूरिंग कोविड-19 : विद रेफ्रेन्स टू स्कूल लेवल टीचर्स एट फैकल्टी ऑफ एजुकेशन, द ओपन यूनिवर्सिटी ऑफ श्रीलंका', *शंलाक्स इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एजुकेशन,* 9(2), 132-140.

मागाल्हेस, पी., फेरेरा, डी., कन्हा, जे., एवं रोसारियो, पी. (2020). 'ऑनलाइन वर्सेस ट्रेडिशनल होमवर्क : ए सिस्टेमेटिक रिव्यू ऑन द बेनेफिट्स टू स्टूडेंट्स परफॉर्मेन्स', *कम्प्यूटर एंड एजुकेशन,* 152.

यूनेस्को आई.ई.एस.ए.एल.सी. (2020). 'कोविड-19 एंड हायर एजुकेशन : टुडे एंड टुमॉरो', *इम्पैक्ट एनेलिसिस, पॉलिसी रिस्पोंसेस एंड रिकमेन्डेशन.*

गाडोवन, एम. एवं क्रिस्टल, एन. (2017). 'एक्सेप्टेंस ऑफ टेक्नोलॉजी एंड इट्स इम्पैक्ट इन टीचर्स एक्टिविटीज इन वर्चुअल क्लासरूम : इंटिग्रेटिंग यूटीएयूटी एंड सीओआई इन टू ए कम्बाइंड मॉडल'. *द टर्किश ऑनलाइन जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी,* 16(3), 11-22.

लैंडड्रम, बी., (2020). 'एक्जामिंग स्टूडेंट्स कॉन्फिडेंस टू लर्न ऑनलाइन, सेल्फ-रेग्यूलेशन स्किल एंड परसेप्शन्स ऑफ सेटिसफेक्शन एंड यूजफुलनेस ऑफ ऑनलाइन क्लासेज'. *ऑनलाइन जर्नल,* 24.

वेंकटेश, वी., स्पीयर, सी. एवं मोरिस, एम.जी. (2003), 'यूजर एक्सेप्टेंस एनाब्लेर्स एन इंडिविजुअल डिसिजन मेकिंग अबाउट टेक्नोलॉजी : टुवर्ड्स एन इंटीग्रेटेड मॉडल', *डिसिजन साइंसेज,* 33(2), 297-316.

हंडोको, बी. (2020). एप्लीकेशन ऑफ यूटीएयूटी थ्योरी इन हायर एजुकेशन ऑनलाइन लर्निंग. https://doi.org/10.1111/j.1540-5915. 2002.tb01646.x

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 107-116)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

भारतीय ज्ञान परम्परा की सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता : पंच प्रण के सन्दर्भ में

ईश शक्ति सिंह* एवं अजयकुमार सिंह†

भारतीय ज्ञान प्रणालियों में ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन शामिल है जिसका मूल उद्देश्य पर्यावरण के अंश मनुष्य में अनुकूलता स्थापित करने के साथ समाज का कल्याण और प्रगति हो। किन्तु बाह्य आक्रमण और औपनिवेशिक प्रभाव ने भारतीय ज्ञान परम्परा एवं समाज को सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त किया। परन्तु भारतीय ज्ञान परम्परा अपनी जड़ों से इतनी मजबूत रही कि उनका प्रभाव ज्यादा नहीं पड़ा। भारतीय ज्ञान, संस्कृति और परम्पराओं में वह सामर्थ्य है, जिससे भारत अकेले नहीं पूरे विश्व को शान्ति पथ पर ला सकता है। आज हमारे सामने कई समस्याएँ है जिनका समाधान भारत के प्राचीन ज्ञान और विज्ञान में है। भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति जन-जागृति एवं सामाजिक महत्व बताने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ लम्बे अरसे से करती आ रही है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 'पंच प्रण संकल्प अपना' एवं 'पंच परिवर्तन से राष्ट्र निर्माण' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से पंच प्रण प्रतिज्ञा समाज में ले जा रहा है। आज

*सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय, कटनी
E-mail: ishshaktisingh@gmail.com
†सहायक आचार्य, तुलनात्मक धर्म एवं सभ्यता विभाग, जम्मू केन्द्रीय विश्वविद्यालय, जम्मू
E-mail: dksingh83@cujammu.ac.in

जरूरत है अध्यात्म को विज्ञान से, परमार्थ को व्यवहार से, परम्परा को आधुनिकता से जोड़ते हुए वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक जीवन समाज में समरसता के लिए एकता के सूत्र खोजने की।

मुख्य शब्द : भारतीय ज्ञान परम्परा, सामाजिक उपादेयता, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, पंच प्रण, योजनात्मक प्रयास।

परिचय

भारतीय सभ्यता का प्रमाण बहुत पुराना है। इसकी प्रामाणिकता वेद, पुराण, उपनिषद् इत्यादि अनेक अन्य महत्वपूर्ण प्राचीन पुस्तकें देती हैं। मानव अपनी जीवनशैली में प्रयुक्त तमाम विधियों, गूढ़ ज्ञान को अपनी पीढ़ियों को बताता और सिखाता चला आ रहा है। इसके अतिरिक्त इन विधियों को लेखन माध्यम से भी सुरक्षित किया जाता रहा है। इन्हीं दोनों के संयुक्त संयोजन के साथ प्राचीन सभ्यता से लेकर आज तक जो कार्यविधियाँ चलती चली आ रही हैं, उसे ही ज्ञान परम्परा कहते हैं। यह ज्ञान परम्परा हमें विभिन्न क्षेत्रों को लेकर मार्गदर्शन का कार्य करती है। भारत के सन्दर्भ में इस ज्ञान परम्परा को भारतीय ज्ञान परम्परा के नाम से जानते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में भारतवर्ष की ज्ञान परम्परा समृद्ध रही है। यह चाहे चिकित्सा, योग, मनोविज्ञान, सुरक्षा, प्रबन्धन, शिक्षा, सामाजिक संरचना एवं व्यवस्था, लोक कल्याण, खान-पान, राजनीति इत्यादि किसी भी क्षेत्र में हो, वैज्ञानिक तार्किकता पर आधारित रही है। आज की अपेक्षा हमारी प्राचीन सभ्यता भौतिक रूप से उतनी ज्यादा तकनीकी समृद्ध तो नहीं रही थी किन्तु सभी क्षेत्रों में जो ज्ञान परम्पराएँ विकसित हुई थीं वो उस समय भी और आज भी वैज्ञानिक रूप से तार्किक हैं। इसकी पुष्टि आज सम्पूर्ण विश्व की सभ्यताएँ करती हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल उद्देश्य पर्यावरण - जिसका अंश मनुष्य है - में अनुकूलता स्थापित करने के साथ समाज का कल्याण और प्रगति हो, के आशय से सम्बन्धित रहा है।

भारतीय ज्ञान प्रणालियों में ज्ञान, विज्ञान और जीवन दर्शन शामिल हैं जो अनुभव, अवलोकन, प्रयोग और कठोर विश्लेषण से विकसित हुए हैं। मान्य करने और व्यवहार में लाने की इस परम्परा ने हमारी शिक्षा, कला, प्रशासन, कानून, न्याय, स्वास्थ्य, विनिर्माण और वाणिज्य को प्रभावित किया। भारतीय ज्ञान परम्परा जो वैदिक एवं उपनिषद् काल में थी, वह बौद्ध और जैन काल में भी रही। भारतीय ज्ञान परम्परा ने विचार और अनुभव के विभिन्न साहित्यिक सिद्धान्त, राजनीति, अर्थशास्त्र, योग पद्धति, तर्कशास्त्र, धातु विज्ञान, कृषि, सैन्य विज्ञान, जहाज निर्माण, खनन, एवं रत्न विज्ञान इत्यादि में अपने आप को विकसित किया था। प्राचीन काल से ही हमारा देश उच्च मानवीय मूल्यों एवं विशिष्ट वैज्ञानिक परम्पराओं का देश रहा है। भारत की संस्कृति रही है कि भारत ने दुनिया को अलग-अलग देश के रूप में माना ही नहीं है। इस देश का विचार सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का रहा है। भारत देश का इतिहास और समाज जितना पुराना है उतनी ही पुरानी समृद्ध ज्ञान परम्परा रही है (शर्मा, 2023)।

इस देश पर बाह्य ताकतों ने यहाँ के समाज और ज्ञान परम्परा को काफी क्षतिग्रस्त किया है। भारतीय ज्ञान परम्परा एवं भारतीय समाज को सबसे ज्यादा क्षतिग्रस्त ब्रिटिश औपनिवेश ने किया। भारत की ज्ञान परम्परा एक समृद्धशाली ज्ञान परम्परा थी। विदेशी ताकतों ने हमेशा से ही हमारी ज्ञान परम्परा को दबाकर रखने की कोशिश की। हमारे विज्ञान एवं सेवाभाव को हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश की गई, जिसके कारण हमने अपनी समृद्ध ज्ञान परम्परा को बहुत हद तक खो दिया है। आज फिर से हमें अपनी ज्ञान परम्परा और सामाजिक व्यवस्था को समझने और अपने तरीके से परिभाषित करने की जरूरत है। अपनी ज्ञान परम्परा, सामाजिक व्यवस्था और जीवनशैली को बाजारवाद से बचाने की जरूरत है। हमें पश्चिमी सभ्यताओं और विदेशी ज्ञान-विज्ञान को दरकिनार कर अपनी परम्पराओं और मान्यताओं का पुनरुत्थान करते हुए भारतीयता में पूरी तरह रमना होगा (राय, 2022)।

भारतीय ज्ञान और परम्परा

भारत के मूल ज्ञान को भारतीय ज्ञान कहा जाता है और इस ज्ञान को वहन करने का माध्यम परम्परा है। भारत के मूल ज्ञान से तात्पर्य वेद, पुराण, उपनिषद् एवं दर्शन से है। भारतीय ज्ञान का विकास वाचिक परम्परा से हुआ है। कथा, कहानी, लोकोक्ति, गान, भजन, कविता या अन्य मौखिक (अलिखित) साधनों द्वारा सांस्कृतिक तत्वों और परम्परा का संचार वाचिक परम्परा कहलाती है। इस परम्परा के जरिये हमारे पूर्वज ज्ञान का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संचार करते आये हैं। श्रुति की रक्षा भी इसी परम्परा से हुई है। श्रुति का शाब्दिक अर्थ है सुना हुआ, यानि ईश्वर की वाणी जो प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा सुनी गई थी और शिष्यों के द्वारा सुनकर जगत् में फैलाई गई थी। इसकी दिव्यता के कारण इन्हें धर्म का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। श्रुति, हिन्दू धर्म के सर्वोच्च और सर्वोपरि धर्मग्रन्थों का समूह है। श्रुति में चार वेद आते हैं - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और वेदो के सूक्त। हर वेद के चार भाग होते हैं - संहिता, ब्राह्मण-ग्रन्थ, आरण्यक और उपनिषद् (शुक्ल, 2021)।

भारत में ज्ञान का विकास संवाद परम्परा के माध्यम से हुआ। जब हम विश्व की इस सबसे अनूठी और अनुकरणीय संस्कृति को देखते हैं तो पाते हैं कि इसका विकास तो संवाद के आधार पर ही हुआ है। हमारी परम्परा में संवाद है। यह संवाद ही तो है जो समाज को दिशा देता है। हमारे ग्रन्थ क्या हैं? संवाद से उपजा दर्शन। एक ने प्रश्न पूछे और दूसरे ने उनके उत्तर दिए और एक दर्शन की उत्पत्ति हो गई। अर्जुन ने प्रश्न पूछे, श्रीकृष्ण ने उत्तर दिए - तब गीता का माहात्म्य हमें प्राप्त हुआ। यक्ष ने प्रश्न पूछे, धर्मराज ने उत्तर दिए - हमें जीवन का सार प्राप्त हुआ। जिन्हें हम संचार क्षेत्र का अधिष्ठाता मानते हैं, ऐसे देवर्षि नारद ने जब महाराज युधिष्ठिर से सवाल किये, तो युधिष्ठिर के जवाबों से हमें 'सुशासन के सूत्र' प्राप्त होते हैं। जब बालक नचिकेता यमराज से प्रश्न पूछता है, तब हमें 'जीवन और मृत्यु' का रहस्य पता चलता है (सिंह, 2021)। संवाद की यह परम्परा निरन्तर चलती आ रही है और नये ज्ञान का प्रतिपादन होता चला जा रहा है। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो जाने से पूर्व भारतीय ज्ञान एवं

दर्शन का अध्ययन किया, साथ ही भारत को गहराई से समझने के लिए भारत भ्रमण भी किया। शिकागो विश्व धर्म महासभा विश्व भर के धर्मों एवं पूर्वी और पश्चिमी आध्यात्मिक परम्पराओं के प्रतिनिधियों की पहली औपचारिक सभा थी और स्वामी विवेकानन्द इस सभा में भारत का प्रतिनिधित्व करके भारतीय अध्यात्म एवं पश्चिमी विज्ञान के बीच सेतु का कार्य करते हैं (कपूर, 2005)।

भारतीय ज्ञान परम्परा की सामाजिक-सांस्कृतिक उपादेयता

भारतीय ज्ञान परम्परा हजारों वर्ष पुरानी है। इस ज्ञान परम्परा में आधुनिक विज्ञान प्रबन्धन सहित सभी क्षेत्रों के लिए अद्‌भुत खजाना है। हर विषय को पश्चिम की नजर से प्रस्तुत कर हमने प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा का अपमान किया है। हम भारतीय अपनी परम्परा, संस्कृति, ज्ञान और महान् विभूतियों को तब तक महत्व नहीं देते, जब तक विदेशों में उसे स्वीकार नहीं किया जाए। योग, आयुर्वेद, शाकाहार, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, होम्योपैथी और सिद्धा जैसे उपचार लोकप्रियता पा रहे हैं, जबकि हम उन्हें बिसरा चुके हैं। पाश्चात्य संस्कृति में पले-बसे लोग भारत आकर संस्कार और मन्त्रोच्चारण के साथ विवाह के बन्धन में बँधना पसन्द कर रहे हैं और हमें अपने ही संस्कार दकियानूसी लगते हैं। हमारे देश में प्रत्येक राज्य की अपनी भाषा है। भाषाओं की विभिन्नता के समावेश के बावजूद भी अंग्रेजी को बोलचाल का माध्यम बनाया जाता है। हम सब अपने-अपने स्कूल के दिनों में पाइथागोरस प्रमेय से परिचित होते रहे हैं, लेकिन यह जानना दिलचस्प होगा कि पाइथागोरस से कई सौ साल पहले भारत में इसका प्रयोग किया जाने लगा था। भारत में जब ऋग्वेद की रचना होने लगी तो अलग-अलग यज्ञ के लिए यज्ञवेदी बनने की बात हुई। यह निश्चित किया गया कि किस यज्ञ के लिए, किस क्षेत्रफल और आकार-प्रकार की यज्ञवेदी बनाई जाएगी। समाज की इस आवश्यकता को पूरी करने के लिए गणित का उपयोग किया गया और रेखागणित उत्पन्न हुआ। पाइथागोरस जिस गणित को दुनिया के सामने लेकर आये, उससे कई सौ साल पहले बौधायन ने शुल्ब-सूत्र में इसकी विस्तार से चर्चा कर दी थी। भारतीय ज्ञान परम्परा में केवल बौधायन ही नहीं रहे, बल्कि कात्यायन भी हुए। ऐसे तमाम गणितज्ञ भारत में हुए हैं, जिन्होंने सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर गणित की रचना की (महादेवन, 2022; झा, 2023; ममता, 2017)।

भारतीय ज्ञान विज्ञान की सनातन परम्परा अनादिकाल से है। वह तक्षशिला हो, नालन्दा हो या विक्रमशिला विश्वविद्यालय सभी ज्ञान केन्द्रों में यह परम्परा जुड़ी रही है, इसलिये वैदिक काल से ही भारत की ज्ञान परम्परा उच्च स्तरीय रही है। शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण को विकसित करने की जरूरत है। भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा, कला, संस्कृति, दर्शन, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, विज्ञान और प्रबन्धन समेत विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक दृष्टिकोण देती है। मौजूदा शिक्षण पद्धति में पश्चिम पक्षीय झुकाव ज्यादा है। ऐसे में शिक्षण पद्धति में भारतीय दृष्टिकोण के विकास के लिए गैर सरकारी व स्वायत्त प्रयासों को बढ़ावा

देना, बदलते वैश्विक परिवेश में समय की जरूरत बन चुकी है। भारतीय ज्ञान, संस्कृति और परम्पराओं में ही वह सामर्थ्य है, जिससे भारत अकेले नहीं पूरे विश्व को शान्ति के पथ पर ला सकता है। आज हमारे सामने कई समस्याएँ हैं जिनका समाधान भारत के प्राचीन ज्ञान और विज्ञान में है। आज आवश्यकता है अध्यात्म को विज्ञान से, परमार्थ को व्यवहार से, परम्परा को आधुनिकता से जोड़ते हुए वैयक्तिक, सामाजिक एवं वैश्विक जीवन समाज में समरसता के लिए एकता के सूत्र खोजने की।

भारतीय ज्ञान परम्परा का सामाजिक महत्व

भारतीय ज्ञान परम्परा और देशज ज्ञान परम्परा इस राष्ट्र की अमूल्य धरोहर हैं, जिनको विभिन्न समाज और अनगिनत पीढ़ियों द्वारा सँजोकर आगे बढ़ाया गया है। क्षेत्रीय जीवनशैली अथवा पद्धति के ज्ञान, विश्वासों और परम्पराओं का एक तन्त्र जिसका उद्देश्य समय के साथ अपनी संस्कृति और परिदृश्य के साथ स्वदेशी सम्बन्धों को संरक्षित, संवाद और प्रासंगिक बनाना देशज ज्ञान परम्परा है। वहीं भारतीय ज्ञान परम्परा में विभिन्न क्षेत्रीय जीवन पद्धति के संयुक्त ज्ञान, विज्ञान और जीवन-दर्शन शामिल हैं जो अनुभव, अवलोकन, प्रयोग और कठोर विश्लेषण से विकसित हुए हैं (शर्मा, 2023; झा, 2023)।

भारतीय ज्ञान परम्परा तार्किकता और वैज्ञानिक प्रामाणिकता पर आधारित वह पद्धति है जो समाज केन्द्रित है। स्वस्थ समाज सुचारू, संगठित, सम्बल, आत्मनिर्भर और सहयोग के रूप में चलायमान बना रहे इसके लिए हमारे पूर्वजों ने सामाजिक उपादेयता के अनुरूप विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान और कार्य की पद्धतियों को विकसित किया। समाज को संगठित बनाए रखने के लिए समावेशी आर्थिक-सांस्कृतिक परिवेश का निर्माण किया। उन समभाव आर्थिक कार्य पद्धतियों को विकसित किया जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग की निर्भरता एक दूसरे पर बनी रहे। समाज में सहयोग की भावना सदैव जाग्रत रहे इसके लिए 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की वृहद् अवधारणा के परिवेश का विकास किया। भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति जन-जागृति एवं सामाजिक महत्व बताने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ लम्बे अरसे से करता आ रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विचार और उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता अभियान चलाना है जिसे दूसरे अर्थों में भारतीय ज्ञान परम्परा के रूप में समझ सकते हैं। इसके आलोक में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 'पंच प्रण संकल्प अपना' एवं 'पंच परिवर्तन से राष्ट्र निर्माण' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से पंच प्रण प्रतिज्ञा समाज में ले जा रहा है।

1. सामाजिक समरसता का व्यवहार

अपने कार्यक्षेत्र में जितने प्रकार का समाज रहता है उन सभी में अपने मित्र और मित्र कुटुम्ब होने चाहिए। मन्दिर, पानी, शमशान सबका एक होना चाहिए। समाज में व्याप्त भेदभाव की दृष्टि जड़ से समाप्त करना होगा। इसे कोई सरकार, संगठन नहीं अपितु समाज ही समाप्त

कर सकता है। भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल मन्त्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' है। सारा विश्व हमारा परिवार है जिसमें समरसता का भाव है।

2. पर्यावरण सुरक्षा

पर्यावरण के बारे में हम सभी को प्रयास करना है। जल संरक्षण, प्लास्टिक से मुक्ति, हरियाली संरक्षण, अपना घर हरित घर बनाएँ। हरियाली ही हमारा जीवन है और हरियाली में ही हमारा जीवन रचता-बसता है इसलिए पर्यावरण के बारे में चिन्तन करना चाहिए, जैसा कि हमारे वेदों में पर्यावरण की बात की गई है। पर्यावरण पर हमारे भारतीय ज्ञान परम्परा में वृहद् चिन्तन और सृजन देखने को प्राप्त होता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में वृक्षों को देवतुल्य माना गया है और सर्वत्र पूजा की जाती है। भारतीय ज्ञान परम्परा में 10 पुत्रों के समान एक पीपल के वृक्ष की तुलना की गई है। पर्यावरण चिन्तन हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

3. स्व आधारित विचार व व्यवहार

स्व आधारित सारा विचार और व्यवहार हो। स्व आधारित जीवन की कल्पना में उपभोग के लिए जीवन मात्र नहीं है, समृद्धि चाहिए भोग-विलास नहीं चाहिए। इसलिए जब हम लक्ष्मी देवी की स्तुति करते हैं तो नीतियुक्त लक्ष्मी की कल्पना करते हैं। स्व का भाव स्वाभिमान से जुड़ा है जो मनुष्य के आत्मबल को समृद्ध करता है। स्व का भाव हमारे पौराणिक साहित्यों में भी प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण में युद्ध समाप्ति के पश्चात् विश्राम हेतु श्रीराम, विभीषण एवं लक्ष्मण के मध्य संवाद होता है। जहाँ विभीषण और लक्ष्मण, श्रीराम को जीती हुई स्वर्ण लंका में विश्राम करने के लिए आग्रह करते हैं जिसके उत्तर में श्रीराम कहते हैं कि 'अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते। जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी।।' अर्थात्, 'हे लक्ष्मण! यद्यपि यह लंका सोने की है, फिर भी इसमें मेरी कोई रुचि नहीं है क्योंकि जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् होती है'। यह स्व का भाव और स्वदेशी का भाव तब से चलता चला आ रहा है। देश, समाज में आत्मगौरव जाग्रत रहे इसलिए भारतीय ज्ञान परम्परा में स्व का भाव देखने के लिए मिलता है। हम जो हैं, हमारा जो है, हमने जो भी अर्जित किया है, हम उसी में सन्तुष्ट और गौरवान्वित हैं। हमारा दूसरे के किए गए संग्रह और अर्जन से कोई प्रयोजन नहीं है। स्व का भाव चरित्र का उत्थान कर मानव, समाज और राष्ट्र सभी के स्वाभिमान को बल प्रदान करता है।

4. कुटुम्ब प्रबोधन

अपना परिवार संयुक्त परिवार हुआ करता था। आज इसमें कमी आ गई है। संयुक्त परिवार की सुन्दरता थी कि उसमें दादा, दादी, चाचा, चाची, बुआ सब मिलकर रहते थे। परिवार में सदस्यों का महत्व सबसे बड़ा होता था। परिवार के सदस्यों के सम्मान और समर्पण

में बड़े से बड़ा त्यागभाव देखने को मिलता था। आज कुटुम्ब में सामूहिक पंगत, सामूहिक भोजन और सामूहिक भजन का अभाव हो रहा है। कुटुम्ब में सदस्यों के बीच संकोची व्यवहार, समय का अभाव, साथ खाने-बाँटने और बैठने की कमी हो गई है। आज के बदलते समय में परिवार और इसके सदस्यों के बीच कुटुम्ब का महत्व जाग्रत करना और प्रबोधन करना अति आवश्यक हो गया है। कुटुम्ब इस समाज की धुरी है, आधार है। इसे स्वस्थ और चलायमान बनाए रखना है तो कुटुम्ब प्रबोधन आवश्यक है। भारतीय ज्ञान परम्परा में कुटुम्ब का बड़ा महत्व रहा है। एक कुटुम्ब के सभी सदस्य साथ मिलकर भोजन करें, अपने बच्चों के बीच बैठें, संवाद करें, संघर्ष मिटाएँ, मिलकर समाधान निकालें। इस प्रकार का कुटुम्ब व्यवहार भारतीय ज्ञान परम्परा में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता आया है। आज कुटुम्ब के वास्तविक व्यवहार पर संकट घिरता जा रहा है जिसके लिए संघ कुटुम्ब प्रबोधन की बात करता है।

5. नागरिक कर्तव्य

भारत एक लोकतान्त्रिक राष्ट्र है। एक लोकतान्त्रिक राष्ट्र में नागरिक के अधिकारों के साथ ही उसके नागरिक कर्तव्य भी होते हैं। एक नागरिक को राष्ट्र और समाज दोनों के लिए अपने कर्तव्यों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। अनौपचारिक रूप से समाज अपने प्रत्येक नागरिक सदस्य से कर्तव्य की अपेक्षा रखता है और औपचारिक रूप से राष्ट्र विधान के माध्यम से अपने नागरिकों से जिम्मेदारीपूर्वक कर्तव्यों के वहन की अपेक्षा करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में अनेकों ऐसे साक्ष्य प्राप्त होते हैं जो स्पष्ट करते हैं कि एक नागरिक के लिए अधिकार से पहले कर्तव्य का निर्वहन जरूरी है। नागरिक के तौर पर राजा हो या रंक सभी के लिए अपने कर्तव्यों के पालन करने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा में सम्बन्ध, दायित्व, भूमिका, कार्य, व्यवहार, सहयोग, गीत इत्यादि के आधार पर समाज और राष्ट्र को पीढ़ी दर पीढ़ी नागरिक कर्तव्य के पालन की सीख दी जाती रही है।

भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में योजनात्मक प्रयास

भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति भारत सरकार भी सक्रिय है। इससे सम्बन्धित तमाम अकादमिक, शैक्षणिक रूप से कार्यक्रम संस्थानों में होते रहते हैं। सरकारी संस्थानों सहित निजी संस्थानों में भारतीय ज्ञान परम्परा को जानने समझने के लिए सेमिनार, कार्यशालाएँ और लेखन संग्रह तैयार किए जा रहे हैं। सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से भी एक साथ दो लक्ष्यों को साध रही है; उदाहरण के तौर पर 'भारत को जानो' और 'पीएम विश्वकर्मा योजना' ऐसी योजनाएँ हैं जो रोजगार को प्रोत्साहित करने से लेकर पारम्परिक कारीगरी और शिल्पकारी को सुरक्षित और संरक्षित करना चाहती हैं। इसके प्रति नजरिया है कि भारत की सांस्कृतिक परम्परा धीरे-धीरे कम हो रही है और यह एक कार्पोरेट क्षेत्र की ओर जाती दिख रही है। इसलिए इससे प्रत्येक नागरिक जुड़ा रहे और परम्परागत कारीगर और शिल्पकार इस

कार्य और परम्परा को आगे चलाते रहें। इसके लिए भारत सरकार ने 'विश्वकर्मा योजना' के तहत 18 पारम्परिक शिल्प शामिल किये हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा को सुरक्षित एवं संवर्धित करने के लिए तत्कालीन सरकार ने ग्रामीण क्षेत्र के इन परम्परागत कार्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी एक जंजीर की तरह चलते रहें, इसके लिए महत्वाकांक्षी योजना प्रस्तुत की है। इस योजना के माध्यम से सामाजिक संरचना के सामर्थ्य को जीवित करना भी एक बेहतर प्रयास माना जा सकता है। इस योजना के तहत लोहार, कुम्हार, सुनार, धोबी, दर्जी, मूर्तिकार, मोची, राजमिस्त्री, ताला बनाने वाले, नाव बनाने वाले, नाई, माला बनाने वाले, इत्यादि सभी कार्य की एक ज्ञान परम्परा रही है (दास, 2023)। इसके साथ ही ये सभी सामाजिक संरचना को गतिमान बनाए रखने के पहिये भी हैं। इन्हें सुरक्षित और संवर्धित करने का प्रयास, भारतीय ज्ञान परम्परा को संजोने के प्रयास के रूप में देखा जा सकता है।

प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने 15 अगस्त 2022 को भारत के लोगों से विकसित राष्ट्र के लिए 'पंच प्रण' लेने का आह्वान किया और वर्ष 2047, भारत की स्वतन्त्रता के 100वें वर्ष तक स्वतन्त्रता सेनानियों के सपनों को पूरा करने का लक्ष्य रखा। प्रधानमन्त्री ने 75वें स्वतन्त्रता दिवस पर लाल किले की प्राचीर से राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए उन पाँच प्रतिज्ञाओं के बारे में बात की जिन पर देश को अगले 25 वर्षों तक ध्यान देने की आवश्यकता है। आने वाले 25 साल के लिए उन पंच प्रण पर अपनी शक्ति को केन्द्रित करना होगा। पहला प्रण लक्ष्य, जो विकसित भारत के बड़े संकल्प और संकल्प के साथ आगे बढ़ना है। इस प्रण लक्ष्य में देश को विकसित करने वाले उन सभी बड़े संकल्पों को पूर्ण करने का प्रयास करना है। दूसरा प्रण लक्ष्य, दासता के सभी निशान मिटाना है। भले ही हम अपने अन्दर या अपने आस-पास दासता की छोटी-छोटी चीजें देखें, हमें इससे छुटकारा पाना होगा। तीसरा प्रण लक्ष्य, हमें अपनी विरासत पर गर्व होना चाहिए। चौथा प्रण लक्ष्य, एकता और एकजुटता। पाँचवा प्रण लक्ष्य, नागरिकों का कर्तव्य (शंकर, 2022)।

यह समझना जरूरी है कि भारत राष्ट्र के विकसित होने के लिए उन सभी पक्षों को सुदृढ़ और सशक्त करना होगा जो शिक्षा, सुरक्षा, तकनीक, विज्ञान इत्यादि सहित सम्प्रभुता और सांस्कृतिक विरासत के महत्वपूर्ण अंग होते है। सांस्कृतिक विरासत, भारतीय ज्ञान परम्परा का सम्मुचय है। भारत राष्ट्र के विकसित होने की दिशा में भारतीय सांस्कृतिक विरासत से जुड़े पहलुओं पर विचार करना और उसे सुदृढ़ करना आवश्यक होता है। भारत की पहचान और आधार रही भारतीय ज्ञान परम्परा के विकास का प्रयास भारत राष्ट्र के विकसित होने का रास्ता स्पष्ट करेगा। भारत राष्ट्र को विकसित करने से तात्पर्य भारतीय ज्ञान परम्परा के सुदृढ़ और उसे आधुनिक दौर में अपनाये जाने से है। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा मानव और समाज विकास के मामले में परिपक्व और वैज्ञानिक रूप से तार्किक रही है। इसके उत्थान से भारत राष्ट्र को विकसित करने के मार्ग पर सफलता प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

भारतीय सभ्यता का प्रमाण जब से प्राप्त होता है उसके पूर्व से भारतीय ज्ञान की परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती चली आ रही है। भारत भूमि के लोगों की जीवनशैली में वही ज्ञान परम्परा शामिल है जिसे भारतीय ज्ञान परम्परा कहते हैं। मानव जीवन के सभी पहलुओं पर हमारे पूर्वजों द्वारा विचार विमर्श कर उनके पर्यावरण के अनुकूल जिस ज्ञान का निर्माण किया गया वह आज पुरातन ज्ञान परम्परा बन गई है। जो वैज्ञानिक दृष्टिकोणों पर खरी उतरती है। भारतीय ज्ञान परम्परा तार्किक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। मानव जीवन के लिए उपयोगी समस्त परिवेश शिक्षा, स्वास्थ्य, खान-पान, परिधान, आवास, आचरण-व्यवहार, सामाजिक सम्बन्ध, भाषा, योग, गणित, ज्योतिष, पूजा पद्धति, वाणिज्य, व्यापार, राजनीति, चिकित्सा, सुरक्षा, यात्रा, इत्यादि इन सभी पहलुओं पर हमारे पूर्वजों ने गहन अध्ययन और अनुभव के उपरान्त तार्किक रूप से इन सभी को वेदों में सुरक्षित भी रखा। 'वेदों की ओर लौटो' का नारा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने दिया। उन्होंने वेदों की श्रेष्ठता को माना और उन वेदों में वर्णित उस ज्ञान को सर्वश्रेष्ठ माना जो भारतीय ज्ञान परम्परा को दर्शाता है। हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा की संस्कृति का निर्माण देशज ज्ञान परम्परा के समुच्चय रूप में स्थानीय भौगोलिक परिवेश के अनुकूल किया गया। भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रारम्भिक दौर से अब तक की यात्रा में मानव जीवन के विभिन्न पक्षों में बाह्य संस्कृतियों के तत्व शामिल होते गए। बाह्य संस्कृतियों के प्रभाव से हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा के अंश लोप हो रहे हैं। इन्हीं के परिणामस्वरूप आज तमाम विसंगतियाँ देखीं और महसूस की जा रही हैं। आज हमारी जीवनशैली में हमें भारतीय ज्ञान परम्परा को अपनाने की आवश्यकता है, जिसके संरक्षण के प्रयास विभिन्न क्षेत्रों में लगातार किये जा रहे हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के प्रति जन-जागृति एवं सामाजिक महत्व बताने का कार्य राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ लम्बे अरसे से करता आ रहा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विचार और उद्देश्य भारतीय सांस्कृतिक विरासत के प्रति जागरूकता अभियान चलाना है। इसके आलोक में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 'पंच प्रण संकल्प अपना' एवं 'पंच परिवर्तन से राष्ट्र निर्माण' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से पंच प्रण प्रतिज्ञा समाज में ले जा रहा है। भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में भारत सरकार ने भी नागरिकों के समक्ष पंच प्रण लेने का आह्वान और योजनात्मक रूप से प्रयास कर रही है।

सन्दर्भ

दास, एस.सी.एल. (2023). *पीएम विश्वकर्मा योजना : कारीगरों का सशक्तीकरण.*

झा, ए. (2023). *ट्रेडिशनल नॉलेज सिस्टम इन इंडिया,* दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि.

कपूर, के. एवं सिंह, ए.के. (सम्पा.) (2005). *इंडियन नॉलेज सिस्टम्स* (खंड 1). नई दिल्ली : डी.के. प्रिंटवर्ल्ड लिमिटेड.

ममता (2017). 'भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति एवं मारीशस में हिन्दी कविता', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एकेडमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट,* 2(3), 340-342. https://allstudiesjournal.com/assets/archives/2017/vol2issue3/2-4-199-694.pdf

महादेवन, बी., भट्ट, वी.आर., एवं पावना, आर.एन. (2022). *इंट्रोडक्शन टू इंडियन नॉलेज सिस्टम : कॉन्सेप्ट्स एंड एप्लीकेशन्स.* दिल्ली : पीएचआई लर्निंग प्रा.लि.

राय, अनिल कुमार (सम्पा.) (2022). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की गंगोत्री : भारतीय ज्ञान परम्परा,* नई दिल्ली : किताबवाले.

शर्मा, सरोज (सम्पा.) (2023). *भारतीय ज्ञान परम्परा : विविध आयाम,* दिल्ली : शिप्रा प्रकाशन.

शंकर, हितेश (सम्पा.) (2022). 'सशक्त भारत के लिए पाँच प्रण'. *पांचजन्य,* 74(12), 6-8. https://panchjanya.com/2022/08/22/247590/eweekly/panchjanya-e-copy-28-august-2022/

शुक्ल, रजनीश (2021). *भारतीय ज्ञान परम्परा और विचारक,* नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

सिंह, लोकेन्द्र (2021). *संवाद की भारतीय परम्परा.* जयपुर : पाथेय कण. https://patheykan.com/संवाद-की-भारतीय-परम्परा/

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 117-129)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

'वेद पाठशाला' विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु प्राचीन एवं आधुनिक ज्ञान प्रणाली का समन्वय

भावना तिवारी* एवं धर्मेन्द्र कुमार सर्राफ†

भारतीय शिक्षा, भारत की देशज एवं पारम्परिक ज्ञान प्रणाली, भारत की दार्शनिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परम्पराओं का प्रतिफल है जिसकी जड़ें वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों इत्यादि प्राचीन भारतीय साहित्य में निहित है। वेद, ज्ञान और दर्शन के प्रथम स्रोत और सनातन वैदिक हिन्दू परम्परा का मूल है। वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में निहित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक व्यवस्थित रूप से हस्तान्तरण हेतु पारम्परिक वैदिक संस्थानों में 'वेद पाठशाला' की स्थापना की गई थी। वेद पाठशालाओं का ध्येय वेदों का संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार है। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में वेद पाठशालाओं का लक्ष्य आत्मज्ञान से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति था जो वर्तमान में अनुभवात्मक अधिगम और व्यावहारिक ज्ञान के साथ विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु प्रतिबद्ध है। वर्तमान में विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी वैदिक संस्थाओं, जिसमें संगठनों द्वारा वेद पाठशालाओं का संचालन किया जा रहा है, जिसका आधार राष्ट्रीय

*अनुसन्धानकर्त्री, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
E-mail: bhawnatiwari10march@gmail.com
†सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
E-mail: dksarraf@dhsgsu.edu.in

शिक्षा नीति-2020 एवं राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2023 के दिशानिर्देशों के अनुसार संचालित है। समग्र एवं समावेशी शिक्षा के ध्येय से एनसीएफएसई-2023 में व्यक्तित्व विकास के पंचकोश सिद्धान्त को आधार माना गया है जिससे शिक्षा द्वारा एक सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य वेद पाठशालाओं में अध्ययनरत विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु पंचकोश सिद्धान्त के एकीकरण हेतु प्रमुख सम्भावनाओं का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : वेद पाठशाला, समग्र विकास, पंचकोश सिद्धान्त।

प्रस्तावना

भारत का एक समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास है जो उन्नत सभ्यता और समृद्ध शैक्षिक विरासत से परिपूर्ण है। प्राचीन भारतीय शिक्षा आध्यात्मिक और दार्शनिक आदर्शों की गहराई में समाहित है जिसमें ज्ञान प्राप्ति के साथ-साथ स्व की खोज भी सम्मिलित रही है। प्राचीन भारतीय शिक्षा, पारम्परिक ज्ञान प्रणाली का एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करती है जिसे सांस्कृतिक संरक्षण, संचरण और संस्कृतिकरण का प्रमुख एवं समृद्ध साधन माना जाता है (राठी और एम्पिली, 2015)। पारम्परिक ज्ञान प्रणाली, वेदों, उपनिषदों एवं भारतीय शास्त्रों में निहित ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनवरत एवं व्यवस्थित रूप से हस्तान्तरण को सन्दर्भित करती है। भारत की समृद्ध सभ्यता, संस्कृति और शिक्षा ऋषियों के तप, ज्ञान और अनुभवों का समायोजन है। माना जाता है कि वेदों की उत्पत्ति स्वयं ब्रह्मा द्वारा श्रुति (सुनना) रूप से हुई। ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम चार ऋषियों अग्नि, वायु, अंगीरा एवं आदित्य को वेद सम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया। बाद में ऋषियों के अनुभवों को काव्य रूप में व्यक्त किया गया, जिन्हें मन्त्रों के रूप में जाना जाता है। वेद इन मन्त्रों की परिणति से विकसित हुए जिन्हें महर्षि वेदव्यास द्वारा संकलित एवं लिखित स्वरूप दिया गया (एआईसीटीई, एन.डी.; जोशी, 2016)। वेद के लिए विदित है कि वेद शब्द की उत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'ज्ञान या जानना'। वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। प्रारम्भ में वेद तीन थे - ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद जिन्हें वेदत्रयी के रूप में जाना जाता था। बाद में अथर्ववेद के संकलन के पश्चात् वेदों की संख्या चार हो गई। चारों वेदों के अनेक मन्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति, रचना एवं ब्रह्मांड के गूढ़ रहस्यों का वर्णन समाहित है (पूर्वोक्त) तथा इन चारों वेदों के अन्तिम भाग उपनिषद् हैं। उपनिषदों को वेदान्त के नाम से भी जाना जाता है। भारतीय ज्ञान को वेदों में 14 विद्या, 64 कलाओं एवं चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें व्यावहारिक शिक्षा, दर्शन, कला कौशल, शिल्प कौशल, कृषि, स्वास्थ्य, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, योग, भाषा एवं अन्य विषय सम्मिलित हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष व्यक्तित्व विकास को एकीकृत एवं समग्र रूप प्रदान करते हैं (एनसीईआरटी, 2010; पटुकले, 2023)।

वर्तमान में वैदिक ज्ञान के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार हेतु वेद पाठशालाओं की स्थापना की गई है। वेद पाठशालाएँ, पारम्परिक भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं वेदों की मौखिक

परम्परा को सहेज कर भारत की दार्शनिक और अनुष्ठान प्रथाओं को संरक्षित करते हुए सांस्कृतिक और आध्यात्मिक केन्द्रों के रूप में कार्य कर रही हैं तथा यह सुनिश्चित करती हैं कि यह प्राचीन ज्ञान बिना किसी विकृति के भावी पीढ़ियों तक पहुँचाया जा सके (चटर्जी, 2018)। वर्तमान में वेद पाठशालाएँ राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एवं विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2023 (एनसीएफएसई-2023) के दिशा-निर्देशों के अनुसार पारम्परिक वैदिक ज्ञान एवं आधुनिक विषयों के साथ विद्यार्थियों के एक सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण विकास को सम्भव करने का प्रयास कर रही हैं (वेद पाठशालाओं में तैयार हो रहे भविष्य के गुरु, 2016)। एनसीएफएसई-2023 में एक सन्तुलित और सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व विकास हेतु पंचकोश सिद्धान्त को आधार माना गया है (एनसीईआरटी, 2023)। व्यक्तित्व विकास की जटिल संरचना का व्यापक स्वरूप यजुर्वेद के तैत्तिरीय उपनिषद् में उल्लिखित पंचकोश सिद्धान्त द्वारा दिया गया है। यह मानव अस्तित्व को पाँच आवरणों या कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) के रूप में दर्शाता है जो वास्तविक रूप से स्वयं या आत्मा को एक आवरण की तरह घेरे रहते हैं (हटंगड़ी, 2023; सतपथी, 2018)। यह शोध लेख वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने के लिए समर्पित वेद पाठशाला प्रणाली में इस सिद्धान्त के एकीकरण की खोज करता है। वेद पाठशालाओं के पाठ्यक्रम और शिक्षाशास्त्र के साथ पंचकोश रूपरेखा को संरेखित करके, यह लेख इस तथ्य पर प्रकाश डालता है कि शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा देते हुए विद्यार्थियों द्वारा समग्र शिक्षा कैसे प्राप्त की जा सकती है?

वेद पाठशाला - एक दृष्टि

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा गुरु एवं आचार्य द्वारा मौखिक रूप से प्रदान की जाती थी। विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करने हेतु गुरु या आचार्य के आश्रम में अर्थात् सदैव उनके सम्मुख रहते थे, जिसे 'गुरु-मुख' के रूप में जाना जाता था। विद्यार्थी गुरु के अनुभव को सुनकर अर्थात् 'श्रुति' रूप में ज्ञान प्राप्त करते थे, 'स्मृति' रूप में स्मरण रखते थे तथा चिन्तन द्वारा ग्रहण करते थे। गुरु के पास ही सर्वोच्च अधिकार थे और इस प्रणाली को गुरुकुल एवं वेद पाठशालाओं के माध्यम से संरक्षित किया गया था (भगत, 2014)। गुरु विद्यार्थी के आध्यात्मिक मार्गदर्शक, आदर्श एवं उसके प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी थे। जिस प्रकार एक माली अपने बाग का पूर्णरूपेण देखभाल करता है, उसी प्रकार गुरु या आचार्य अपने विद्यार्थी का पालन-पोषण, एक माली एवं माता-पिता के समान करते थे। वे विद्यार्थी के चरित्र और व्यक्तित्व को समग्र रूप से आकार देकर समाज का उत्पादक सदस्य बनाने का प्रयास करते थे। शैक्षिक प्रक्रिया श्रवण, मनन और निदिध्यासन पर आधारित थी। गुरु द्वारा विद्यार्थी को पवित्र शास्त्रों का पाठ सुनाना (श्रवण), व्यक्तिगत व्याख्या करके चिन्तन करना (मनन), एवं तथ्यों को समझना और अपने जीवन में लागू करना (निदिध्यासन) कहलाता है (सेल्वामणि, 2019)। गुरुकुल एवं वेद पाठशालाओं में वेदों में निहित प्रकृति के रहस्यों का ज्ञान, तार्किक सोच,

विज्ञान और व्यावसायिक कौशल सिखाये गये जो शिक्षा का आधार थे। समय के साथ-साथ भविष्य की पीढ़ियों को ज्ञान हस्तान्तरित करने की इस पारम्परिक प्रक्रिया ने संस्थागत रूप ले लिया जिससे तक्षशिला, नालन्दा और प्रसिद्ध मन्दिर विश्वविद्यालयों का उदय हुआ जिनके अवशेष आज भी दक्षिण भारत में पाये जाते हैं (श्रीवास्तव, 2012)। समाज के बदलते स्वरूप ने शिक्षा का भी रूप परिवर्तित किया जिसके परिणामस्वरूप भारत में 1813 के चार्टर एक्ट की शिक्षा नीति द्वारा आधुनिक शिक्षा का जन्म हुआ और शिक्षा के व्यवसायीकरण ने गुरुकुल प्रणाली को औपचारिक पाठशाला एवं विद्यालयों (स्कूल) में परिवर्तित कर दिया (चौबे, एन. डी.; मालू, 1999)। भारत में 1813 के चार्टर एक्ट द्वारा शिक्षा नीति की स्थापना की गई और शिक्षा के व्यावसायीकरण ने गुरुकुल प्रणाली को औपचारिक पाठशाला एवं विद्यालयों (स्कूल) में परिवर्तित कर दिया (चौबे, एन.डी.; मालू, 1999)। वैदिक ज्ञान एवं अध्ययन की मौखिक विरासत का संरक्षण और प्रचार-प्रसार की बात विभिन्न भारतीय शिक्षा नीतियों एवं आयोगों में निरन्तर रूप से कही गयी और वैदिक ज्ञान की शिक्षा हेतु आश्रम, गुरुकुल एवं वेद पाठशालाओं का सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा संचालन किया जाने लगा। इसी उद्देश्य से वेद पाठशालाओं की स्थापना और समर्थन के माध्यम से वैदिक अध्ययन के संरक्षण और विकास के लिए जनवरी, 1987 में भारत सरकार ने शिक्षा मन्त्रालय (उच्च शिक्षा विभाग) के अन्तर्गत एक शीर्ष स्वायत्त निकाय, राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान का गठन किया। इसी क्रम में मई 1993 में प्रतिष्ठान का मुख्य कार्यालय अपने नवीन नाम, 'महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान' के साथ नई दिल्ली से मध्य प्रदेश के उज्जैन में स्थानान्तरित कर दिया गया।

प्रतिष्ठान का मुख्य लक्ष्य गुरु-शिष्य परम्परा एवं वेद पाठशालाओं द्वारा वैदिक अध्ययन की मौखिक विरासत का संरक्षण और विस्तार करना है। वर्तमान में प्रतिष्ठान वैदिक अध्ययन एवं आधुनिक विषय की शिक्षा के सम्मिलित स्वरूप के साथ विद्यार्थियों के सन्तुलित एवं समग्र विकास में प्रमुख भूमिका निभा रहा है (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.; एनआईसी, 2019)। प्रतिष्ठान द्वारा सम्पूर्ण भारत में कुल 91 वेद पाठशालाओं तथा 311 गुरु-शिष्य परम्परा इकाइयों का अनुदान देकर संचालन किया जा रहा है जिसमें बालक एवं बालिकाएँ शिक्षा ग्रहण करते हैं। यह नि:शुल्क एवं आवासीय व्यवस्था पर आधारित हैं। वेद पाठशालाओं में विशेष रूप से एक वेद में निपुण गुरु द्वारा वेद की एक शाखा - ऋग्वेद शाकल शाखा, शुक्लयजुर्वेद काण्व शाखा, शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिन, कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय शाखा, सामवेद राणायनीय शाखा, सामवेद कौथुम शाखा, सामवेद जैमिनीय शाखा, अथर्ववेद शौनक शाखा, अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा का अध्ययन-अध्यापन किया जाता है जिसमें जगद्गुरु शंकराचार्य वेद विद्यालय, पाणिनि कन्या महाविद्यालय, ब्रह्मा वेद विद्यालय, महर्षि वेदव्यास विद्यापीठ तथा श्री शृंगेरी शारदा वेदवेदान्त गुरुकुल महाविद्यालय इत्यादि प्रमुख नाम सम्मिलित हैं (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.)।

वर्तमान में वेद पाठशालाएँ पारम्परिक, प्राचीन एवं आधुनिकता का मर्यादित सम्मिश्रण हैं। प्रतिष्ठान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 द्वारा निर्धारित पंचकोश विकास एवं व्यावसायिक विषयों के साथ-साथ आधुनिक विषय जैसे संस्कृत, गणित, अंग्रेजी, विज्ञान,

सामाजिक विज्ञान, हिन्दी, कम्प्यूटर, दर्शन, योग एवं वैदिक कृषि आदि के साथ विशिष्ट प्रकार के वेद पाठ्यक्रमों को सम्मिलित रूप से संचालित किया जा रहा है जिससे विद्यार्थियों को पंचकोशीय विकास के साथ समकालीन समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप प्राचीन ज्ञान का उपयोग करते हुए आधुनिक समस्याओं का समाधान खोजने के योग्य बनाया जा सके (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.; एनआईसी, 2019)। वेद पाठशालाएँ विद्यार्थियों को भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हुए पूर्ण सन्तुलित और सार्थक जीवन जीने के लिए तैयार करती हैं। पंचकोश सिद्धान्त वेद पाठशालाओं की शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में एकीकृत होने पर एक परिवर्तनकारी प्रतिमान के रूप में कार्य कर सकता है जो मुख्यत: पारम्परिक रूप से वैदिक शास्त्रों और प्रथाओं के संरक्षण और प्रसार पर केन्द्रित है।

वेद पाठशाला के प्रमुख उद्देश्य

वेद पाठशालाओं में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का लक्ष्य भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मौखिक परम्परा और अनुशासित अभ्यास के माध्यम से प्राचीन वैदिक ज्ञान को संरक्षित और स्थानान्तरित करना है। ये उद्देश्य आध्यात्मिक, बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक विकास में समाहित हैं (भगत, 2014)। वैदिक शिक्षण-पद्धति का उद्देश्य मौखिक सस्वर वेदपाठ की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखते हुए विद्यार्थियों को वैदिक जीवनपद्धति की ओर अभिमुख करना है जिससे वे अपने जीवन में वैदिक सिद्धान्तों एवं मूल्यों को आत्मसात् कर सकें। साथ ही विद्यार्थियों को प्रात:, सन्ध्यावन्दन, आदि नित्यकर्मों के प्रयोजन से परिचित कराना एवं इन क्रियाओं के माध्यम से शरीर को आन्तरिक एवं बाह्य रूप से शुद्ध एवं सुदृढ़ बनाना भी आवश्यक माना गया है, जिससे उनका शारीरिक और बौद्धिक विकास सुनिश्चित हो सके। इसके अतिरिक्त विद्यार्थियों को धीरे-धीरे सस्वर वेदाध्ययन के लिए प्रवृत्त करना जिससे वे पूर्वपाठ को कंठस्थ रखते हुए निरन्तर स्वाध्याय की ओर उन्मुख हो सकें।

वेद पाठशालाओं में स्वस्थ गुरु-शिष्य परम्परा को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे परस्पर श्रद्धा, अनुशासन एवं ज्ञान-संवाद की भावना प्रबल हो (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.)। विद्यार्थियों को एक शाखा का अध्ययन कराना एवं वैदिक ज्ञान के साथ-साथ आधुनिक शिक्षा का सम्मिश्रण कर दोनों धाराओं के मध्य घनिष्ठ वैचारिक सम्बन्धों की स्थापना करना भी इस पद्धति का एक महत्वपूर्ण ध्येय है। इसके अतिरिक्त पाठशालाओं में वैदिक मन्त्रों के अर्थ को सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की क्षमता का विकास करते हुए वेद के सप्तस्वरों को आधुनिक भारतीय शास्त्रीय संगीत से जोड़कर विद्यार्थियों को संगीत की दृष्टि से भी समृद्ध करने का प्रयास किया जाता है। साथ ही यज्ञ विधाओं में मन्त्रों के अर्थ का अनुप्रयोग किस प्रकार किया जाए, इससे विद्यार्थियों को परिचित कराया जाता है। पाठशालाओं की सम्पूर्ण शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में तीन प्रमुख शिक्षण विधाओं - स्वर, उच्चारण एवं कण्ठस्थीकरण में शत-प्रतिशत गुणवत्तापूर्ण मानक स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। पाठशाला के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु योग, ध्यान, व्यायाम और वैदिक मन्त्रों

का नित्य अभ्यास इत्यादि गतिविधियाँ सम्पन्न करायी जाती हैं जिसके माध्यम से विद्यार्थियों में धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन को विकसित करना सम्भव हो सके।

संस्कृत अध्ययन के अन्तर्गत अमरकोष के माध्यम से विद्यार्थियों को मन्त्रों में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों के प्रत्यक्ष उदाहरण प्रदान करते हुए शब्द संकलन सम्बन्धी ज्ञान की ओर प्रवृत्त किया जाता है। इसके साथ ही, ऋषियों द्वारा वेदों के पाठ के लिए एक व्यवस्था की गई है जिसमें प्रकृतिपाठ एवं विकृतिपाठ प्रमुख हैं।

चित्र 1

प्रकृतिपाठ के तीन उपवर्ग

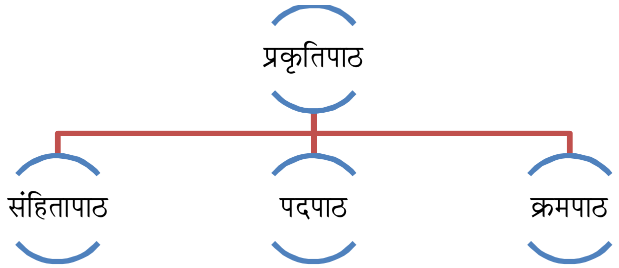

प्रकृति पाठ में संहितापाठ, पदपाठ एवं क्रमपाठ आते हैं। विकृति पाठ के आठ उपवर्ग जटापाठ, मालापाठ, शिखापाठ, रेखापाठ, ध्वजपाठ, दण्डपाठ, रथपाठ एवं घनपाठ हैं जिन्हें अष्टविकृति कहा गया (पाण्डेय, 2005)। संस्कृत अध्ययन के अन्तर्गत विद्यार्थियों को वेदों की लुप्त होती अष्टविकृति परम्परा से परिचित कराना भी वेद पाठशालाओं का लक्ष्य है, जिससे वे इस बहुमूल्य परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर सकें (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.)।

चित्र 2

अष्टविकृति परम्परा के भेद

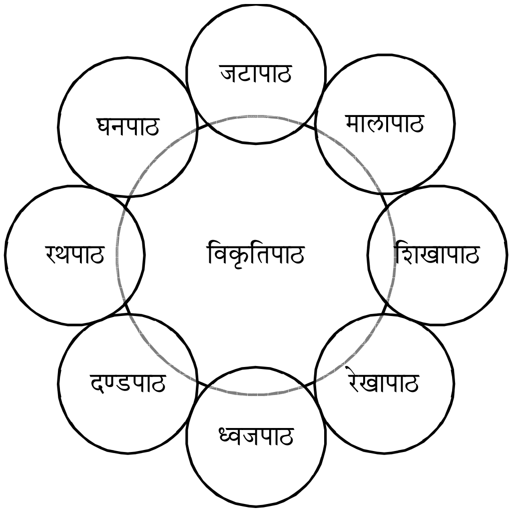

वेद पाठशाला की शैक्षणिक गतिविधियाँ

वेद पाठशालाओं की शैक्षणिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों के समग्र एवं सन्तुलित विकास के ध्येय से संचालित की जाती हैं जिसके माध्यम से वैदिक परम्परा, आध्यात्मिक अनुशासन और आधुनिक ज्ञान को समन्वित रूप देने का प्रयास किया जाता है। पाठशाला में विद्यार्थी वैदिक मन्त्रों, छन्दों, श्लोकों तथा पाठ को कंठस्थ करके शुद्ध उच्चारण और स्वरसंचालन का नित्य नियमित रूप से अभ्यास करते हैं। ऋचाओं की सन्ध्या पद्धति एवं गान विधि द्वारा मन्त्रों की नित्य आवृत्ति होती है जिससे ज्ञान ध्वनि और लयात्मकता के साथ मन में स्थिर हो सके। पाठशाला में योग, ध्यान, साधना, ब्रह्मयज्ञ, नित्यतर्पण, योगासन, व्यायाम और कंठस्थ पाठ की नित्य आवृत्ति के माध्यम से विद्यार्थियों को इन्द्रियों पर नियन्त्रण और आत्मसंयम सिखाया जाता है जिसके द्वारा एक अनुशासित जीवनशैली का निर्माण सम्भव हो पाता है। पाठशाला में गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से नैतिक मूल्यों, सेवा भावना, विनम्रता, आत्मविकास और तप की शिक्षा दी जाती है (भगत, 2014)। साथ ही यज्ञ, हवन, सन्ध्यावन्दन जैसे वैदिक अनुष्ठानों का नियमित अभ्यास विद्यार्थियों में धार्मिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन को विकसित करते हैं। पाठशाला में विद्यार्थियों को शुद्ध एवं सात्विक भोजन दिया जाता है जो शैक्षणिक अनुशासन का एक महत्वपूर्ण भाग है। आधुनिक जीवन कौशल हेतु आधुनिक विषयों को भारतीय ज्ञान परम्परा के साथ जोड़कर अध्ययन-अध्यापन किया जाता है। इसके अन्तर्गत कम्प्यूटर अनुप्रयोग जैसे आधुनिक विषयों को भी पाठशाला की समय सारिणी में सम्मिलित किया गया है। विद्यार्थियों की भाषा कौशल एवं अभिव्यक्ति के विकास हेतु पौराणिक कहानियों पर आधारित लघु नाटकों का मंचन, तात्कालिक भाषण, और चुने हुए विषयों पर अनुच्छेद लेखन जैसी पाठ्यसहगामी गतिविधियाँ भी सम्पन्न करायी जाती हैं। वेद पाठशालाएँ पंचकोश सिद्धान्त को आधार मानकर भारतीय परम्परा और आधुनिकता का सन्तुलित समन्वय करते हुए एक ऐसा शैक्षणिक वातावरण प्रदान करती है जो विद्यार्थियों के समग्र विकास के मार्ग को प्रशक्त करता है (एमएसआरवीवीपी, एन.डी.)।

पंचकोश सिद्धान्त एवं व्यक्तित्व का समग्र विकास

भारतीय दर्शन के अनुसार मानव अस्तित्व, भौतिक शरीर से आध्यात्मिक विकास और आत्म-साक्षात्कार का एकीकृत स्वरूप है जिसका अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिक मार्ग से होते हुए आत्मा और वैश्विक चेतना के सम्बन्ध को समझकर जन्म-मृत्यु चक्र से मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करना है (श्रीवास्तव, 2012)। वैदिक ज्ञान में मानव जीवन का ध्येय सर्वोच्च आन्तरिक और बाह्य प्रकृति को नियन्त्रित करके एकीकृत दिव्यता को प्राप्त करना है (शास्त्री, 2005)। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में आन्तरिक (मन, शरीर, हृदय और आत्मा) एवं बाह्य प्रकृति (सामाजिक/सांस्कृतिक और पर्यावरणीय सम्बन्ध) का एकीकृत एवं सामंजस्यपूर्ण विकास ही समग्रता का प्रतिरूप है अर्थात् एक व्यक्तित्व का समग्र विकास बौद्धिक, शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयामों का सम्मिलित रूप है (एनसीईआरटी,

2023; शेक, 2010)। मानव शरीर स्थूल (भौतिक शरीर), सूक्ष्म और कारण शरीर का सम्मिलित रूप है जिसमें पाँच कोश निहित हैं। भौतिक स्थूल शरीर में, 'सूक्ष्म शरीर' में प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोश तथा 'कारण शरीर' में आनन्दमय कोश विराजमान रहते हैं। मुख्य ऊर्जा का केन्द्र स्थूल शरीर है जो सात चक्रों (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र एवं सहस्रार चक्र) द्वारा समग्र रूप से नियन्त्रित होता है। ये सभी चक्र मानव शरीर के सभी अंगों एवं भागों में नियन्त्रण, सक्रियता एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हैं (हटंगड़ी, 2023)। तैत्तिरीय उपनिषद् में वर्णित पंचकोश सिद्धान्त मानव विकास के लिए एक बहुआयामी दृष्टिकोण की रूपरेखा, पाँच कोशों या आवरणों द्वारा प्रस्तुत करता है जिसमें 'अन्नमय' (शारीरिक कोश), 'प्राणमय' (प्राणवायु कोश), 'मनोमय' (मानसिक कोश), 'विज्ञानमय' (बौद्धिक कोश), और 'आनन्दमय' (आन्तरिक आनन्द कोश) सम्मिलित हैं (सतपथी, 2018)।

चित्र 3
पंच कोश एवं सम्पोषित क्षेत्र

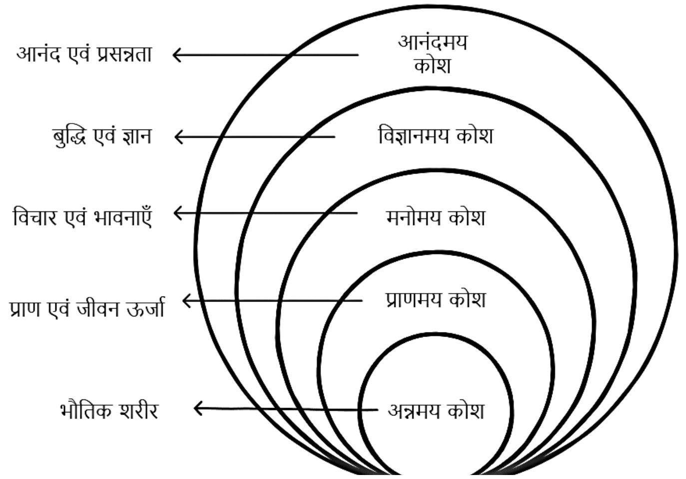

अन्न तथा भोजन से अन्नमय कोश, प्राणों से प्राणमय कोश, मन से मनोमय कोश, अन्तर्ज्ञान या सहज ज्ञान से विज्ञानमय कोश, आनन्द की अनुभूति से आनन्दमय कोश का निर्माण होता है। अर्थात् अन्नमय कोश, 'अन्न' अर्थात् भोजन, प्राणमय कोश 'प्राण' अर्थात् जैव ऊर्जा, मनोमय कोश 'विचार एवं भावनाएँ', विज्ञानमय कोश 'अहंकार, बुद्धि एवं ज्ञान' तथा आनन्दमय कोश द्वारा 'आनन्द एवं प्रसन्नता' पोषित होती हैं (एनसीईआरटी, 2023; सतपथी, 2018; श्रीवास्तव 2012)। अन्नमय कोश शारीरिक विकास पर, प्राणमय कोश प्राण, जीवन शक्ति एवं ऊर्जा प्रवाह पर, मनोमय कोश मानसिक और भावनात्मक विकास पर, विज्ञानमय कोश सहज ज्ञान एवं बौद्धिक विकास पर और आनन्दमय कोश आध्यात्मिक या

आत्मबोध पर ध्यान केन्द्रित करता है (सतपथी, 2018)। ये सभी कोश विशिष्ट रूप से विविध विशेषताओं को धारण किए हुए हैं। पाँचों कोश एक दूसरे से सम्बन्धित होने के साथ एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

चित्र 4
पंच कोश की विभिन्न शक्तियाँ

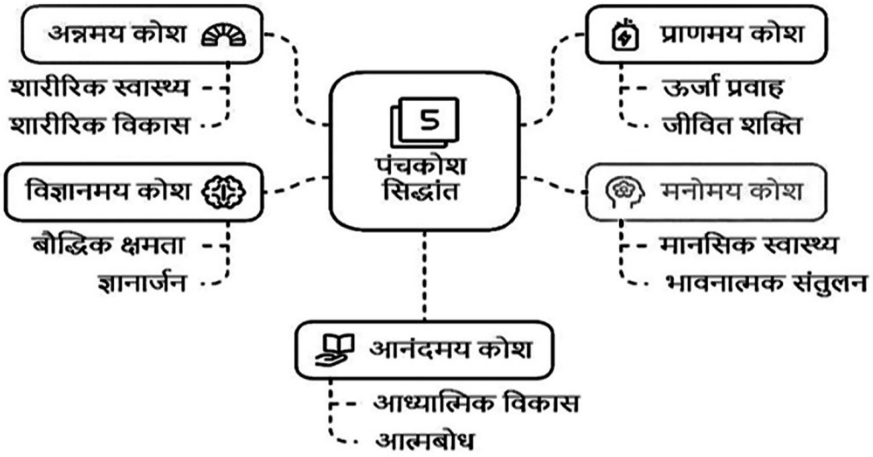

वेद पाठशालाएँ वैदिक ज्ञान के संवर्धन, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार के उद्देश्य के साथ इस सिद्धान्त को लागू करने के लिए एक आदर्श मंच का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके पाठ्यक्रम, शिक्षण-अधिगम पद्धति और दैनिक चर्या में पंचकोश सिद्धान्त को एकीकृत करके विद्यार्थी शारीरिक स्वास्थ्य, सामाजिक एवं भावनात्मक सन्तुलन, बौद्धिक कुशाग्रता और आध्यात्मिक पूर्णता के साथ समग्र रूप से विकसित हो सकते हैं।

वेद पाठशालाओं में समग्र विकास हेतु पंचकोश सिद्धान्त का एकीकरण

एनसीएफएसई-2023 में भारत की विद्यालयीन शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण प्रथाओं में पंचकोश सिद्धान्त को सम्मिलित करने की अनुशंसा की। एनसीएफएसई-2023 की संस्तुतियों के अनुसार शिक्षा मात्र ज्ञान देने की प्रक्रिया नहीं वरन् एक ऐसी प्रक्रिया होनी चाहिए जो बालक को शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, बौद्धिक और आत्मिक रूप से समृद्ध बनाए। पाठ्यक्रम एवं सह-पाठ्यक्रम क्रियाकलापों के माध्यम से एक ऐसा वातावरण तैयार किया जा सके जो विद्यार्थी के सभी पाँच कोशों को पोषित कर सके। पंचकोश सिद्धान्त अन्नमय (शारीरिक या भौतिक परत), प्राणमय (महत्वपूर्ण ऊर्जा या श्वास ज्ञान), मनोमय (मानसिक या मन की परत), विज्ञानमय (बौद्धिक

परत) और आनन्दमय (आन्तरिक स्व का ज्ञान) कोशों के पोषण से एक व्यक्तित्व के समग्र विकास पर ध्यान केन्द्रित करता है (एनसीईआरटी, 2023)। वेद पाठशालाओं में विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु पंचकोश सिद्धान्त का एकीकरण इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के ज्ञान के साथ स्वस्थ शरीर, एकाग्र मन एवं स्वस्थ मस्तिष्क के निर्माण का कार्य करेगा (लोन्धे एवं कराद, 2020)। एनसीएफएसई-2023 के दिशा निर्देश में प्रत्येक कोश के पोषण हेतु विशिष्ट प्रकार की प्रक्रियाएँ तथा अभ्यास तैयार करने के सुझाव दिये गये हैं। सभी कोश आपस में जुड़े हुए हैं इसलिये जो गतिविधियाँ एक कोश के लिए हैं, वे अन्य कोशों के विकास में भी सहायक होंगी (एनसीईआरटी, 2023)।

अन्नमय कोश के पोषण से शारीरिक चेतना में स्थिरता एवं प्राणमय कोश में जीवनशक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। वेद पाठशालाओं में स्वस्थ जीवनशैली, स्वास्थ्यवर्धक आहार, प्राणायाम, श्वास नियन्त्रण का अभ्यास, कपालभाती तथा विभिन्न आसनों का अभ्यास किया जाता है जो स्वस्थ मांसपेशियाँ, शारीरिक पुनरोद्धार, तनाव नियन्त्रण, जीवनशक्ति का विकास, सहनशक्ति का विकास एवं गहन आन्तरिक जागरूकता के विकास में सहायक हो सकते हैं तथा उसके द्वारा अन्नमय एवं प्राणमय कोश का पोषण सम्भव किया जा सकता है। अन्नमय कोश के पोषण से इन्द्रियों का नियन्त्रण, अनुशासन, व्यवस्थित और सामंजस्यपूर्ण विकास एवं विकृतियों में सुधार सम्भव होता है (जुलैस्की, 2017)। मनोमय कोश में विचार, भावनाएँ और इच्छाएँ निहित हैं जो मानसिक चेतना के द्योतक हैं। विद्यार्थियों में ध्यान, धारणा, योगनिद्रा एवं मन को एकाग्र रखने वाले अभ्यास द्वारा मनोमय कोश को पोषित किया जा सकता है। वेद पाठशाला का वातावरण मनोमय कोश को पोषित करने में सहायक होगा तो विद्यार्थियों में शुद्ध विचार, स्वस्थ सम्बन्ध, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, स्वस्थ संचार, साझाकरण, संघर्ष समाधान जैसे सामाजिक कौशल एवं सकारात्मक आत्म-छवि को बढ़ावा मिल सकेगा (कौशल, 2023)।

पाठशाला में चिन्तनशील अभ्यास, ज्ञान योग, पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन, दार्शनिक विचारों पर चिन्तन, विद्वानों के साथ संवाद, आत्म-चिन्तन और आत्म-निरीक्षण द्वारा शिक्षण होता है जो विज्ञानमय कोश के पोषण में सहायक होगा और सहज अन्तर्ज्ञान और बुद्धि का प्रतीक है। विज्ञानमय कोश के पोषण से संज्ञानात्मक विकास, सक्रिय अन्वेषण, आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान कौशल, विश्लेषणात्मक क्षमता, अमूर्त विचार, संश्लेषण, विश्लेषण, तार्किक योग्यता, रचनात्मकता, विवेक शक्ति, अन्तर्दृष्टि और मानव जीवन के अर्थ तथा उद्देश्य सम्बन्धी गहरी समझ को बढ़ावा मिलता है (राष्ट्रीय बालिका दिवस : काशी के इस 'गुरुकुल' में ओठों पर मन्त्र और हाथों में शस्त्र लेकर चलती हैं बेटियाँ, 2022)। आनन्दमय कोश, व्यक्तित्व के समग्र विकास की पूर्णता की अवस्था है जो मानव जीवन एवं शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य है। व्यक्तित्व विकास का चरमोत्कर्ष आध्यात्मिक बोध एवं चेतना में आनन्द को दर्शाता है (एनसीईआरटी, 2023)। प्रसन्नता, प्रेम, करुणा, सहजता, स्वतन्त्रता, सौन्दर्यबोध, आत्मजागरूकता, आत्मचिन्तन एवं आत्मबोध इसके प्रतीक हैं। वेद पाठशालाओं

का वातावरण एक स्वस्थ शरीर, उचित सामाजिक-भावनात्मक सन्तुलन और गहन ज्ञान के साथ व्यक्तिगत समग्र विकास के लिए उपयुक्त होता है जो विद्यार्थी को आत्मचिन्तन, भक्ति और पूर्ण समर्पण, सहज आनन्द, स्थायी प्रसन्नता, आन्तरिक सन्तोष एवं आत्मबोध की ओर ले जाता है। इस प्रकार पंच कोश मानव अस्तित्व के बहुआयामी विकास एवं आत्मप्रसन्नता की खोज को समझने के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रदान कर सकते हैं। वेद पाठशालाओं में अत्यधिक अनुशासन, वेद, उपनिषद, पुराण, वेदांग, ध्यान, कृषि, योग, संस्कृत, गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक विज्ञान और अन्य आधुनिक विषयों के साथ पंचकोशीय विकास के आधार पर विद्यार्थियों का सन्तुलित एवं समग्र विकास निर्धारित किया जाता है जिससे पारम्परिक वैदिक विद्यार्थियों को मुख्यधारा में लाया जा सके।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय शिक्षा, पारम्परिक ज्ञान प्रणाली के सांस्कृतिक संरक्षण, सांस्कृतिक संचरण और संस्कृतिकरण का साधन एवं आधार है। यह वेदों एवं भारतीय साहित्य में निहित ज्ञान को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरण को सन्दर्भित करती है। वेद पाठशालाओं का उद्देश्य मौखिक परम्परा और अनुशासित अभ्यास के माध्यम से विद्यार्थियों को वैदिक जीवनशैली की ओर उन्मुख करना है। विद्यार्थियों को दैनिक अनुष्ठानों, योग, ध्यान, साधना, ब्रह्मयज्ञ, नित्यतर्पण से परिचित होने और इन गतिविधियों के माध्यम से शारीरिक और बौद्धिक विकास को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह प्रणाली आपसी सम्मान, अनुशासन और ज्ञान-संवाद को मजबूत करने के साथ एक स्वस्थ गुरु-शिष्य परम्परा को बढ़ावा देती है। पाठशाला में सामाजिक, सांस्कृतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वैदिक मन्त्रों को समझने, वैदिक ज्ञान को आधुनिक जीवन कौशल से जोड़ने और विद्यार्थियों को वेदों की विलुप्त अष्टविकृति परम्परा से परिचित कराने पर ध्यान केन्द्रित करते हुए विद्यार्थी वैदिक मन्त्रों, छन्दों, श्लोकों तथा पाठ को कंठस्थ करके शुद्ध उच्चारण और स्वर संचालन के साथ नित्य एवं नियमित रूप से अभ्यास करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 एवं एनसीएफएसई-2023 के दिशा-निर्देशों में समग्र एवं समावेशी शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पंचकोशीय सिद्धान्त केन्द्र माना। पाठशालाओं में विद्यार्थियों के समग्र विकास हेतु पंचकोश सिद्धान्त का एकीकरण इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के ज्ञान के साथ स्वस्थ शरीर, एकाग्र मन एवं स्वस्थ मस्तिष्क के निर्माण का कार्य करेगा। वर्तमान में महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान द्वारा सम्पूर्ण भारत में वेद पाठशालाओं का संचालन किया जा रहा है। वेद पाठशालाओं में अन्नमय एवं प्राणमय कोश के पोषण हेतु स्वस्थ जीवनशैली, स्वास्थ्यवर्धक आहार, प्राणायाम, श्वास नियन्त्रण का अभ्यास, कपालभाती तथा विभिन्न आसनों के अभ्यास से स्वस्थ मांसपेशियाँ, शारीरिक पुनरोद्धार, तनाव नियन्त्रण, जीवनशक्ति का विकास, सहनशक्ति का विकास किया जाता है। वेद पाठशाला का वातावरण मनोमय कोश को पोषित करने में सहायक होगा तो विद्यार्थियों में शुद्ध विचार, स्वस्थ सम्बन्ध, भावनात्मक बुद्धिमत्ता, स्वस्थ संचार, साझाकरण, संघर्ष समाधान

जैसे सामाजिक कौशल एवं सकारात्मक आत्म-छवि को बढ़ावा मिल सकेगा। वेद पाठशाला में चिन्तनशील अभ्यास, स्वाध्याय, ज्ञान योग, पवित्र ग्रन्थों का अध्ययन, दार्शनिक विचारों पर चिन्तन, विद्वानों के साथ संवाद, आत्म-चिन्तन और आत्म-निरीक्षण द्वारा शिक्षण होता है जो विज्ञानमय कोश के पोषण में सहायक है जिससे संज्ञानात्मक विकास, सक्रिय अन्वेषण, आलोचनात्मक सोच, समस्या-समाधान कौशल, विश्लेषणात्मक क्षमता, अमूर्त विचार, संश्लेषण, तार्किक योग्यता, रचनात्मकता, अन्तर्दृष्टि और मानव जीवन के अर्थ की गहरी समझ को बढ़ावा मिलता है। वेद पाठशालाओं का शैक्षिक वातावरण आनन्दमय कोश के पोषण एवं स्वस्थ शरीर, उचित भावनात्मक सन्तुलन और गहन ज्ञान के साथ व्यक्तिगत समग्र विकास के लिए उपयुक्त होता है जो विद्यार्थी को आत्म-खोज, भक्ति और पूर्ण समर्पण, सहज आनन्द, स्थायी प्रसन्नता, आत्मचिन्तन, आत्मबोध और आन्तरिक सन्तोष के मार्ग की ओर ले जाता है। वेद पाठशालाओं में वैदिक विद्यार्थियों को मुख्यधारा में लाने के लिए अत्यधिक अनुशासन, वेद, उपनिषद, पुराण, वेदांग, योग, संस्कृत, गणित, विज्ञान, कृषि, कम्प्यूटर, अंग्रेजी और अन्य आधुनिक विषयों के साथ पंचकोशीय विकास के आधार पर विद्यार्थियों के समग्र विकास का निर्धारण किया जाता है।

सन्दर्भ

एआईसीटीई (एन.डी.). *इंट्रोडक्शन टू इंडियन नॉलेज सिस्टम.* 25 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://fdp-si.aicte-india.org/Teaching%20Material%20M8/IKS_Lecture2_ Introduction_ to_IKS.pdf

एनसीईआरटी (2010). *वेद पारिजात.* 04 जनवरी 2024 को प्राप्त, से : Ved Parijat (Correction 14.9.11)

एनसीईआरटी (2023). *नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन 2023.* 24 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://dsel.education.gov.in/sites/default/files/NCF2023.pdf

एनआईसी (2019). *महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान.* शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार. 11 अप्रैल 2023 को प्राप्त, से : https://www.education.gov.in/hi/language-education-11-hi

कौशल, सविता (2023). 'नेविगेटिंग पंचकोश फॉर न्यू लर्निंग पैराडाइम', *नवतिका.* 24 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://l1nq.com/Yufh1

चटर्जी, अविजीत (2018). 'इनसाइड वेद पाठशाला : अ यूनिक मिक्स ऑफ द ओल्ड एंड द न्यूज', *द टाइम्स ऑफ इंडिया.* 21 जनवरी 2024 को प्राप्त, से: https://l1nq.com/t4X3Z

चौबे, सरयू प्रसाद (एन.डी.). *भारतीय शिक्षा का इतिहास.* इलाहाबाद: राम नारायण लाल. 04 जनवरी 2024 को प्राप्त, से : https://epustakalay.com/book/6321-history-of-indian-education-by-dr-saryu-prasad-choubey/

जोशी, अनिरुद्ध (2016). 'वेदों का इतिहास जानें', *वेबदुनिया.* 05 जनवरी 2024 को प्राप्त, से : https://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-history/vedas-history-109090200128_ 2.html

जुलैस्की, जेरेमी (2017). 'अ कम्पलीट इंटीग्रल एजुकेशन : फाइव प्रिंसिपल आस्पेक्ट्स', *इंटीग्रल रिव्यू जर्नल,* 13(1). 07 अगस्त 2023 को प्राप्त, से : https://encr.pw/cZB1l

पाण्डेय, रमाकान्त (2005). *अभिनव वेददीपिका,* जयपुर : जगदीश संस्कृत पुस्तकालय.

पटुकले, क्षितिज (2023). 'इंडियन नॉलेज सिस्टम (IKS): रिवाइटलाइजिंग इंडिया', *भीष्म स्कूल ऑफ इंडियन नॉलेज सिस्टम ब्लॉग.* 21 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://www.bhishmaiks.org/post/indian-knowledge-system-iks-revitalizing-india-in-few-decades

भगत, निखिल वी. (2014). 'गुरु-शिष्य परम्परा', *ग्लोबल जर्नल ऑफ एप्लाइड सोशल, पॉलिटिकल, स्पोर्ट्स एंड साइंस.* 12 दिसम्बर 2022 को प्राप्त, से : https://www.academia.edu/37918212/guru_shishya_parampara

माल्, कृष्ण चन्द्र (1999). *भारत में शिक्षा : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि,* 05 जनवरी 2024 को प्राप्त, से : http://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/id/eprint/3110

महर्षि सान्दीपनी राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान (n.d.). शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार. 22 अप्रैल 2023 को प्राप्त, से : https://msrvvp.ac.in/index.html

लोन्धे, चारुलता एवं कराद, मंगेश टी. (2020). 'स्कूल ऑफ होलिस्टिक डेवलपमेंट : अ केस स्टडी', *यूरोपियन जर्नल ऑफ टीचिंग एंड एजुकेशन,* 2(2), 191-201. 11 अगस्त 2023 को प्राप्त, से : https://www.academia.edu/97835277/School_of_Holistic_Development_A_Case_Study

राठी, के.एन. एवं एम्पिली, अरविन्द (2015). 'एजुकेशन अंडर केरला स्टाइल ऑफ वैदिक ट्रेडिशन', *जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस,* 20(1), 30-36. 25 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://l1nq.com/6lJs0

राष्ट्रीय बालिका दिवस (2022). *अमर उजाला,* 22 दिसम्बर 2024 को प्राप्त, से : https://encr.pw/eatgi

वेद पाठशालाओं में तैयार हो रहे भविष्य के गुरु (2016). *दैनिक भास्कर,* 21 दिसम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://www.bhaskar.com/mp-ujj-mat-latest-ujjain-news-051503-587908-nor.html

शास्त्री, यज्ञेश्वर एस. (2005). *होलिस्टिक एप्रोचेस ऑफ वैदिक कल्चर एंड मॉडर्न साइंस,* गुजरात यूनिवर्सिटी. 21 मई 2023 को प्राप्त, से : https://shorturl.at/QKLhs

शेक, डैनियल टी.एल. (2010). 'नरिशिंग होलिस्टिक डेवलपमेंट', *द साइंटिफिक वर्ल्ड जर्नल,* 10, 563-575. https://doi.org/10.1100/tsw.2010.62

सतपथी, विश्वजीत (2018). 'पंचकोश थ्योरी ऑफ पर्सनालिटी', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंडियन साइकोलॉजी,* 6(2). 11 अगस्त 2023 को प्राप्त, से : https://ijip.in/articles/pancha-kosha-theory-of-personality/

सेल्वामणि, पी. (2019). 'गुरुकुल सिस्टम : एन एनसिएंट एजुकेशनल सिस्टम', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड सोशल साइंस,* 6(6), 1620-1622. 30 जून 2023 को प्राप्त, से : https://shorturl.at/86uGg

श्रीवास्तव, कल्पना (2012). 'कांसेप्ट ऑफ पर्सनालिटी : इंडियन पर्सपेक्टिव', *इंडस्ट्रियल साइकियाट्री जर्नल,* 21(2). 07 मई 2023 को प्राप्त, से : https://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC3830173/

हटंगड़ी, विद्या. (2023). 'रिलेशनशिप बिटवीन सेवन चक्र और मस्लो थ्योरी', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ नॉवेल रिसर्च एंड डेवलपमेंट,* 8(11), 604-607. 11 नवम्बर 2023 को प्राप्त, से : https://www.ijnrd.org/papers/IJNRD2311273.pdf

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 130-138)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

फसल संरक्षण में पारम्परिक तकनीक की उपयोगिता : स्थिति एवं सम्भावना

मनीष मिश्रा*

भारतीय कृषि परम्परा अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध रही है, जो सहस्राब्दियों से स्थानीय संसाधनों और पारम्परिक ज्ञान पर आधारित रही है। ऋग्वेद काल से लेकर मध्यकालीन ग्रन्थों तक कृषि विधियों का गहन विवरण मिलता है, जिनमें कीट नियन्त्रण, फसल सुरक्षा और भूमि उर्वरता से सम्बन्धित तकनीकें सम्मिलित हैं। ब्रिटिश शासन और हरित क्रान्ति के प्रभावों ने इन तकनीकों को हाशिए पर डाल दिया, परन्तु हाल के वर्षों में वैज्ञानिक समुदाय ने इनके वैज्ञानिक आधार की पुष्टि की है। यान्त्रिक, कृषि-सम्बन्धी, जैविक विधियाँ, जैसे - अलाव, बसेरा, धूमीकरण तथा गौ-उत्पादों का उपयोग पारम्परिक कीट प्रबन्धन में प्रभावी पाया गया है। अनेक जड़ी-बूटियों और पौधों पर आधारित उपचार आज भी किसानों द्वारा उपयोग में लाए जा रहे हैं। इन तकनीकों का पुनर्परीक्षण, संसाधन-विहीन किसानों के लिए एक सतत, सस्ता और पर्यावरण-अनुकूल विकल्प प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक कृषि के दुष्प्रभावों को सन्तुलित कर सकता है।

*कला एवं मानविकी विभाग, सैम ग्लोबल विश्वविद्यालय, रायसेन (म.प्र.)
E-mail: manishbpl676@gmail.com

पृष्ठभूमि

ऐसा माना जाता है कि भारतीय कृषि कम से कम 10,000 वर्ष पुरानी है। सर्वविदित है कि जब ऋग्वेद (लगभग 8000 ईसा पूर्व) को संकलित किया गया था, तब तक बुनियादी कृषि संचालन पर काम किया जा चुका था। विभिन्न प्रकार के जानवरों को पालतू बनाकर उन्हें भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाने लगा। सहस्राब्दियों से नयी फसलों और उनसे जुड़े कृषि सम्बन्धी ज्ञान को खेती में जोड़ा गया है। आज, विविध कृषि-पारिस्थितिकी स्थितियों की उपलब्धता के कारण भारत में बहुत बड़ी संख्या में विविध प्रकार की फसलों का उत्पादन होता है। इस पूरी अवधि के दौरान, पिछली दो शताब्दियों में 'आधुनिक' कृषि के आगमन तक, किसानों ने अपने बड़े-बुजुर्गों की सलाह, समाज में प्रचलित पारम्परिक ज्ञान, लोकोक्तियों आदि के माध्यम से फसल उत्पादन की प्रौद्योगिकियों का विकास और सुधार कार्य किया है। सभी प्रकार की कृषि गतिविधियों में प्रयुक्त होने वाली सामग्री और मानव संसाधनों की उपलब्धता पारम्परिक ज्ञान पर आधारित थीं।

ब्रिटिश शासन के दौरान, असुरक्षा, भूमि स्वामित्व प्रणालियों में हस्तक्षेप और भारतीय कृषि पद्धति को यूरोपीय कृषि पद्धति बनाने पर जोर देने के कारण भारत की कृषि को बहुत नुकसान हुआ। इस दौरान भारतीय किसान अपनी पारम्परिक खेती को आधे-अधूरे मन से ही करते रहे। जब भारत स्वतन्त्र हुआ, तो उसकी खाद्य सुरक्षा न्यूनतम स्तर पर थी। इससे खाद्यान्न का नियमित वार्षिक आयात होने लगा।

आज कई लोगों द्वारा हरित क्रान्ति की आलोचना की जाती है, लेकिन कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए यह नितान्त आवश्यक था। किसी भी देश के स्वाभिमान के लिए खाद्य सुरक्षा एक बुनियादी शर्त होती है। हरित क्रान्ति के उच्च-निवेश एवं गहन कृषि पर आधारित होने के कारण इसे संसाधनों के क्षरण और संसाधन विहीन गरीब किसानों की उपेक्षा जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ा। यदि संसाधन विहीन गरीब किसानों को अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाना है, तो उन्हें अत्यधिक कुशल तकनीकों को सीखने की आवश्यकता होगी जो स्थानीय रूप से उपलब्ध एवं कम लागत वाली होती हैं। प्राचीन और मध्य काल में भारतीय समाज से किसानों ने जो ज्ञान प्राप्त किया, वह आज संसाधन विहीन गरीब किसानों की मदद कर सकता है, खासकर उन लोगों की जो पानी के स्रोत के रूप में केवल वर्षा पर निर्भर होते हैं।

ब्रिटिश वनस्पतिशास्त्री जॉर्ज वॉट ने अपनी शोधपरक पुस्तक 'इकोनॉमिक प्रोडक्ट्स ऑफ इंडिया' में पारम्परिक कृषि तकनीकों को संकलित किया। इस पुस्तक के माध्यम से आज के किसान उस समय अपनायी जाने वाली परम्परागत तकनीकों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। एक लम्बे अन्तराल के बाद, हरित क्रान्ति के दुष्प्रभाव स्पष्ट होने के कारण पारम्परिक कृषि पद्धतियों के दस्तावेजीकरण में वैज्ञानिकों की रुचि बढ़ने लगी। भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् ने हाल ही में पारम्परिक प्रथाओं का दस्तावेजीकरण किया है।

पिछली शताब्दी के अन्तिम दशक के दौरान, एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउंडेशन, सिकन्दराबाद ने कन्नड़, फारसी और संस्कृत भाषा के कृषि से सम्बन्धित ग्रन्थों का अंग्रेजी में

अनुवाद किया है। इसमें सबसे पहले लोकोपकार (1025 ई.) का कन्नड़ तथा नुस्खा दर फन्नी-फलाहत (लगभग 1650) का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया है। इसके अतिरिक्त, संस्कृत के चार ग्रन्थों, यथा - सूरपाल का वृक्षायुर्वेद (लगभग 1650 ई.), कृषि-पराशर (लगभग 400 ई.पू.), काश्यपीयकृषिसूक्ति (लगभग 800 ई.) और विश्ववल्लभ (लगभग 1577 ई.) ग्रन्थ का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया है। वर्तमान में किसान कई प्राचीन और मध्यकालीन कृषि तकनीकों को जानते हैं जिनका आधुनिक कृषि कार्य में उपयोग नहीं किया जा रहा है।

पारम्पारिक कृषि तकनीक का विश्लेषण

हीरानन्द और कुमार (1980) ने अपने अध्ययन में पाया कि वैज्ञानिकों के लिए किसानों द्वारा प्रस्तुत की गयी प्रत्येक पारम्परिक तकनीक की मान्यता तर्कसंगतता के आधार पर ही स्वीकृत अथवा अस्वीकृत हो सकती है। पडरिया और सिंह (1990) ने बिहार के राँची जिले में अपनाई जाने वाली पारम्परिक शुष्क कृषि पद्धतियों की पहचान की और वैज्ञानिकों द्वारा पाँच बिन्दु पैमाने पर इसका मूल्यांकन किया। प्रचलित प्रथाओं में से जिन प्रथाओं ने चार से ऊपर के औसत अंक प्राप्त किये, उन्हें अधिक तर्कसंगत माना गया। इन पारम्परिक प्रथाओं में से आज भी कई प्रचलन में हैं और काफी हद तक वैज्ञानिक तर्कसंगतता के मानकों पर खरी उतरती हैं। कलाइवानी (1992) ने उद्यान खेती से जुड़ी मान्यताओं पर अपने अध्ययन में वैज्ञानिकों द्वारा मूल्यांकित स्वदेशी मान्यताओं की तर्कसंगतता का अध्ययन किया। रामाराजू (1993) ने कई स्वदेशी प्रथाओं का अध्ययन किया जिसे वैज्ञानिकों ने तर्कसंगत माना। 'रांची जिले में कटाई के बाद की स्वदेशी प्रथाओं का औचित्य' नामक अध्ययन में पाया गया कि वैज्ञानिकों ने चावल, गेहूँ और अनाज फलियों की कटाई के बाद कुटाई, भूसी निकालने और भंडारण की 11 स्वदेशी तकनीक में से 9 को जारी रखने का समर्थन किया है। गणेशमूर्ति (2000) ने फसल कटाई के बाद की स्वदेशी तकनीक पर अपने अध्ययन में पाया कि वैज्ञानिकों ने फसल कटाई के बाद की 80 प्रतिशत से अधिक स्वदेशी तकनीक को तर्कसंगत माना है।

फसल संरक्षण की परम्परागत तकनीक की स्थिति

पारम्परिक तकनीक सरल, लागत प्रभावी, पर्यावरण-अनुकूल होती है और किसानों द्वारा आसानी से अपनायी जा सकती है। उन्हें मोटे तौर पर निम्नानुसार समूहीकृत किया जा सकता है -

1. यान्त्रिक तरीकों में कीटों को यान्त्रिक रूप से हटाना शामिल है। उदाहरण के लिए, लार्वा और ग्रब को हाथ से चुनना, पत्तियों के अन्तिम हिस्से से चुटकी से रोगाणुओं के अंडों को निकालना, पुतलों का उपयोग करके या ड्रम का उपयोग कर शोर पैदा कर पक्षियों से बचाना, पौधों पर राख छिड़क कर कीटों को नियन्त्रित करना, आदि।

2. कृषि सम्बन्धी विधि के विभिन्न प्रकारों में अन्तर-फसल, जाल फसल, सीमा फसल, फसल चक्र, धूमन, प्रकाश जाल का उपयोग, पक्षी के बैठने का स्थान बनाना, आदि का उपयोग सम्मिलित है।
3. जैविक तरीकों में फसल सुरक्षा के लिए परजीवियों, वानस्पतिक कीटनाशकों, आदि के उपयोग को शामिल किया जा सकता है।
4. जैविक खाद का प्रयोग कर फसलों को संरक्षित किया जाता है।

यान्त्रिक तकनीक

अलाव का प्रयोग (लाइट ट्रैप)

अलाव का उपयोग वयस्क कीटों से फसल की सुरक्षा के लिए किया जाता है, जिससे उनको नियन्त्रित किया जा सके। एक बड़ी प्लेट या बर्तन में पानी के साथ मिट्टी का तेल मिलाकर अलाव को रखा जाता है। अलाव फसल की लम्बाई से 2-3 फीट ऊपर होना चाहिए। खेत में अलाव शाम छह से नौ बजे के बीच लगाना चाहिए। रात्रि नौ बजे के बाद लाभकारी कीड़ों के फँसने की सम्भावना रहती है। वयस्क पतंगे, जो तेज रोशनी से आकर्षित होते हैं, इस पानी में गिरकर मर जाते हैं।

पक्षी के बैठने का स्थान बनाकर (बसेरा)

इस विधि में कुछ संरचनाओं का उपयोग किया जाता है जो लार्वा की आबादी अधिक होने पर पक्षियों को खेतों में आमन्त्रित करता है। खेत में 15-20 प्रति एकड़ की दर से पक्षियों के बैठने हेतु 'टी' आकार का स्थान बनाया जाता है। पक्षियों को आकर्षित करने के लिए बसेरों में चावल के साथ हल्दी पाउडर मिलाकर भी रखा जाता है। यह बसेरा फसल की लम्बाई से लगभग एक फीट ऊपर होना चाहिए। ये स्थान उन पक्षियों के लिए विश्राम स्थल का काम करते हैं जो खेतों में लार्वा को खाते हैं और फसलों को इनसे सुरक्षित रखते हैं।

कृषि सम्बन्धी तकनीक

फसलों का सुरक्षा कवच

एक उपयुक्त प्रकार की फसल जो मुख्य फसल के चारों ओर एक सुरक्षा कवच के तौर पर कार्य करती है, जिसे मुख्य फसल के साथ बाह्य परिधि में लगाया जाना चाहिए। यह फसल कीटों को मुख्य फसल तक पहुँचने से रोकने का कार्य करती है।

धूमीकरण

धूमीकरण एक पारम्परिक तरीका है जिसमें कुछ प्राकृतिक उत्पादों के धुएँ का उपयोग विशेष रूप से सब्जी-फसलों में बीमारियों को नियन्त्रित करने और भंडारण के समय गोदामों में कीटों को दूर करने के लिए किया जाता है। धूमन कीटों को कीटाणुरहित करने या

नष्ट करने के उद्देश्य से बीजों और पौधों पर गैस, वाष्प या धुआँ लगाने की प्रक्रिया है। आमतौर पर धूमीकरण भंडारण क्षेत्रों और खेतों में भी किया जाता है। स्वीट फ्लैग (एकोरस कैलमस), वैविदंगम (एम्बेलिया रिब्स) और हल्दी (करकुमा लोंगा) कुछ प्राकृतिक उत्पाद हैं जिनका उपयोग आमतौर पर धूमन के लिए किया जाता है।

जैविक तकनीक

दूध और दूध से बने उत्पाद

दूध और घी का उपयोग सदियों से होता आ रहा है। यहाँ तक कि छाछ को भी उपयोगी पाया गया है। दूध में कुल अमीनो एसिड का लगभग 40 प्रतिशत ग्लूटामेट, ल्यूसीन और प्रोलाइन मिलकर बनाते हैं। दूध में पौधों की वृद्धि बढ़ाने वाले तत्व पाये जाते हैं। दूध के छिड़काव से मिर्च में लीफ-कर्ल नामक एक वायरल बीमारी के खिलाफ प्रणालीगत अर्जित प्रतिरोध (सिस्टमिकली एक्वायर्ड रेजिस्टेंस) पैदा हो जाता है। इसके अलावा, दूध में बैक्टीरियारोधी गुण होते हैं जिसका उपयोग फफून्द को नियन्त्रित करने के लिए प्रभावी ढँग से किया जा सकता है।

पौधों में अमीनो एसिड प्रोलाइन को व्यवस्थित रूप से प्रतिरोध उत्पन्न करने के लिए पाया गया है। यह रोगाणुरोधी फेनोलिक्स को बढ़ाता है। प्रोलाइन की उच्च मात्रा साइटोकिनिन और ऑक्सिन को बढ़ाती है। दूध के अलावा, प्रोलाइन मछली सहित कई अन्य जानवरों के संयोजी ऊतकों में मौजूद होता है। दूध के ये परम्परागत प्रयोग पौधों की कई अन्य बीमारियों के निदान के लिए शोध का एक अवसर प्रदान करता है।

गाय के गोबर का प्रयोग

कौटिल्य (लगभग 300 ईसा पूर्व) के समय से गाय के गोबर का उपयोग बीजों के व्रणोपचार, कीटों से बचाने के लिए गन्ने जैसी फसलों के सिरों पर लेप लगाने, मिट्टी और पौधों पर पतला घोल छिड़कने आदि में किया जाता है। भारतीय किसानों द्वारा गाय के गोबर का विभिन्न तरीकों से उपयोग किया जाता है, लेकिन कृषि वैज्ञानिकों ने खाद को छोड़कर इसके अन्य प्रकार के उपयोग को नजर-अन्दाज किया है (नेने, 1999)।

इस प्रकार, जब बीजों को गाय के गोबर से विभिन्न प्रकार से उपचारित किया जाता है, तो वे गोबर के अवशेषों से लेपित होते हैं। इस अवशेष में सेल्युलोज, हेमिकेलुलोज, सूक्ष्म पोषक तत्व, चयापचय नाइट्रोजन, जानवरों से उपकला कोशिकाएँ, पित्त लवण और रंगद्रव्य, पोटाश, सल्फर, फॉस्फोरस के अंश और बड़ी संख्या में बैक्टीरिया शामिल हैं, जिनमें से अधिकांश सेलूलोज, हेमिकेलुलोज और पेक्टिन किण्वक होते हैं। गाय के गोबर के अवशेष में पायसीकारी गुण होते हैं। बीज पर गाय के गोबर की एक पतली सूखी परत ब्लॉटिंग पेपर की तरह काम करती है जिससे आसपास की मिट्टी से नमी को आसानी से अवशोषित कर लेती है, जो बीज के लिए फायदेमन्द होता है। अवशेषों में बैक्टीरिया की उपस्थिति बीज पर हमला करने

वाले सम्भावित रोगजनकों को नष्ट करने का काम करता है। फोस्टर एवं अन्य (1983) के अनुसार चूंकि रूट टिप म्यूसिलेज में आंशिक रूप से सेल्युलोज, हेमिसेल्युलोज और पेक्टिन जैसे जटिल कार्बोहाइड्रेट होते हैं, जो बैक्टीरिया इन कार्बोहाइड्रेट का उपयोग करने की क्षमता रखते हैं उन्हें रोग प्रतिरोधी बनाता है। इस सन्दर्भ में, गाय के गोबर में पाये जाने वाले बैक्टीरिया सबसे उपयुक्त होते हैं क्योंकि उनमें सेलूलोज, हेमीसेल्यूलोज और पेक्टिन का उपयोग करने की क्षमता होती है। दूसरे शब्दों में, ये गोबर के जीवाणु बोये गये बीजों के आसपास के क्षेत्र में तेजी से फैलते हैं और सम्भावित रोगजनक कवक और जीवाणुओं के प्रति पौधों में रोग प्रतिरोधी क्षमता का विकास करते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना उचित है कि आमतौर पर जैव-नियन्त्रण के लिए उपयोग किये जाने वाले कवकों में से एक ट्राइकोडर्मा हैमेटम (बोनोर्ड) एंजाइम सेल्यूलोज का उत्पादन करता है इसलिये इसमें अच्छी प्रतिरोधी क्षमताएँ होती हैं। यदि गाय के गोबर के जीवाणुओं में साइडरोफोर्स (कम आणविक भार, उच्च एफिनिटी आयरन) उत्पन्न करने और प्रणालीगत रोग प्रतिरोध को प्रेरित करने की क्षमता होती है जो बहुत प्रभावी ढंग से बीजों की रक्षा करते हैं (वैन लून एवं अन्य, 1998)। चूंकि बीजोपचार के लिए गाय के गोबर का उपयोग सहस्राब्दियों से किसानों द्वारा किया जा रहा है, इसलिए यह स्पष्ट है कि भारतीय किसान इसकी उपयोगिता को समझते हैं। यदि बीजों को गाय के गोबर से उपचारित करना खेत की स्थितियों में अच्छे अंकुरण और अंकुरण को सुनिश्चित करने में प्रभावी पाया जाता है, तो मौजूदा बीज प्रसंस्करण संयन्त्र बड़े पैमाने पर बीजों के उपचार के लिए गाय के गोबर के घोल या सूखे गाय के गोबर की धूल का उपयोग कर सकते हैं। गाय के गोबर में सूक्ष्म पोषक तत्व मौजूद होते हैं। जैव नियन्त्रण को बढ़ावा देने के लिए गाय के सूखे गोबर के पाउडर को मिट्टी में मिलाया जाता है। खनूजा और अन्य (2003) ने एक क्रिस्टलीय 'गोमूत्र आसुत अंश' की पहचान की है जो रोगाणुरोधी गतिविधि को बढ़ाता है। इस अंश को वैज्ञानिक द्वारा पेंटेट भी कराया गया है। चक्रपाणि मिश्र द्वारा संकलित विश्ववल्लभ (1577 ई.) में हर्बल कीटनाशकों के तौर पर गौमूत्र के अर्क के उपयोग की अनुशंसा की गई है, जो खनूजा एवं अन्य (2003) के निष्कर्षों से मेल खाती है (साधले, 2004)। बीजों पर गाय के गोबर के सम्भावित रोगजनक जैव नियन्त्रण में उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

विषैले करौन्दे के पौधे का उपयोग

धान की फसल में पीला तना-छेदक कीट की प्रमुख समस्या होती है। धान के फल आने और फसल के आगे की विकास चरणों में यह कीट हमला करता है। इस कीट का लार्वा पौधे के तने में प्रवेश करता है और आन्तरिक रूप से पौधे को खाता है, अन्तिम भाग (जो पत्ती या पुष्पगुच्छ होता है) तक संवहनी मार्ग को बाधित करता है। इसके परिणामस्वरूप पौधे का वह भाग सूख जाता है और फसल खराब हो जाती है। इस कीट से बचाव के लिए पारम्परिक तौर पर विषैले करौन्दे (क्लीस्टेन्थस कोलिनस) के पौधों की पत्तियों का प्रयोग किया जाता है। इन पत्तियों को पीसकर पानी में घोलकर इसका छिड़काव फसल की रोपाई के

तीन दिन के बाद करने से इन कीटों से बचाव होता है। वर्तमान में इसका प्रयोग पश्चिम बंगाल के किसानों द्वारा किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कई किसानों द्वारा धान के खेत के चारों ओर चारदीवारी के समान विषैले करौन्दे का पौधा लगाया जाता है जो अन्य प्रकार के कीटों से धान की फसलों को सुरक्षा प्रदान करता है।

यदि पौधों की बात करें तो कई ऐसे पौधे पाये जाते हैं जो फसलों के संरक्षण का करते हैं और जिन्हें पारम्परिक रूप से भारतीय किसानों द्वारा प्रयोग किया जा रहा है। इन पौधों में से कुछ पौधों की जानकारी निम्नानुसार है -

जीवाणुरोधी, फफून्दरोधी, कीटनाशक आदि के तौर पर प्रयोग किये जाने वाले पौधे/फल

वच - यह आयुर्वेदिक पौधा है। यह जीवाणुरोधी होता है और इसकी जड़ों का प्रयोग किया जाता है।

बेल - इसका पेड़ भारत के लगभग सभी गांवों में देखा जा सकता है। यह जीवाणुरोधी, फफूँदरोधी गुण पाये जाते हैं।

सफेद सरसों - जीवाणुरोधी

अग्निमाथा - जीवाणुरोधी फफूँदरोधी

हल्दी - रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता

बिडंग - कीटनाशक

हरड़ - कीटनाशक और फफूँदरोधी

हींग - कीटनाशक और फफूँदरोधी

बरगद - जीवाणुरोधी फफूँदरोधी

गूलर - जीवाणुरोधी फफूँदरोधी

मुलेठी - जीवाणुरोधी

तरल खाद

यह सर्वविदित है कि पौधों के अवशेषों से बनी खाद की तुलना में जानवरों के अपशिष्ट से बनी खाद पौधों के लिए बेहतर होती है। पौधे आधारित खाद से खेतों में निष्क्रिय रोगजनकों के फैलने का खतरा हमेशा बना रहता है। इसके अलावा, जानवरों के अपशिष्टों में माइक्रोफ्लोरा होने की सम्भावना अधिक होती है जो पौधों पर आधारित खाद की तुलना में पौधों में रोगजनकों और बीमारियों का बेहतर तरीके से जैव नियन्त्रण कर सकता है।

नीम की गिरी का अर्क

एक एकड़ भूमि के लिए तीन से पाँच किलोग्राम नीम की गिरी की आवश्यकता होती है। इसके उपयोग से पहले बाहरी बीज आवरण को हटाकर दानों को हल्के हाथ से कूटकर मिट्टी के बर्तन में रखते हैं और इसमें 10 लीटर पानी मिला दिया जाता है। बर्तन के मुँह

को कपड़े से बाँध कर उसे तीन दिनों तक अलग स्थान पर रख दिया जाता है और फिर उसे छान कर अलग बर्तन में रखा जाता है। इस प्रकार छानने पर छह-सात लीटर अर्क प्राप्त होता है। इस रसायन की आयु लगभग एक महीने की होती है। इस प्रक्रिया में तीन से आठ माह पुराने बीज का प्रयोग करना चाहिए।

अंडे का अर्क

अंडे के बाहरी आवरण को नीबू और गुड़ के साथ मिलाकर 10 दिन मिट्टी के बर्तन में बन्द कर रखने के बाद इस तरल पदार्थ को पानी में मिलाकर फसलों पर छिड़काव पौधों के लिए तरल खाद का कार्य करता है।

निष्कर्ष

पीढ़ियों से विकसित हुई ये सदियों पुरानी तकनीकें स्थायी और बहुमूल्य हैं और इन्हें विलुप्त होने से बचाया जाना चाहिए। ये पर्यावरण के अनुकूल होने के साथ-साथ खेतों एवं मनुष्यों को हानिकारक रसायनों से भी सुरक्षित रखती हैं। इनके महत्व और क्षमता को ध्यान में रखते हुए इस दिशा में शोधकार्य किया जाना आवश्यक है। इन तकनीकों को पुनर्जीवित करने और इन्हें कृषक समुदाय के बीच वापस लाने में अनुसन्धान संस्थानों और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका को बढ़ाया जाना आवश्यक है। इन तकनीकों का दस्तावेजीकरण कर इन्हें आम समुदाय में प्रचारित किया जाना चाहिए जिससे समुदाय को हानिकारक रसायन रहित खाद्यान्न की प्राप्ति हो सके। दस्तावेजीकरण से यह ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में अपने मूल स्वरूप में हस्तान्तरित होगा। आज इस बात की आवश्यकता है कि इस पारम्परिक ज्ञान को आम लोगों तक पहुँचाया जाए और इसके अनुप्रयोग को बढ़ाया जाए।

आभार

यह शोधपत्र महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ द्वारा प्रदान की गई शोधवृत्ति हेतु प्रस्तुत प्रतिवेदन का एक भाग है।

सन्दर्भ

गणेशमूर्ति, एस. (2000). *इंडिजिनस नॉलेज ऑन पोस्ट हार्वेस्ट प्रैक्टिसेस* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध). कोयम्बटूर : टीएनएयू.

खनुजा, एस.पी.एस., आलोक, के. एवं दरोकर, एम.पी. (2003). साइंटिफिक स्टडीज ऑन यूटिलाइजेशन ऑफ काउ यूरिन एंड इट्स अर्का. राष्ट्रीय संगोष्ठी, कोटा : एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउंडेशन.

कलाइवाणी, एस. (1992). *टेक्नो-कल्चरल प्रोफाइल ऑफ गार्डन लैंड फार्मर्स* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध). कोयम्बटूर : टीएनएयू.

नेने, वाई.एल. (1999). 'सीड हेल्थ इन एंशिएंट एंड मेडीवल हिस्ट्री', *एशियन एग्री-हिस्ट्री*, 3, 157-184.

पडारिया, आर.एन. एवं सिंह, आर.पी. (1990). 'रिस्क एडजस्टमेंट एंड ट्रेडिशनल विज्डम इन ड्राय लैंड फार्मिंग', *इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन,* 26(3-4), 1-7.

फॉस्टर, आर.सी., रोवीरा, ए.डी. एवं कॉक, टी.डब्ल्यू. (1983). *अल्ट्रा-स्ट्रक्चर ऑफ रूट-सॉइल इंटरफेस,* मिनेसोटा : अमेरिकन फाइटोपैथोलॉजिकल सोसाइटी.

रामाराजु, के.वी. (1993). *इंडिजिनस टेक्नोलॉजिकल नॉलेज एंड फैक्टर्स इन्फ्लुएंसिंग ट्रेडिशनल प्रैक्टिसेस* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध). हैदराबाद : आन्ध्र प्रदेश एग्रीकल्चरल यूनिवर्सिटी.

लून, एल.सी.वी., बक्कर, पी.ए.एच.एम. एवं पीटरसे, सी.एम.जे. (1998). 'सिस्टेमिक रेसिस्टेंस इंड्यूस्ड बाय राइजोस्पीयर बैक्टीरिया', *एनुअल रिव्यू ऑफ फाइटोपैथोलॉजी,* 36, 453-483.

साधले, एन. (अनुवादक). (2004). *विश्ववल्लभ (प्लांट लाइफ का विज्ञान).* सिकन्दराबाद : एशियन एग्री-हिस्ट्री फाउंडेशन.

हिरानन्द एवं कुमार, के. (1980). 'फोक बिलीव्स एसोसिएटेड विद ड्राय फार्मिंग', *इंडियन जर्नल ऑफ एक्सटेंशन एजुकेशन,* 16(3-4), 36-42.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 139-151)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

बिहार राज्य में प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) में एनीमिया की व्यापकता एवं आहार उपभोग की आवृत्ति पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव का अध्ययन

आँचल सिंह*

प्रजनन आयु (15-49 वर्ष) की महिलाओं में एनीमिया एक वैश्विक खतरा है। भारत में महिलाओं के आहार पोषण सम्बन्धी जरूरतों को पूरा करने एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को रोकने के लिए आवश्यक पोषण हस्तक्षेप की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उदेश्य बिहार राज्य में प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) में एनीमिया की व्यापकता एवं भोजन आवृत्ति स्कोर पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव का अध्ययन करना है। प्रस्तुत शोध बिहार राज्य के सारण क्षेत्र के छपरा जिले में किया गया था। जिसमें प्रजनन आयु समूह (15-49 वर्ष) की 60 महिलाओं को नमूना यादृच्छिक रूप से चुना गया था। कुल महिलाओं में से 30 नियन्त्रण समूह में और शेष 30 प्रयोगात्मक समूह में थीं। शोधपत्र यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि सभी

*सहायक प्रोफेसर (खाद्य और पोषण), गृह विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)
E-mail: aanchalsingh.singh@gmail.com

प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं के लिए आहार में विविधता और आयरन युक्त खाद्य पदार्थों के सेवन को बढ़ावा देना आवश्यक है ताकि वे बेहतर प्रजनन स्वास्थ्य प्रथाओं और उच्च गुणवत्ता वाली मातृ स्वास्थ्य देखभाल को अपना सकें।

मुख्य शब्द : एनीमिया, महिला स्वास्थ्य, प्रजनन आयु की महिलाएँ, खाद्य आवृत्ति स्कोर, पोषण हस्तक्षेप।

परिचय

एनीमिया एक वैश्विक स्वास्थ्य समस्या है जिसका सामना विश्व के विकासशील देशों के लोग कर रहे हैं (डब्ल्यू.एच.ओ., 2021)। एनीमिया में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या और आकार, या हीमोग्लोबिन की सान्द्रता, एक निर्धारित सीमा से नीचे गिर जाती है (डब्ल्यू.एच.ओ., 2014)। लौह की कमी से होने वाला एनीमिया सबसे प्रचलित प्रकार है। एनीमिया आवश्यक पोषक तत्वों का अपर्याप्त सेवन, जैसे - आयरन, विटामिन बी12 और फोलिक एसिड एवं चाय और कॉफी का अत्यधिक सेवन होता है (सुनुवार एवं अन्य, 2023)। बिहार सरकार ने राज्य स्तर पर महिलाओं में एनीमिया की व्यापकता को कम करने के लिए कई कदम उठाये हैं। बिहार के छपरा जिले में एनीमिया को खत्म करने के लिए और अधिक ठोस प्रयासों की आवश्यकता है। महिलाओं के लिए स्वस्थ भोजन की खपत, बेहतर आर्थिक स्थिति और उच्च शिक्षा पर ध्यान देना महत्वपूर्ण होना चाहिए। साथ ही महिलाओं में एनीमिया के बारे में ज्ञान और जागरूकता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। एनीमिया के उच्च प्रसार वाले छपरा जिले में लक्षित सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को लागू करने से जमीनी स्तर पर इस समस्या को कम किया जा सकता है। एनीमिया एक गम्भीर वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य समस्या है जो विशेष रूप से छोटे बच्चों, मासिक धर्म वाली किशोर लड़कियों और महिलाओं, तथा गर्भवती एवं प्रसवोत्तर महिलाओं को प्रभावित करती है। डब्ल्यू.एच.ओ. का अनुमान है कि दुनिया भर में 6-59 महिने की उम्र के 40 प्रतिशत बच्चे, 37 प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ और 15-49 वर्ष की उम्र की 30 प्रतिशत महिलाएँ एनीमिया से पीड़ित हैं (डब्ल्यू.एच.ओ., 2023)। भारत में, 15-49 वर्ष की आयु की महिलाओं में एनीमिया पुरुषों की तुलना में अधिक है, महिलाओं में यह 57 प्रतिशत और पुरुषों में 25 प्रतिशत है। हालाँकि, 26 प्रतिशत डब्ल्यू.आर.ए. कथित तौर पर हल्के एनीमिक हैं, और 29 प्रतिशत मध्यम एनीमिक हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 के आँकड़ों के अनुसार, भारत में महिलाओं में एनीमिया का प्रचलन 2015-2016 में 23 प्रतिशत से बढ़कर 2019-2021 में 25 प्रतिशत हो गया है। प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं में एनीमिया होने की सम्भावना अधिक होती है क्योंकि वे मासिक धर्म और प्रसव के दौरान रक्त खो देती हैं। मासिक धर्म के दौरान होने वाले आयरन के नुकसान की भरपाई के लिए, सभी प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं को रोजाना आयरन युक्त खाद्य पदार्थ खाने चाहिए। इसलिये, सभी प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं के लिए आहार में विविधता और आयरन युक्त खाद्य पदार्थों के सेवन को बढ़ावा देना आवश्यक है। इसलिये पोषण-विशिष्ट हस्तक्षेपों के साथ-साथ पोषण-संवेदनशील हस्तक्षेपों की भी

आवश्यकता है जो महिलाओं के स्वास्थ्य से सम्बन्धित शैक्षिक स्तर को बढ़ाएँ ताकि वे बेहतर प्रजनन स्वास्थ्य प्रथाओं और उच्च गुणवत्ता वाली मातृ स्वास्थ्य देखभाल को अपना सकें।

आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया के मुख्य कारणों में आयरन का अपर्याप्त सेवन, निरोधात्मक कारकों के कारण पौधों के खाद्य पदार्थों (नरसिंह एवं अन्य, 1983) से आहार आयरन की कम जैव उपलब्धता (1-6 प्रतिशत), आहार में अवशोषण बढ़ाने वाले पदार्थों का निम्न स्तर, बार-बार गर्भधारण, बच्चों और किशोरों में विकास और विकास के दौरान बढ़ी हुई जरूरतें, परजीवी संक्रमण और लगातार खून की कमी शामिल है। आहार आवश्यकताओं और विभिन्न खाद्य पदार्थों के पोषक मूल्य के बारे में ज्ञान की कमी भारत जैसे विकासशील देशों में कुपोषण की व्यापक घटना का मुख्य योगदानकर्ता कारण है। पोषण शिक्षा, जो व्यावहारिक है और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों, खाद्य आदतों और स्थानीय खाद्य संसाधनों के अनुरूप अपनाई जाती है, इस समस्या से काफी हद तक निपट सकती है। इसलिये, वर्तमान अध्ययन भारत के बिहार राज्य के छपरा जिले में पोषण शिक्षा के माध्यम से औसत हीमोग्लोबिन स्तर पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव और प्रसव आयु (15-49 वर्ष) की महिलाओं में एनीमिया की व्यापकता का आकलन करने पर केन्द्रित है।

शोध पद्धति : पोषण हस्तक्षेप की प्रभावशीलता

शोध अध्ययन बिहार राज्य के सारण क्षेत्र के छपरा जिले में किया गया था। प्रजनन आयु समूह (15-49 वर्ष) की 60 महिलाओं का सांख्यिकीय रूप से पर्याप्त नमूना यादृच्छिक रूप से चुना गया था। कुल चयनित महिलाओं में से 30 नियन्त्रण समूह में और शेष 30 प्रयोगात्मक समूह थे। तथ्य संग्रह के विभिन्न पहलुओं पर वांछित जानकारी प्राप्त करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची विकसित की गई थी। गैर-नमूना विषयों पर यादृच्छिक रूप से चुने गये 10 उत्तरदाताओं का पूर्व-परीक्षण करके अनुसूची की विश्वसनीयता और व्यवहार्यता पर काम किया गया। सामान्य जानकारी, जैसे - जाति, परिवार का प्रकार, पारिवारिक आय, आदि से सम्बन्धित जानकारी दर्ज की गई।

शोध कार्य में चयनित प्रजनन आयु वर्ग की महिलाओं ने अपना हीमोग्लोबिन परीक्षण डॉक्टर के परामर्श के अनुसार पोषण हस्तक्षेप से पहले एवं बाद में स्वयं करवाया जिसे शोध निष्कर्षों के समर्थन हेतु एकत्रित, संसाधित और अध्ययन किया गया है।

शैक्षिक सामग्री का विकास

विषयों से प्राप्त जानकारी का उपयोग शैक्षिक सामग्री तैयार करने के लिए किया गया था। समग्र दृष्टिकोण के साथ यह पोषण शिक्षा सामग्री विभिन्न पहलुओं को सम्मिलित करती है, जैसे (1) स्वास्थ्य, पोषण और सन्तुलित आहार (2) एनीमिया : इसके कारण, लक्षण और परिणाम, (3) एनीमिया की रोकथाम के लिए आहार प्रबन्धन, (4) स्वच्छता और सफाई का महत्व। शैक्षिक पुस्तिकाएँ, रेसिपी पुस्तिका और फोल्डर विषयों और कर्मचारियों को वितरित किये गये।

पोषण हस्तक्षेप का कार्यान्वयन

प्रयोगात्मक समूह के विषयों को सन्तुलित आहार, एनीमिया, इसके नियन्त्रण और रोकथाम पर तीन महिने तक 15 दिनों के अन्तराल पर मॉड्यूल, व्याख्यान, चार्ट, पोस्टर और फोल्डर जैसे दृश्य सहायता के रूप में पोषण हस्तक्षेप प्रदान किया गया, जिसके दौरान विषयों को लगातार टेलीफोनिक सलाह के माध्यम से भी सम्पर्क में रखा गया। पूर्व-परीक्षण के बाद, विषयों को मुद्रित सामग्री के साथ पूरक पोषण शिक्षा दी गई। अन्त में प्रयोगात्मक समूह की प्रजनन आयु की महिलाओं के लिए तैयार शैक्षिक सामग्री वितरित करके हस्तक्षेप का समापन किया गया।

चित्र 1

पोषण हस्तक्षेप की प्रभावशीलता के मूल्यांकन की योजनाबद्ध प्रस्तुति

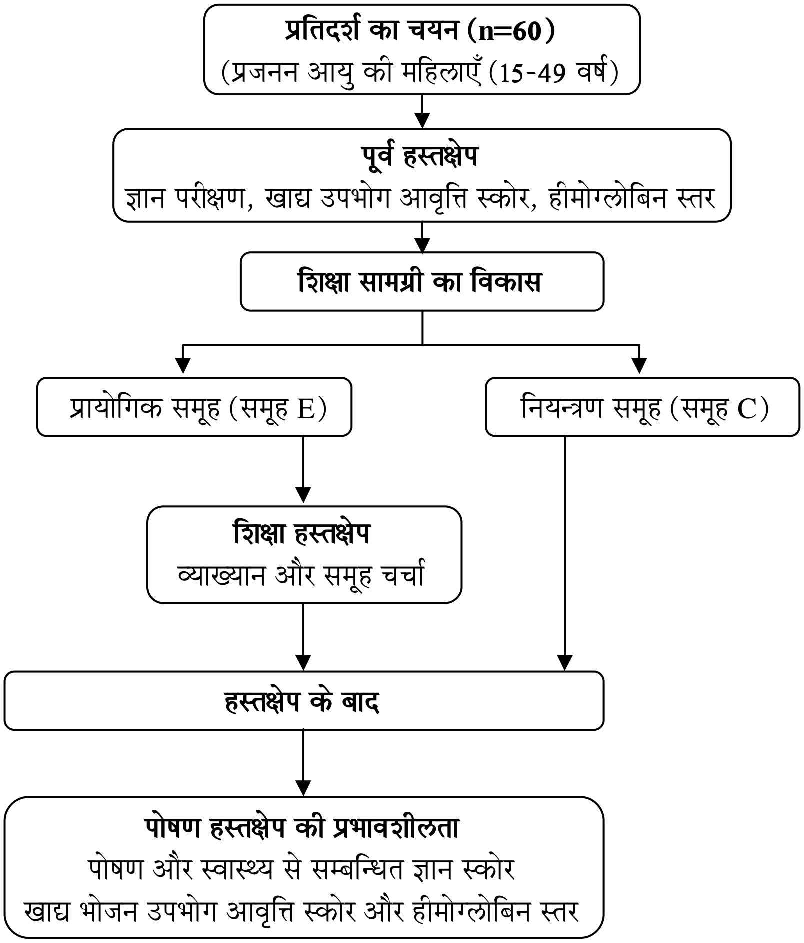

खाद्य पदार्थों के सेवन की आवृत्ति

पिछले एक महिने के लिए रक्त बनाने वाले पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थों की खपत की आवृत्ति के बारे में जानकारी खाद्य आवृत्ति प्रश्नावली का संचालन करके एकत्र की गई थी। भोजन की खपत की आवृत्ति को स्कोर सिस्टम द्वारा मापा गया था, यानी 10 - दिन में तीन बार, 9 - दिन में दो बार, 8 - प्रतिदिन, 7 - सप्ताह में तीन बार, 6 - सप्ताह में दो बार, 5 - साप्ताहिक, 4 - महिने में तीन बार, 3 - महिने में दो बार, 2 - मासिक, 1 - कभी-कभी और 0 - कभी नहीं। प्रत्येक विषय द्वारा उपभोग किये गये प्रत्येक खाद्य पदार्थ के लिए औसत आवृत्ति की गणना की गई थी।

परिणाम और चर्चा

पोषण हस्तक्षेप के लिए चयनित प्रतिदर्श की सामान्य जानकारी

चयनित प्रतिदर्श की सामान्य प्रोफाइल तालिका 1 में प्रस्तुत की गई है। जाति के आधार पर कुल प्रतिदर्श के वितरण से पता चला कि अधिकांश प्रतिदर्श यानी 58.3 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के थे, उसके बाद सामान्य वर्ग (26.7 प्रतिशत) के थे। अधिकांश 60.0 प्रतिशत प्रतिदर्श एकल परिवार शैली में रह रहे थे, जबकि शेष 40.0 प्रतिशत किशोर लड़कियाँ संयुक्त परिवारों से सम्बन्धित थीं, यानी ऐसे परिवार जिनमें दो से अधिक पीढ़ियाँ एक साथ रहती हों।

आँकड़ों से यह भी पता चला कि अधिकांश (75.0 प्रतिशत) प्रजनन आयु की लक्षित महिलाएँ (15-49 वर्ष) विवाहित थीं। आँकड़ों से यह भी पता चला कि अधिकांश 45. 5 प्रतिशत महिलाएँ ₹ 15001-25000 प्रति माह कमाने वाले परिवारों से सम्बन्धित थीं, जबकि 30.9 प्रतिशत किशोर लड़कियाँ ₹ 5000-15000 प्रति माह कमाने वाले परिवारों से सम्बन्धित थीं। हालांकि, अपेक्षाकृत कम प्रतिशत यानी 23.6 प्रतिशत महिलाएँ ₹ 13815-25000 प्रति माह कमाने वाले परिवारों से सम्बन्धित थीं। महिलाओं के व्यवसाय के अनुसार वितरण से पता चला कि अधिकांश महिलाएँ (70.0 प्रतिशत) गृहिणी थीं। अधिकांश उत्तरदाता (68.3 प्रतिशत) शाकाहारी थीं।

तालिका 1

पोषण हस्तक्षेप के लिए प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं की सामान्य प्रोफाइल (n=60)

विवरण	प्रायोगिक समूह (n=30)	नियन्त्रण समूह (n =30)	कुल (n=60)
जाति			
सामान्य	9 (30.0)	7 (23.3)	16 (26.7)
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	16 (53.3)	19 (63.4)	35 (58.3)
एससी	5 (16.7)	4 (13.3)	9 (15.0)
वैवाहिक स्थिति			
विवाहित	25 (83.3)	20 (66.7)	45 (75.0)
अविवाहित	5 (16.7)	10 (33.3)	15 (25.0)

विवरण	प्रायोगिक समूह (n=30)	नियन्त्रण समूह (n =30)	कुल (n=60)
परिवार का प्रकार			
एकल	16 (53.3)	20 (66.7)	36 (60.0)
संयुक्त	14 (46.7)	10 (33.3)	24 (40.0)
पारिवारिक आय (प्रति माह)			
₹ 5000-15000	8 (26.7)	9 (30.0)	17 (30.9)
₹ 15001-25000	12 (40.0)	13 (43.3)	25 (45.5)
₹ 25001 और इससे भी अधिक	5 (16.7)	8 (26.7)	13 (23.6)
महिलाओं की शिक्षा			
अशिक्षित	3 (10.0)	7 (23.3)	10 (16.7)
मैट्रिक	23 (76.7)	17 (56.7)	40 (66.7)
इंटरमीडिएट और इससे भी अधिक	1 (3.3)	1 (3.3)	2 (3.3)
महिलाओं का व्यवसाय			
कामकाजी	10 (33.3)	8 (26.7)	18 (30.0)
गैर-कामकाजी (गृहिणी)	20 (66.7)	22 (73.3)	42 (70.0)
आहार प्रकार			
शाकाहारी	19 (63.3)	22 (73.3)	41 (68.3)
मांसाहारी	11 (36.7)	8 (26.7)	19 (31.7)

कोष्ठक में दिये गये आँकड़े प्रतिशत दर्शाते है।

पोषण हस्तक्षेप के लिए चयनित महिलाओं में एनीमिया की व्यापकता की जानकारी

तालिका 2 में चयनित महिलाओं के औसत हीमोग्लोबिन स्तर पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव को दर्शाया गया है। हीमोग्लोबिन स्तर क्षेत्र स्तर पर एनीमिया का पता लगाने के लिए सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला संकेतक है। इस प्रकार, एनीमिया की जाँच के लिए, डब्ल्यू.एच.ओ. (2001) द्वारा दिये गये एनीमिया के विभिन्न श्रेणियों के वर्गीकरण का उपयोग किया गया था। चयनित महिलाओं का हीमोग्लोबिन स्तर पोषण हस्तक्षेप से पहले और बाद में दर्ज किया गया था। प्रायोगिक समूह में हीमोग्लोबिन का औसत प्रारम्भिक स्तर 9.48±1.12 g/dl था जो काफी हद तक ($p \leq 0.01$) बढ़कर 10.50±1.21 g/dl हो गया जबकि पोषण हस्तक्षेप के तीन महिने बाद नियन्त्रण समूह में हीमोग्लोबिन का औसत प्रारम्भिक स्तर 9.50± 1.20 से 9.85±1.18 g/dl तक गैर-महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा। प्रायोगिक समूह में 1.02 g/dl की महत्वपूर्ण वृद्धि हुई तथा नियन्त्रण समूह में 0.35 g/dl की गैर-महत्वपूर्ण वृद्धि का आकलन किया गया। स्टूडेंट 'टी' परीक्षण ने संकेत दिया कि समूहों (प्रायोगिक बनाम नियन्त्रण समूह) के बीच महत्वपूर्ण अन्तर मौजूद थे। ये परिणाम सज्जन एवं अन्य (2008) के परिणामों के अनुरूप थे, जिसमें बताया गया था कि प्रायोगिक समूह में हीमोग्लोबिन का औसत प्रारम्भिक स्तर 9.76 g/dl था तथा यह बढ़कर 10.54 g/dl हो गया तथा नियन्त्रण समूह का हीमोग्लोबिन स्तर तीन महिने की पोषण शिक्षा के पश्चात् 9.52 से बढ़कर 9.55 g/dl हो गया तथा प्रायोगिक में 0.78 g/dl की महत्वपूर्ण ($p \leq 0.05$) वृद्धि तथा नियन्त्रण समूह में 0.03 g/dl की गैर-महत्वपूर्ण वृद्धि तीन महिने की पोषण शिक्षा के पश्चात् रिपोर्ट की गई।

दोनों समूहों में औसत हीमोग्लोबिन स्तर 12 g/dl (डब्ल्यू.एच.ओ., 2001) के मानक मूल्य से कम था। प्रायोगिक समूह में अत्यधिक महत्वपूर्ण ($p \leq 0.01$) सुधार देखा गया, लेकिन फिर भी स्तर डब्ल्यू.एच.ओ. मानक (2001) से कम थे, जो उनकी एनीमिया स्थिति को दर्शाता है। एनीमिया का कारण उनके आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों और सुरक्षात्मक रक्त बनाने वाले खाद्य पदार्थों का अपर्याप्त सेवन और मांसाहारी भोजन को शामिल न करना और आयरन अवरोधकों (अनाज और चाय) का अधिक सेवन था। पोषण हस्तक्षेप के दौरान महिलाओं को हरी पत्तेदार सब्जियों, विटामिन सी और बीटा कैरोटीन से भरपूर फलों, किण्वित खाद्य पदार्थों और अंकुरित दालों का सेवन बढ़ाने के लिए सिखाया गया, जिसके परिणामस्वरूप प्रायोगिक समूह के हीमोग्लोबिन स्तर में वृद्धि हुई। इसके अलावा, एनीमिया वाले विषयों को डॉक्टर के पर्चे के अनुसार आयरन और फोलिक एसिड की खुराक लेने की सलाह दी गई।

तालिका 2
चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) के औसत हीमोग्लोबिन स्तर पर पोषण हस्तक्षेप का प्रभाव
(n=60)

मापदंड	सन्दर्भ मान (डब्ल्यू.एच.ओ., 2001)	पूर्व परीक्षण	पश्चात् परीक्षण	t-मान
हीमोग्लोबिन	>12 g/dl			
प्रायोगिक समूह (n=30)		9.48±1.12	10.50±1.21	7.09*
नियन्त्रण समूह (n=30)		9.50±1.20	9.85±1.18	0.85^{NS}

सभी मान औसत ± मानक विचलन के रूप में व्यक्त किये गये हैं; * 1 प्रतिशत स्तर पर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण दर्शाता है, जबकि NS असार्थकता को दर्शाता है।

तालिका 3 प्रजनन आयु की लक्षित महिलाओं (15-49 वर्ष) में एनीमिया की व्यापकता पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव को दर्शाती है। यह देखा गया कि पोषण हस्तक्षेप से पहले प्रायोगिक समूह और नियन्त्रण समूह में 20.0 प्रतिशत और 23.3 प्रतिशत महिलाएँ एनीमिया से मुक्त थीं। पोषण हस्तक्षेप से पहले प्रायोगिक समूह में एनीमिया की व्यापकता 80.0 प्रतिशत थी जिसमें 50.0 प्रतिशत हल्की, 33.3 प्रतिशत मध्यम और 16.7 प्रतिशत गम्भीर एनीमिया से पीड़ित महिलाएँ शामिल थीं। वर्तमान अध्ययन में एनीमिया की व्यापकता नियन्त्रण समूह में 76.7 प्रतिशत थी जिसमें 56.5 प्रतिशत हल्की, 34.7 प्रतिशत मध्यम एनीमिया से पीड़ित महिलाएँ शामिल थीं। पोषण हस्तक्षेप के बाद एनीमिया की व्यापकता घटकर 60.0 प्रतिशत हो गई जिसमें 55.5 प्रतिशत हल्की और 38.9 प्रतिशत मध्यम एनीमिया से पीड़ित लड़कियाँ शामिल थीं। प्रायोगिक समूह में 5.6 प्रतिशत महिलाएँ गम्भीर रूप से एनीमिया से पीड़ित पायी गईं। किशोरियों में एनीमिया की व्यापकता तीन महिने के बाद नियन्त्रण समूह (76.7 प्रतिशत) में मामूली रूप से अधिक थी। वर्तमान अध्ययन में एनीमिया की व्यापकता उनके आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों और अन्य रक्त बनाने वाले खाद्य पदार्थों के अपर्याप्त सेवन के कारण हो सकती है। विभिन्न अध्ययनों से प्रजनन आयु की लक्षित महिलाओं (15-49 वर्ष) में एनीमिया की उच्च व्यापकता का पता चला है। भारती एवं अन्य

(2009) ने बताया कि झारखंड में 99.9 प्रतिशत किशोरियाँ (10-19 वर्ष) एनीमिया से ग्रस्त थीं। कबीर एवं अन्य (2010) ने ढाका, बांग्लादेश की 15-19 वर्ष की आयु की पाँच किशोरियों पर एक क्रॉस सेक्शनल अध्ययन किया और उनके आहार पैटर्न और पोषण सम्बन्धी स्थिति की जाँच की, जिसमें उनमें एनीमिया की व्यापकता और इसके बारे में उचित ज्ञान पर विशेष ध्यान दिया गया। लगभग 65 प्रतिशत प्रतिभागियों को एनीमिया के कारणों के बारे में सही जानकारी थी; जबकि क्रमशः 72.3 और 80 प्रतिशत को एनीमिया की रोकथाम और उपचार के बारे में पता था। आश्चर्यजनक रूप से, 73.8 प्रतिशत प्रतिभागियों को आयरन युक्त खाद्य पदार्थों के स्रोतों के बारे में जानकारी नहीं थी।

तालिका 3
प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) में
एनीमिया की व्यापकता पर पोषण हस्तक्षेप का प्रभाव (n=60)

Hb स्तर (g/dl)	प्रयोगात्मक समूह		नियन्त्रण समूह	
	पूर्व परीक्षण (प्रतिशत)	पश्चात् परीक्षण (प्रतिशत)	पूर्व परीक्षण (प्रतिशत)	पश्चात् परीक्षण (प्रतिशत)
गैर एनीमिक (≥12)	6 (20.0)	12 (40.0)	7 (23.3)	6 (20.0)
एनीमिया (<12)	24 (80.0)	18 (60.0)	23 (76.7)	24 (80.0)
हल्का एनीमिया (10-11.9)	12 (50.0)	10 (55.5)	13 (56.5)	15 (62.5)
मध्यम एनीमिया (7-9.9)	8 (33.3)	7 (38.9)	8 (34.7)	7 (29.1)
गम्भीर एनीमिया (<7)	4 (16.7)	1 (5.6)	2 (8.8)	2 (8.4)

कोष्ठक में दिये गये आँकड़े प्रतिशत दर्शाते हैं।

चित्र 2
प्रजनन आयु की चयनित महिलाओं (15-49 वर्ष) में
एनीमिया की व्यापकता पर पोषण हस्तक्षेप का प्रभाव

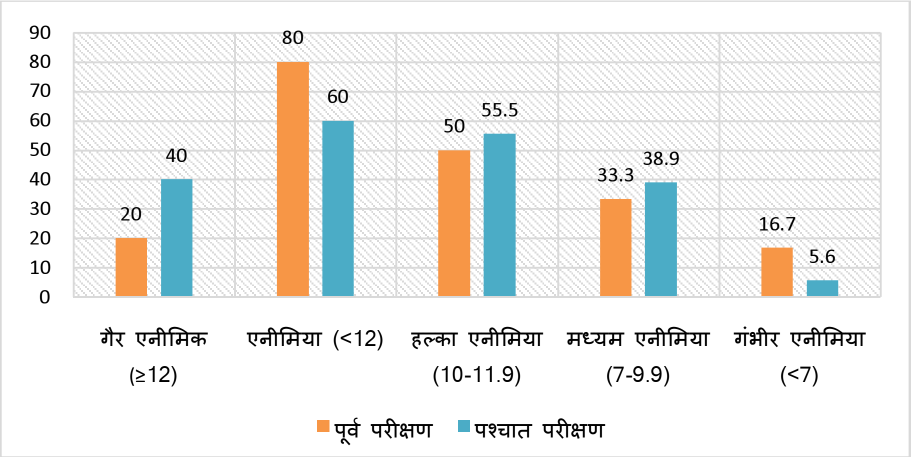

तालिका 4

चयनित महिलाओं में औसत भोजन आवृत्ति स्कोर पर पोषण हस्तक्षेप का प्रभाव (n=60)

खाद्य समूह	नियन्त्रण समूह		प्रयोगात्मक समूह	
	पूर्व परीक्षण	पश्चात् परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्चात् परीक्षण
अनाज और बाजरा				
गेहूँ	8.06	9.20	8.10	9.10
चावल	6.10	6.10	6.00	7.00
श्री अन्न (मिलेट्स)	1.0	1.02	1.53	4.30
दालें और फलियाँ				
हरी मूँग दाल	3.60	3.60	5.43	6.60
चने की दाल	2.87	2.87	2.73	4.63
उड़द की दाल	1.93	1.87	1.07	3.13
अरहर की दाल	4.40	4.50	4.77	6.20
मसूर की दाल	3.11	3.25	3.67	5.21
राजमा	4.57	4.11	4.19	5.30
हरी पत्तेदार सब्जियाँ				
चौलाई के पत्ते	3.20	3.37	3.00	5.00
लाल साग	1.97	2.00	3.15	5.25
बथुआ के पत्ते	2.07	2.17	3.43	4.20
चना के पत्ते	1.97	1.10	1.07	3.40
गोभी	2.30	2.30	3.10	4.20
गाजर के पत्ते	0.53	0.63	0.63	2.37
फूलगोभी का साग	2.40	2.40	2.33	4.97
धनिया के पत्ते	6.33	6.40	6.63	9.40
करी पत्ता	0.70	0.60	1.00	2.73
ड्रम स्टिक के पत्ते	0.80	0.90	1.27	3.50
मेथी के पत्ते	3.70	3.13	3.90	7.47
पुदीना	1.77	1.93	1.43	3.53
सरसों के पत्ते	1.47	1.63	1.27	4.73
प्याज के डंठल	3.00	3.10	3.37	5.43
मूली के पत्ते	3.33	3.33	3.47	6.57
पालक	5.97	5.97	5.00	7.90
मांस और मुर्गी				
अंडे	3.53	2.53	5.17	6.14
मछली	3.43	3.63	3.80	5.37
मांस और मुर्गी	3.70	3.03	3.07	5.67
दूध और दूध से बने उत्पाद				
दूध	6.27	6.77	6.57	8.01
दही	4.10	4.27	5.17	7.33
लस्सी/छाछ	2.60	2.93	3.00	4.47
पनीर/पनीर	2.17	2.47	2.87	4.47

खाद्य समूह	नियन्त्रण समूह		प्रयोगात्मक समूह	
	पूर्व परीक्षण	पश्चात् परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्चात् परीक्षण
फल				
आंवला	1.97	1.87	3.37	4.63
सेब	1.50	1.50	2.97	4.80
केला	3.70	3.15	4.57	6.33
अंगूर	1.03	1.03	1.51	3.17
अमरूद	3.25	2.80	3.33	5.09
नींबू	5.30	5.40	5.00	6.83
सन्तरा	1.33	1.53	3.83	5.03
पपीता	2.73	1.83	2.91	4.30
अनानास	1.50	1.63	1.67	2.81
अनार	1.23	1.23	1.43	3.93
पका आम	1.87	1.87	1.57	2.00
टमाटर (पका हुआ)	7.20	6.50	6.00	8.00
मेवे और तेल के बीज				
बादाम	3.15	3.50	4.03	6.30
खुबानी	1.07	1.07	1.50	2.60
काजू	2.07	2.07	2.03	3.10
नारियल	1.30	1.50	3.07	4.03
खजूर	1.40	1.50	1.60	2.57
मूँगफली	3.00	3.07	3.87	5.30
किशमिश	4.87	4.87	4.93	6.40
अखरोट	1.70	1.83	3.87	4.30
पेय पदार्थ				
चाय	7.13	7.60	7.27	6.13
कॉफी	2.13	3.13	5.11	4.73

अंक प्रणाली : 10 - दिन में तीन बार, 9 - दिन में दो बार, 8 - प्रतिदिन, 7 - सप्ताह में तीन बार, 6 - सप्ताह में दो बार, 5 - साप्ताहिक, 4 - माह में तीन बार, 3 - माह में दो बार, 2 - मासिक, 1 - कभी-कभार और 0 - कभी नहीं।

तालिका 4 में प्रस्तुत तथ्यों ने विभिन्न खाद्य समूहों के औसत आहार विविधता स्कोर पर पोषण हस्तक्षेप के प्रभाव को स्पष्ट किया। भरपूर मात्रा में अनाज खाना आहार सम्बन्धी दिशा-निर्देशों का एक प्रमुख घटक है, क्योंकि वे कार्बोहाइड्रेट, आहार फाइबर और प्रोटीन का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं। पोषण हस्तक्षेप से पहले गेहूँ और चावल की खपत का औसत आवृत्ति स्कोर नियन्त्रण और प्रयोगात्मक समूह में 8.06 और 8.10 और 9.20 और 9.10 रिपोर्ट किया गया। गेहूँ का सेवन चपाती, पराँठा, पूरी, दलिया और ब्रेड के रूप में पाया गया। बाजरे के मामले में जई, ज्वार, बाजरा, रागी और कोदो की खपत पोषण हस्तक्षेप से पहले नियन्त्रण और प्रयोगात्मक समूह में 1.00 - 1.53 और बाद में 1.02 - 4.30 पायी गई। मुख्य भोजन (गेहूँ और चावल) का सेवन चयनित महिलाओं द्वारा अक्सर किया जाता था क्योंकि

गेहूँ और चावल बिहार के किसानों द्वारा उगाई जाने वाली प्रमुख फसलें हैं उपर्युक्त परिणाम चाको और बेगम (2007) के अध्ययन की पुष्टि करते हैं, जिसमें पता चला है कि मध्यम आय वाले परिवारों से चयनित विषयों के एक बड़े हिस्से द्वारा अनाज और अनाज उत्पादों का अक्सर सेवन किया जाता था। आँकड़ों के अवलोकन से यह पाया गया कि पोषण हस्तक्षेप से पहले दाल और फलियों, जैसे - मूँग दाल, चना दाल, उड़द दाल, अरहर दाल, मसूर दाल और राजमा की कुल खपत नियन्त्रण समूह में 3.60, 2.87, 1.93, 4.40, 3.11 और 4.57 थी और प्रयोगात्मक समूह में यह क्रमश: 5.43, 2.73, 1.07, 4.77, 3.67 और 4.19 थी। पोषण हस्तक्षेप के बाद प्रयोगात्मक समूह की किशोरियों द्वारा दाल और फलियों की खपत में सुधार देखा गया (6.60, 4.63, 3.13, 6.20, 5.21 और 5.30)। भारत में उष्णकटिबन्धीय, उपोष्णकटिबन्धीय और समशीतोष्ण जलवायु के लिए उपयुक्त पत्तेदार सब्जियों की एक शृंखला है, जिन्हें पूरे वर्ष उगाया जा सकता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदतन आहार का एक उत्कृष्ट घटक हैं। हरी पत्तेदार सब्जियाँ कई महत्वपूर्ण पोषक तत्वों का सबसे सस्ता स्रोत मानी जाती हैं। पत्तेदार सब्जियाँ इसलिये पसन्द की जाती हैं क्योंकि वे न केवल सुरक्षात्मक पोषक तत्व प्रदान करती हैं और एक नीरस आहार में विविधता लाती हैं, बल्कि इनका स्वाद, दिखने में भी अच्छा और सुगन्ध भी अलग होती है। पोषण हस्तक्षेप के बाद प्रायोगिक समूह में पालक की खपत की आवृत्ति अधिकतम (7.90) पायी गई, जो सप्ताह में तीन बार तक थी, जबकि नियन्त्रण समूह में पोषण हस्तक्षेप से पहले और बाद में कोई बदलाव (5.97) नहीं देखा गया। प्रयोगात्मक समूह में पोषण हस्तक्षेप से पहले चौलाई के पत्ते (3.15), बथुआ के पत्ते (3.43), लाल साग (3.15) और चने के पत्ते (1.07) के सेवन की आवृत्ति महिने में एक से दो बार के बीच थी, जो पोषण हस्तक्षेप के बाद क्रमश: 5.00, 4.20, 5.25 और 3.40 तक सुधर गई। जबकि नियन्त्रण समूह में पोषण हस्तक्षेप के बाद चौलाई के पत्ते (3.37), बथुआ (2.17), लाल साग (2.0) और चने के पत्ते (1.10) के आवृत्ति स्कोर में मामूली सुधार हुआ जो क्रमश: 3.20, 2.07, 1.97 और 1.97 था। प्रयोगात्मक समूह में पोषण हस्तक्षेप से पहले और बाद में सभी हरी पत्तेदार सब्जियों के पत्तों के सेवन की आवृत्ति सबसे अधिक दर्ज की गई। अधिकांश महिलाओं द्वारा धनिया के पत्तों का उपयोग चटनी के रूप में, अन्य सब्जियों के साथ और दाल में किया गया। पोषण हस्तक्षेप के बाद, प्रायोगिक समूह की हरी पत्तेदार सब्जियों की खपत में सुधार पाया गया। हरी पत्तेदार सब्जियों की मौसमी उपलब्धता को हरी पत्तेदार सब्जियों की कम खपत के पीछे एक कारण माना जा सकता है। नियन्त्रण समूह की महिलाओं द्वारा अंडा, मछली खाने की औसत आवृत्ति 3.53 और 3.47 बताई गई जबकि प्रयोगात्मक समूह में पोषण हस्तक्षेप से पहले यह 5.17 एवं 3.80 पायी गई। हस्तक्षेप के बाद प्रयोगात्मक समूह की महिलाओं द्वारा अंडा, मछली और मांस की खपत में वृद्धि बताई गई हालांकि, नियन्त्रण समूह द्वारा कोई परिवर्तन नहीं हुआ। मांस, मछली और मुर्गी की कम खपत दर्ज हुई क्योंकि महिलाएँ शाकाहारी थीं। आँकड़ों से यह भी पता चला कि पोषण हस्तक्षेप के बाद प्रयोगात्मक समूह की किशोरियों द्वारा दूध की खपत की औसत आवृत्ति अधिक थी।

सारांश और निष्कर्ष

पोषण हस्तक्षेप से पहले दाल और फलियों, जैसे - हरी मूँग दाल, चना दाल, उड़द की दाल, अरहर की दाल, मसूर की दाल और राजमा की खपत नियन्त्रण समूह में 3.60, 2.87, 1.93, 4.40, 3.11 और 4.57 के रूप में भिन्न थी और प्रयोगात्मक समूह में यह क्रमश: 5.43, 2.73, 1.07, 4.77, 3.67 और 4.19 थी। पोषण हस्तक्षेप के बाद प्रयोगात्मक समूह की महिलाओं द्वारा दाल और फलियों की खपत में सुधार देखा गया (6.60, 4.63, 3.13, 6.20, 5.21 और 5.30)। पोषण हस्तक्षेप के बाद प्रायोगिक समूह में पालक की खपत की आवृत्ति (7.90) पायी गई, जो सप्ताह में दो बार से लेकर साप्ताहिक तक थी, जबकि नियन्त्रण समूह में पोषण हस्तक्षेप से पहले और बाद में कोई परिवर्तन (5.97) नहीं देखा गया। पोषण हस्तक्षेप महिलाओं के भोजन आवृत्ति स्कोर और हीमोग्लोबिन स्तर में सुधार करने में प्रभावी साबित हुआ। पोषण शिक्षा किशोरियों में आयरन की कमी से होने वाले एनीमिया से निपटने के लिए महत्वपूर्ण रणनीतियों में से एक हो सकती है, जिसमें हेमोपोइटिक पोषक तत्वों और हरी पत्तेदार सब्जियों के सेवन के महत्व पर जोर दिया जाता है जो आयरन और सूक्ष्म पोषक तत्वों का उत्कृष्ट स्रोत है। इसलिये एनीमिया और इसकी व्यापकता, कारणों और परिणामों पर पोषण शिक्षा को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। आबादी की सूक्ष्म पोषक स्थिति को बढ़ाने के लिए सबसे टिकाऊ दृष्टिकोण खाद्य-आधारित रणनीतियाँ हैं, जिनमें खाद्य उत्पादन, आहार विविधीकरण और खाद्य सुदृढ़ीकरण शामिल हैं।

सन्दर्भ

भारती, पी., शोमे, एस., चक्रवर्ती, एस., भारती, एस. एवं पाल, एम. (2009). 'भारत में किशोरियों के बीच एनीमिया का बोझ और उसके सामाजिक-आर्थिक निर्धारक', *फूड एंड न्यूट्रिशन बुलेटिन,* 30, 217-226.

चाको, एम. एवं बेगम, के. (2007). 'मध्यम आय वर्ग के परिवारों की किशोरी लड़कियों में खाने की आदतें और पोषक तत्वों का सेवन', *इंडियन जर्नल ऑफ न्यूट्रिशन एंड डायटेटिक्स,* 44, 367-373.

कबीर, वाई., शाहजलाल, एच.एम., सालेह, एफ. एवं ओबैद, डब्ल्यू. (2010). 'बांग्लादेश की शहरी किशोरी कॉलेज लड़कियों में आहार पैटर्न, पोषण स्थिति, एनीमिया और एनीमिया-सम्बन्धी ज्ञान', *जर्नल ऑफ पाकिस्तानी मेडिकल एसोसिएशन,* 60, 633-638.

नरसिंह राव, बी.एस., विजयसरथी, सी. एवं प्रभावती, टी. (1983). 'भारतीयों के सामान्य आहार से लोहा (आयरन) का अवशोषण, एक्स्ट्रिंसिक टैग तकनीक द्वारा अध्ययन', *इंडियन जर्नल ऑफ मेडिकल रिसर्च,* 77, 648-657.

सज्जन, जे.टी. (2008). *ग्रामीण किशोरी लड़कियों में हरी पत्तेदार सब्जियों की खपत का पैटर्न और पोषण शिक्षा का हीमोग्लोबिन स्थिति पर प्रभाव* (एम.एससी. थीसिस). कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, धारवाड़.

सुनुवार, डी.आर., सिंह, डी.आर., प्रधान, पी.एम.एस., श्रेष्ठ, वी., राय, पी. एवं शाह, एस.के. (2023). 'दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के बच्चों में एनीमिया से सम्बन्धित कारक : एक बहु-स्तरीय विश्लेषण', *बीएमसी पब्लिक हेल्थ,* 23, 1-17. https://doi.org/10.1186/s12889-023-15265-y

भारत राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (एनएफएचएस-5). (2022). *एनएफएचएस-5 2019-2021.* ऑनलाइन प्रकाशित.

डब्ल्यू.एच.ओ. (2001). 'आयरन डेफिशिएंसी एनीमिया : मूल्यांकन, रोकथाम और नियन्त्रण', *कार्यक्रम प्रबन्धकों के लिए मार्गदर्शिका* (पृ. 3). जेनेवा : विश्व स्वास्थ्य संगठन.

डब्ल्यू.एच.ओ. (2014). *वैश्विक पोषण लक्ष्य 2025 : एनीमिया नीति सारांश.*

डब्ल्यू.एच.ओ. (2021). *एनीमिया : एक अवलोकन.*

डब्ल्यू.एच.ओ. (2023). *एनीमिया.* https://www.who.int/health-topics/anaemia#tab=tab_1

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 152-158)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

माध्यमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में निहित मूल्यों का विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता पर प्रभाव

परमानन्द त्रिपाठी* एवं शालू तिवारी†

प्रस्तुत शोधपत्र माध्यमिक स्तर की पुस्तकों में निहित मूल्यों का विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता पर प्रभाव पर आधारित है। मूल्यों से व्यक्तित्व का समन्वित विकास होता है। मूल्य के अन्तर्गत मनुष्य की धारणाएँ, विचार, आकांक्षा, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था, आदि समाहित है। मूल्य शिक्षा मानसिक आवश्यकताओं को पूरा करने मे सक्षम है। विद्यार्थी, अभिभावक, शिक्षक या समाज के हर व्यक्ति के जीवन में उतार-चढ़ाव वाली परिस्थितियाँ आती रहती है। ऐसी स्थिति में समायोजन का गुण ही व्यक्ति को इन परिस्थितियों से पार पाने में समर्थ बनाता है। शिक्षा को मानव चेतना के विकास से सीधे जोड़ने की महती आवश्यकता है। विद्यार्थियों में समायोजन का गुण विकसित हो इसके लिए पाठ्यपुस्तकों में मूल्यों का समावेश सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द : समायोजन, मूल्य शिक्षा, व्यक्तित्व, समन्वित विकास।

---

*सह आचार्य, शिक्षक शिक्षा क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, अजमेर (राज.). **E-mail: dr.paramanandtripathi@gmail.com**
†सहायक आचार्य, पाठ्यचर्या अध्ययन एवं विकास विभाग, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली. **E-mail: dr.shalutiawri@gmail.com**

प्रस्तावना

मूल्य आदर्शों की वह श्रृंखला है जो मनुष्यों के लिए एक प्रेरक शक्ति का कार्य करती है। यह ऐसी अवधारणा, संहिता या सद्‌गुण है जिससे व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण कर इसके माध्यम से अपने समग्र का विकास करता है। शिक्षा, संस्कृति एवं मूल्यों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। प्रत्येक समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं ज्ञान-विज्ञान के संरक्षण और संवर्धन हेतु शिक्षा की व्यवस्था करता है। शिक्षा के माध्यम से नयी पीढ़ी को ज्ञान, विज्ञान, नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों, परम्पराओं अर्थात् संस्कृति का हस्तान्तरण किया जाता है, साथ ही उसे भविष्य की चुनौतियों का सामना करने हेतु योग्य बनाने का प्रयास किया जाता है। किसी भी देश या समाज का विकास उसकी सांस्कृतिक अक्षुण्णता पर निर्भर करता है, जिसे बनाये रखने के लिए सर्वाधिक सशक्त माध्यम शिक्षा है, जिसका मूल्यपरक होना अनिवार्य है।

मूल्य आधारित शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अभिन्न अंग है। इस नीति का उद्देश्य 21वीं सदी की जरूरतों के अनुकूल स्कूलों की शिक्षा को अधिक समग्र और लचीला बनाते हुए भारत को एक ज्ञान आधारित जीवन्त समाज और ज्ञान की वैश्विक महाशक्ति में बदलने और प्रत्येक विद्यार्थी में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाना है। इसके लिए नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों, जैसे - सहानुभूति, दूसरों के लिए सम्मान की भावना, शिष्टाचार, लोकतान्त्रिक भावना, सेवा-भाव, सार्वजनिक सम्पत्ति के लिए सम्मान, वैज्ञानिक चिन्तन, स्वतन्त्रता, जिम्मेदारी, बहुलतावाद, समानता और न्याय को पाठ्यक्रम में स्थान देना राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मूल सिद्धान्त में निहित है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी मूल्यों की बात करते हुए यह माना है कि मूल्य आधारित शिक्षा राष्ट्र की सभी प्रकार की प्रचलित कट्टरता, दुर्भावना, हिंसा, बेईमानी, भ्रष्टाचार, शोषण और नशीली दवाओं के दुरुपयोग से लड़ने में मदद करती है।

शिक्षा जहाँ एक तरफ मूल्यों के माध्यम से संस्कृति से अपनी आधारभूत सामग्री प्राप्त करती है तो वहीं संस्कृति, मूल्य शिक्षा के माध्यम से अपनी प्रणवता बनाए रखती है। संक्षेप में संस्कृति एवं मूल्यपरक शिक्षा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। वस्तुत: मूल्य ही मानवीय संगठन का सार है। इसका निर्माण अनेक सूत्रों से होता है। परिवार समाज तथा विद्यालय ऐसी जगह हैं जहाँ से बालक मूल्यों को ग्रहण करता है, ये मूल्य ही उनके जीवन को सफलतापूर्वक जीने मे सहायक होते हैं। कभी-कभी उनकी इच्छा और सोच के विपरीत कार्य या व्यवहार उसके समक्ष उपस्थित होने पर उसे समायोजन करने में कठिनाई आती है, फलत: तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इससे मुक्त होने के लिए वह या तो उस कार्य या व्यवहार को उसी रूप में स्वीकार करने का प्रयास करता है या उसे अपने अनुरूप बनाने या ढालने का प्रयास करता है। प्रयास मे असफलता पीड़ादायक होती है तथा उसे मानसिक रूप से विचलित करती है। ऐसी स्थिति मे मूल्यों की प्रगाढ़ता ही उसे इन विपरीत परिस्थितियों से बाहर निकलने मे समर्थ बनाती है। यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या बालक तथा बालिका के मूल्यों

की ग्राह्यता क्षमता एवं समायोजन क्षमता में कोई भिन्नता पायी जाती है? एवं क्या मूल्य शिक्षा के अध्ययन से बालक-बालिका के समायोजन क्षमता में सुधार का स्तर पाया जाता है? मूल्य शिक्षा आधारित पाठ्यपुस्तकों का विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता पर प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन किया गया है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समायोजन पर पाण्डेय (2017) द्वारा किये गये अध्ययन में उन्होंने स्पष्ट किया कि प्रत्येक समाज में अपने आदर्श एवं मूल्य होते हैं और उसमें रहने वाले सभी मनुष्य उन सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शो के अनुरूप जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन जब कोई समाज रूढ़िवादी हो जाता है और समाज की परिस्थितियों में परिवर्तन नहीं होता है तो उस समाज में व्यक्तियों से समायोजन प्राप्त करना कठिन हो जाता है। एक अध्यापक के सन्दर्भ में समायोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि अपनी सामाजिक और व्यवसायिक भूमिका के लिए उसका अपनी संस्था के साथ सामंजस्य होना आवश्यक होता है।

आधुनिक प्रौद्योगिकी शिक्षा एवं मानवीय मूल्य पर भारती (2018) द्वारा किये गये अध्ययन में इंगित किया गया है कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में भौतिक एवं मानवीय मूल्यों के सामंजस्य को महत्व दिया गया है क्योंकि दोनों के समागम से ही विकास सम्भव है। मानव जीवन में मूल्य का जब असन्तुलन होता है तब मानव समाज विनाश की ओर अग्रसर होता है। आज भौतिकवाद के कारण लोग मानवीय मूल्य से विमुख होते जा रहे हैं। अत: शिक्षा को मूल्यपरक एवं व्यवहारपरक बनाया जाना आवश्यक है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भारतीय मूल्यों की प्रासंगिकता पर श्रीवास्तव (2018) के अध्ययन में कहा गया कि प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन में निहित ज्ञान एवं विज्ञान, विद्या एवं अविद्या, परा एवं अपरा विद्या का विशेष महत्व है। इसे आधुनिक शिक्षा में समाहित कर शैक्षिक प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता है। सामाजिक संस्थानो में ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों पक्षों में मूल्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए।

विभिन्न पाठ्यक्रमों के स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की शिक्षा का आधुनिकता पर पड़ने वाले प्रभाव का जैन (2019) ने अध्ययन किया, जिसमें उन्होंने पाया कि स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों में आधुनिकता अधिक है। इस आधार पर उनके द्वारा कहा गया कि शैक्षिक वृद्धि के फलस्वरूप शिक्षा आधुनिकता को सार्थक रूप से प्रभावित करती है। आधुनिकता के घटकों परानुभूति, लक्ष्यों की स्पष्टता, लक्ष्यों का एकत्रीकरण, उपलब्धि अभिप्रेरणा, धर्मनिरपेक्षता, तर्कपूर्ण उद्देश्य, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अनुशासन, उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी घटकों में दोनों स्तर के विद्यार्थियों में समानता पाई गयी, जिसके आधार पर कहा गया कि शिक्षा आधुनिकता की ओर ले जाने में सक्षम है।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

वर्तमान समय में भौतिकवाद, आधुनिक औद्योगिक विकास एवं नगरीकरण के कारण मानव जीवन में भी परिवर्तन हुआ है और समाज में हिंसा, अराजकता, भ्रष्टाचार आदि में वृद्धि दिखाई पड़ती है, जिससे मूल्यों में गिरावट आ रही हैं और मानव जीवन में समायोजन क्षमता प्रभावित हो रही है। इसका मुख्य कारण नैतिकता-अनैतिकता के बीच अन्तर करने की विवेकशक्ति का क्षीण होना है। आधुनिक समाज में लोभ, भय, अशान्ति, निराशा, स्वार्थ, ईर्ष्या, अवसरवादिता, चाटुकारिता, आदि में वृद्धि तथा कर्तव्यपरायणता, ईमानदारी, त्याग, सहिष्णुता आदि का लोप होने लगा है जिसके परिणामस्वरूप मानसिक सन्तुलन बिगड़ रहा है और अशान्ति बढ़ रही है। अत: मानव के मानसिक विकास के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व का भी विकास करने और समृद्ध और सुखमय राष्ट्र की संकल्पना सिद्ध करने के लिए मानवीय मूल्यों को संरक्षित और संवर्धित किये जाने की आवश्यकता है। शिक्षा ही इसके लिए सबसे सशक्त माध्यम है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा को पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए मूलभूत आवश्यकता मानती है और कहती है कि शिक्षा से चरित्र निर्माण होना चाहिए, शिक्षार्थियों में नैतिकता, तार्किकता, करुणा और संवेदनशीलता विकसित होनी चाहिए। इसके लिए उनके पाठ्यक्रम में संस्कृति और मूल्य का समावेश आवश्यक रूप से किया जाना चाहिए।

नि:सन्देह हमारी शिक्षा का उद्देश्य मूल्यपरक है किन्तु इन उद्देश्यों की पूर्ति अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो पा रही है। यही कारण है कि हमारे नैतिक, मानवीय और सांस्कृतिक मूल्य कमजोर हो रहे हैं। बढ़ती हुई उपभोक्तावादी संस्कृति में जहाँ स्थान की दूरियाँ कम हो रही हैं, वहीं मानव और मानव के बीच की दूरी बढ़ती जा रही है। मस्तिष्क का विकास तो निश्चित रूप से हुआ है किन्तु मानवीय मूल्यों की दृष्टि से सोच का दायरा संकीर्ण होता जा रहा है। मूल्य का सम्बन्ध आस्था और विश्वास से होता है जिन्हें सीखा नहीं बल्कि जिया जाता है। आज विद्यालयों में नैतिक शिक्षा पढ़ायी तो जा रही है किन्तु विविध कारणों से नैतिकता का ह्रास भी जारी है। परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में सहनशीलता, सकारात्मक दृष्टिकोण, समझ, सहानुभूति, सहयोग की भावना, आत्मनियन्त्रण और अनुशासन, आदि की कमी देखी जा रही है। ऐसी स्थिति में शिक्षा की विषयवस्तु, पद्धति एवं प्रणाली पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।

विधि एवं प्रक्रिया

प्रतिदर्श : प्रस्तुत अध्ययन पाठ्यपुस्तकों में निहित मूल्यों का विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता पर प्रभाव के अध्ययन हेतु किया गया है। इस हेतु प्रस्तुत अध्ययन के लिए दयानन्द एंग्लो वैदिक पब्लिक स्कूल कोटवाँ रोड, बनकट, मोतीहारी, पूर्वी चम्पारण, बिहार तथा उच्च माध्यमिक विद्यालय बरियारपुर, मोतीहारी, पूर्वी चम्पारण बिहार के कक्षा 8 के विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया, जिसमें दयानन्द एंग्लो वैदिक पब्लिक स्कूल - जहाँ मूल्य शिक्षा (नैतिक शिक्षा) की पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ाई जाती है - से 20 विद्यार्थियों

को लिया गया एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय - जहाँ मूल्य शिक्षा (नैतिक शिक्षा) की पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम के रूप में नहीं पढ़ाई जाती है - से भी 20 विद्यार्थियों को लिया गया।

तालिका 1
प्रतिदर्श विवरण

प्रतिदर्श समूह	बालक	बालिका	योग
नियन्त्रित समूह	10	10	20
प्रायोगिक समूह	10	10	20
योग	20	20	40

शोध सामग्री : मूल्य शिक्षा का विद्यार्थियों के समायोजन पर प्रभाव के मापन हेतु स्वनिर्मित समायोजन सूची का प्रयोग किया गया, जिसमें दोनों विद्यालय के कक्षा 8 के विद्यार्थियों को वर्तमान दैनिक परिस्थितियों में समायोजन क्षमता से जुड़े प्रश्न दिये गये थे। इस प्रपत्र में कुल 42 प्रश्न दिये गये थे ।

प्रदत्त विश्लेषण : प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर की पाठ्यपुस्तकों में निहित मूल्यों का विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। चार उपसमूहों के मध्यमान प्राप्तांक तालिका 2 में प्रस्तुत किये गये हैं।

तालिका 2
समायोजन पर प्रभाव के सारगर्भित तथ्य

अवस्थाएँ	बालक	बालिका
नियन्त्रित	N=10	N=10
	M1=18	M2=21.5
	$Ex1^2$=168	$Ex2^2$=42.50
प्रायोगिक	N=10	N=10
	M3=25	M4=29.5
	$Ex3^2$=80	$Ex4^2$=96.5

तथ्य विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में विद्यार्थियों के समायोजन क्षमता पर जहाँ मूल्य शिक्षा की पुस्तक पाठ्यक्रम के रूप मे नहीं पढ़ायी जा रही है, उस विद्यालय के विद्यार्थियों की तुलना में जिस विद्यालय में मूल्य शिक्षा की पुस्तक पाठ्यक्रम के रूप में पढ़ायी जा रही है, मूल्य शिक्षा के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता पर बेहतर वर्धन का प्रभाव देखा गया है। प्रस्तुत अध्ययन के लिए 40 विद्यार्थियों का चयन किया गया था। इस शोध के लिए विद्यार्थियों के चयन में इस बात का विशेष ध्यान रखा गया कि विद्यार्थी समान उम्र, समान कक्षा एवं समान क्षेत्र और परिवेश के हों। इसी को ध्यान में रखते हुए विद्यार्थियों का चयन

किया गया था। जिसमें लिंग भिन्नता के आधार पर प्रभाव के अध्ययन हेतु भी 20 विद्यार्थियों में से 10 बालक और 10 बालिकाओं का चयन दोनों विद्यालयों में किया गया था। अर्थात् 40 विद्यार्थियों मे 20 बालक और 20 बालिकाओं का चयन किया गया था। प्रथम समस्या कथन के अनुसार यह उपकल्पना की गयी है कि मूल्य शिक्षा के अध्ययन के पश्चात् एवं अध्ययन के अभाव में विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता पर भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त होंगे। अर्थात् मूल्य शिक्षा का अध्ययन पाठ्यक्रम के रूप में नहीं करने वाले विद्यार्थी मूल्य शिक्षा आधारित पाठ्यपुस्तक का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की तुलना में अधिक न्यूनता समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगे। जबकि मूल्य शिक्षा आधारित पाठ्यपुस्तक का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी मूल्य शिक्षा का अध्ययन नहीं करने वाले विद्यार्थियों की तुलना में अधिक वर्धन समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगे। औसत प्राप्तांक के आधार पर यह उपकल्पना आंशिक रूप से सत्य प्रतीत हो रही थी। इस सन्दर्भित उपकल्पना को एक अनुपात की गणना से प्राप्त परिणाम के आधार पर स्वीकृत कर लिया गया। द्वितीय शोध समस्या कथन के अनुसार यह उपकल्पना की गयी कि मूल्य शिक्षा आधारित पाठ्यपुस्तकों का अध्ययन नहीं करने वाले छात्र (बालक) छात्राओं (बालिकाओं) की तुलना में अधिक न्यूनता समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगे जबकि छात्राएँ (बालिकाएँ) छात्रों (बालकों) की तुलना में अधिक बेहतर वर्धन समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगी एवं मूल्य शिक्षा आधारित पुस्तक के अध्ययन के पश्चात् छात्र (बालक) छात्राओं (बालिकाओं) की तुलना में अधिक न्यूनता समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगे जबकि छात्राएँ (बालिकाएँ) छात्रों (बालकों) की तुलना में बेहतर वर्धन समायोजन क्षमता का प्रदर्शन करेंगी। यह उपकल्पना औसत प्राप्तांक के आधार पर आंशिक रूप से सत्य प्रतीत हो रही थी। इस सन्दर्भित उपकल्पना को एक अनुपात की गणना से प्राप्त परिणामों के आधार पर स्वीकृति प्राप्त की गई।

मूल्य शिक्षा आधारित पाठ्यक्रम की आवश्यकता

मूल्य शिक्षा के अपने प्रयासों, उनके परिणामों एवं लाभान्वित वर्ग के मूल्यांकन से स्पष्ट है कि मूल्य शिक्षा को औपचारिक पाठ्यक्रम की पुस्तकों में शामिल करने से इसके निम्नलिखित दूरगामी परिणाम प्राप्त होंगे -

- विद्यार्थी देश के भविष्य हैं और वे ही विकास के ध्वजवाहक हैं। मूल्य शिक्षा के आलोक में विकास की यह यात्रा सन्तुलित होगी।
- मूल्य शिक्षा से सिंचित विद्यार्थी सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने हेतु अपने योगदान को समझ कर स्वयं ही जिम्मेदारी से प्रयास करेंगे।
- विद्यालयों में सहभागिता, सहयोग, स्व-अनुशासन एवं सृजनात्मक उत्साह का माहौल रहेगा।
- शिक्षित युवा प्रकृति और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी एवं भूमिका के प्रति सजग होकर देश के समावेशी विकास में महत्वपूर्ण योगदान देने मे सहायक बनेंगे।

मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों को परिवार, समाज एवं प्रकृति के अन्तरसम्बन्धों से तार्किक, प्रयोगधर्मी और स्व-मूल्यांकन आधारित तरीके से परिचित कराती है जिससे उनमें मानव चेतना का विकास होता है। मानव चेतना से युक्त युवा ही परिवार, समाज एवं प्रकृति से अपने सरोकारों को समझ कर समृद्धि हेतु कार्य-व्यवहार कर पाता है। मूल्यों के अभाव में ऐसा सम्भव नहीं है इसलिये आज शिक्षा में मूल्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार ने मानव मूल्य शिक्षा हेतु निम्न मार्गदर्शन दिया है -

- पाठ्यक्रम किसी भी प्रकार के अन्धविश्वास से मुक्त हो।
- पाठ्यक्रम रहस्यवाद, सम्प्रदायवाद, व्यक्तिवाद से मुक्त हो।
- पाठ्यक्रम में करो या न करो आदि उपदेश नहीं होना चाहिए बल्कि तर्कपूर्ण ढँग से इसका प्रयोग एवं विश्लेषण द्वारा परीक्षण किया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम को आचरण में प्रमाणित किया जा सकता है।
- पाठ्यक्रम दर्शन आधारित हो।

अध्ययन से स्पष्ट है कि मूल्य शिक्षा उपर्युक्त सभी कसौटियों को पूरा करती है। मूल्य शिक्षा वह विकल्प है जिसमें अब तक की सभी शुभकामनाओं को मूर्त रूप देने का स्पष्ट कार्यक्रम निहित है। पाठ्यपुस्तक में निहित मूल्यों की भूमिका विद्यार्थियों में समायोजन क्षमता के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मूल्यों के संक्रमणकाल से गुजर रहे वर्तमान समाज में तनाव बढ़ रहा है और समायोजन क्षमता में कमी आ रही है इसलिये आवश्यक है कि मूल्यपरक शिक्षा को व्यापक स्तर पर पाठ्यपुस्तकों में समाहित किया जाये जिससे उन मूल्यों का प्रभाव विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता के विकास पर पड़े। साथ ही उनके दृष्टिकोण एवं मनोवृत्ति में सकारात्मक परिवर्तन आ सके।

सन्दर्भ

जैन, मोनिका (2019). 'विभिन्न पाठ्यक्रमों में स्नातक एवं स्नातकोत्तर विद्यार्थियों की शिक्षा का आधुनिकता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशन एंड रिसर्च,* 4(2), 52-55.

पाण्डेय, चन्द्रदीप (2017). 'जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समायोजन', *नॉर्थ एशियन इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी,* 3(10), 48-55.

भारती, लक्ष्मीना (2018). 'आधुनिक प्रौद्योगिकी, शिक्षा एवं मानवीय मूल्य : एक विश्लेषण', *रिमेकिंग : एन एनालिसिस,* 3(5), 216-218.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020,* भारत सरकार.

श्रीवास्तव, सुहासिनी (2018). 'वर्तमान शिक्षा प्रणाली में भारतीय मूल्यों की प्रासंगिकता', *इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ ह्यूमन रिसोर्स एंड सोशल साइंस,* 5(3), 552-556.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 159-172)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता का अध्ययन

अनुष्का यादव* एवं आर. पुष्पा नामदेव†

यह शोध पत्र माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के अध्ययन पर आधारित है। इस अध्ययन में न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के दो विद्यालय (एक शहरी एवं एक ग्रामीण) का स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन करने हेतु मानकीकृत वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता मापन हेतु विज्ञान में तार्किक क्षमता मापनी का उपयोग किया गया। शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, 'टी' परीक्षण एवं सह-सम्बन्ध का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र विज्ञान शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु विज्ञान शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण सुझाव प्रदान करने में सहायक होगा।

*शोधार्थी, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail: yadavanushka434@gmail.com
†सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गाँधी अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
E-mail: namdeopushpa@gmail.com

प्रस्तावना

विज्ञान का उद्देश्य विद्यार्थियों को समाज उपयोगी जीवन जीने के लिए सहायता प्रदान करना है। विज्ञान के अध्ययन से जहाँ सत्य की खोज कर अपार शान्ति एवं प्रसन्नता का अनुभव होता है, वहीं जीवन में नित्य आने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए भी यथेष्ट बुद्धि एवं प्रशिक्षण मिलता है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करना है जिससे विद्यार्थियों में जिज्ञासा, सृजनात्मकता, समस्या समाधान एवं निर्णय लेने की योग्यता विकसित हो सके। 1975 में स्कूली शिक्षा के लिए एक समान ढाँचा लागू किये जाने से पहले अधिकांश राज्यों और संघ शासित राज्यों में सामान्य शिक्षा के रूप में विज्ञान एक अनिवार्य विषय था। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं कार्य योजना 1992 में अनुशंसा की गयी कि विज्ञान शिक्षा को सुदृढ़ किया जाए जिससे विद्यार्थियों में जिज्ञासा, सृजनात्मकता, वस्तुनिष्ठ प्रश्न करने का साहस और सौन्दर्यबोध जैसी योग्यताएँ और मूल्यों का विकास हो सके। साथ ही विज्ञान शिक्षा के कार्यक्रमों को इस प्रकार बनाया जाए कि उसके द्वारा विद्यार्थियों में समस्याओं को सुलझाने और निर्णय लेने की योग्यता विकसित हो सके। कोठारी कमीशन (1964-66) के अनुसार प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य भौतिक और जैविक पर्यावरण के मुख्य तथ्यों, अवधारणाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के बारे में उचित ज्ञान प्राप्त करना होना चाहिए। विज्ञान की भाषा, प्रक्रिया एवं विषयवस्तु विद्यार्थी की उम्र और उसकी ज्ञान सीमा के अनुकूल होनी चाहिए (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005)। स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 के अनुसार गुणवत्तापूर्ण विज्ञान शिक्षा वह है जिसके द्वारा विद्यार्थियों में पृच्छा एवं अनुसन्धान की भावना का विकास हो एवं वे उन चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम हो जिनका सामना देश एवं दुनिया कर रहें हैं, जैसे - जलवायु परिवर्तन, स्वास्थ्य, तकनीकी प्रगति, सतत विकास के लिए प्रयास, उचित और न्यायसंगत आजीविका एवं प्रकृति के साथ सद्भाव आदि। अत: विज्ञान में उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ सामाजिक विज्ञान और व्यावसायिक शिक्षा जैसे अन्य विषयों के साथ इसका सम्बन्ध स्थापित करने हेतु विद्यार्थियों को योग्य बनाना स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 का उद्देश्य है।

सहज जिज्ञासा, उदार मनोवृत्ति, सत्य के प्रति निष्ठा, अपनी कार्य पद्धति में पूर्ण विश्वास, परिणाम अथवा विचारों की सत्यता को प्रमाणित, समस्याओं का सामना करने, सत्यता का पता लगाने और उनमें अन्वेषण करने की क्षमता वैज्ञानिक अभिवृत्तियों को इंगित करता है। विज्ञान अधिगम द्वारा विद्यार्थियों में अन्धविश्वासों से दूर रहकर परीक्षण तथा निरीक्षण करने की प्रवृत्ति विकसित होती है। माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण के दौरान विद्यार्थियों को वैज्ञानिक विधि के उपयोग एवं कार्यशाला के द्वारा सीखाना चाहिए जिससे तथ्यों की खोज की जा सके तथा ठोस निष्कर्ष निकाले जा सके (माध्यमिक शिक्षा आयोग, 1953)। विज्ञान शिक्षा से विद्यार्थियों में तर्क करना, कल्पना करना, अवलोकन करना, प्रेक्षण करना, विश्लेषण करना तथा विचारों को व्यवस्थित करने के गुणों का विकास होता है।

शैक्षिक परिदृश्य में तार्किक क्षमता की विशिष्ट भूमिका होती है। इसके द्वारा विद्यार्थी स्वयं की सोच का आलोचनात्मक विकास, मूल्यांकन एवं विनियम करते है। अत: तर्क के द्वारा विद्यार्थियों में पृच्छा कौशल का विकास होता है, जिसमें वे स्वयं प्रमाणों एवं सूचनाओं के आधार पर प्रश्नों का विकास करते है। तिवारी एवं सिंह (2016) ने उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की विज्ञान समूह के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और तार्किक योग्यता का अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि एवं तार्किक योग्यता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

पांडे (2011) ने छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में छात्रावास एवं गैर छात्रावासी अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। पनागर (2011) ने विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर उपलब्धि अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि कक्षा नौ के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा वैज्ञानिक अभिवृत्ति में धनात्मक सहसम्बन्ध है। उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं सृजनात्मकता में कोई अन्तर नहीं होता है (साहू, 2012)। माध्यमिक विद्यालय के छात्र-छात्राओं एवं ग्रामीण छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं हैं (प्रसाद, 2012; रंजन, 2014; बरोदिया एवं अन्य, 2016)। सेठी (2015) ने निजी विद्यालयों के विद्यार्थियों की विज्ञान की ओर अभिवृत्तियों का अध्ययन किया एवं शोध निष्कर्ष में विज्ञान के प्रति विद्यार्थियों के अभिवृत्ति पर जेंडर का प्रभाव नहीं पाया गया। तिवारी एवं बड़ौदिया (2016) ने माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। अध्ययन में शहरी विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक पायी गयी। बाबल (2017) ने सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में विद्यार्थियों की कम्प्यूटर प्रशिक्षण के प्रति कम्प्यूटर अभिवृत्ति उच्चतम पायी गयी। तिवारी एवं सिंह (2017) ने उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला समूह के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि और तार्किक योग्यता का अध्ययन किया और पाया कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के कला समूह के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। तिवारी (2018) ने माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में पाया कि शहरी विद्यालय के विद्यार्थियों की विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति अधिक है। यादव (2018) ने माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता का अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में अंग्रेजी माध्यम के विद्यार्थियों एवं हिन्दी माध्यम के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता में सार्थक अन्तर पाया गया। कुमार एवं जोसेफ (2018) ने हाई स्कूल के विद्यार्थियों का विज्ञान में तार्किक क्षमता का पृच्छात्मक अध्ययन किया। इस शोध का मुख्य उद्देश्य हाई स्कूल के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक तार्किक कौशल का स्तर एवं उनका विज्ञान में तार्किक क्षमता पर प्रभाव का अध्ययन करना था। शोध निष्कर्ष में पाया गया कि वैज्ञानिक

तार्किक क्षमता, जेंडर एवं अनुदेशन के माध्यम से प्रभावित नहीं होती है। साथ ही निष्कर्ष में यह भी प्राप्त हुआ कि वैज्ञानिक तार्किक क्षमता हेतु पाठ्यचर्या में यथोचित सुधार किये जाएँ। भटनागर एवं कक्कड़ (2020) ने किशोर विद्यार्थियों में लिंग के आधार पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। शोध निष्कर्ष में पाया गया कि किशोर विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में लिंग आधार पर कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध अध्ययन का औचित्य

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थियों में अनेक प्रकार के कौशल एवं दक्षताओं का विकास किया जा सकता है। विज्ञान एवं समाज के मध्य अन्तरसम्बन्ध है। विद्यालय में विज्ञान शिक्षण का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति, प्रक्रिया एवं कौशल का विकास है। विद्यालय स्तर पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति का उपयोग विद्यार्थी अपने जीवन काल के अनेक पक्षों में करते हैं, जैसे - अपने व्यवहारिक जीवन में एवं अन्धविश्वास से दूर रहकर तथ्यों की सत्यता को परखने में। अत: वैज्ञानिक अभिवृत्ति तर्क को प्रभावित करती है। इस प्रकार वैज्ञानिक अभिवृत्ति और तार्किक क्षमता में सम्बन्ध देखा जा सकता है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति का प्रभाव विद्यार्थियों की सृजनशीलता पर भी पड़ता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों में मौलिक विचार और कार्य करने की क्षमता विकसित होती है। सम्बन्धित साहित्य समीक्षा के उपरान्त ज्ञात होता है कि विज्ञान एवं विज्ञान शिक्षण से सम्बन्धित अनेक विषयों, जैसे - उपलब्धि, सामाजिक कौशल, समस्या समाधान, अवधारण मानचित्र, वैज्ञानिक अभिक्षमता, निर्माणवाद, आदि पर शोध कार्य हुए हैं, किन्तु वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता से सम्बद्ध शोध कार्य न के बराबर हुए हैं।

शोध अध्ययन में प्रयुक्त चरों की संक्रियात्मक परिभाषा

वैज्ञानिक अभिवृत्ति : मनोविज्ञान के सन्दर्भ में अभिवृत्ति वह मानसिक एवं भावनात्मक दशा है, जो किसी व्यक्ति की विशेषताओं को निर्धारित करती है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति विद्यार्थी में कठिनाइयों का सामना करने, सत्यता का पता लगाने और उनमें अन्वेषण करने की क्षमता विकसित करती है। विद्यार्थियों में अन्धविश्वास से दूर रहकर तथा किसी बात का परीक्षण तथा निरीक्षण करके स्वीकार करने की प्रवृत्ति विकसित होती है।

विज्ञान में तार्किक क्षमता : यह विद्यार्थियों में विज्ञान के विषयवस्तु की तार्किक समझ, तर्कों की प्रस्तुति एवं विकास, स्वतन्त्र पृच्छा, सम्प्रेषण कौशल, तर्क एवं दोषारोपण के मध्य अन्तर की समझ, सरल तर्कों की पहचान जैसे कारण, मध्यवर्ती निष्कर्ष एवं निष्कर्ष की समझ को दर्शाता है।

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी से तात्पर्य कक्षा नौ में अध्ययनरत विद्यार्थियों से है।

शोध उद्देश्य

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना करना। माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता की तुलना करना। माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना करना। माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता की तुलना करना। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनाएँ

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

न्यादर्श

न्यादर्श हेतु उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के दो विद्यालय (एक शहरी एवं एक ग्रामीण) का स्तरीकृत यादृच्छिक न्यादर्शन विधि द्वारा चयन किया गया है। चयनित विद्यालयों से कक्षा नौ के 107 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया।

तालिका 1

चयनित न्यादर्श का विवरण

क्र.	विद्यालय का नाम	क्षेत्र	विद्यार्थियों की संख्या	छात्र	छात्रा
1.	राजीव गाँधी चिल्ड्रेन स्कूल, परमानपुर, तरवां आजमगढ़ (उ.प्र.)	ग्रामीण	54	34	20
2.	चिल्ड्रेन सीनियर सेकेंडरी स्कूल आजमगढ़ (उ.प्र.)	शहरी	53	42	11
	कुल		107	76	31

शोध अध्ययन की प्रकृति : प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण

प्रस्तुत शोध में प्रदत्तों के संकलन हेतु निम्न उपकरणों का उपयोग किया गया है -

वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के वैज्ञानिक अभिवृत्ति के मापन हेतु डॉ. सुखवन्त बाजवा एवं मोनिका महाजन द्वारा विकसित वैज्ञानिक अभिवृत्ति मापनी का उपयोग किया गया है। इस मापनी में कुल 49 कथन हैं। इस उपकरण में पाँच आयाम हैं - तर्कसंगतता, जिज्ञासा, पूर्वाग्रह मुक्त, वैज्ञानिक पद्धति में विश्वास एवं रूढ़ियों से उठकर सोचना। शोध उपकरण की विश्वसनीयता परीक्षण पुन: परीक्षण विधि द्वारा ज्ञात किया गया है जिसका मान 0.970 है। इस मापनी की विषयवस्तु वैधता एवं समवर्ती वैधता 0.475 है। मापनी पाँच बिन्दु लिकर्ट स्केल पर निर्मित है एवं उच्च अंक विद्यार्थियों के उच्च वैज्ञानिक अभिवृत्ति को दर्शाता है।

विज्ञान में तार्किक क्षमता मापनी : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के विज्ञान में तार्किक क्षमता के मापन हेतु अनुराधा जोशी एवं बी.एन. महापत्रा द्वारा निर्मित मानकीकृत उपकरण का उपयोग किया गया है। इस उपकरण के अन्तर्गत कथनों को पाँच आयामों में विभाजित किया गया - समरूपता, वर्गीकरण, उदार, निग्मनात्मक एवं आगमनात्मक। इस मापनी की विश्वसनीयता परीक्षण पुन: परीक्षण विधि द्वारा 0.76 ज्ञात की गयी है। इस उपकरण की वैधता अन्तरवस्तु वैधता, आभासी वैधता, समवर्ती वैधता विधियों द्वारा ज्ञात की गयी है। विज्ञान में तार्किक क्षमता मापनी में सही उत्तर के लिए 1 एवं गलत उत्तर के लिए 0 अंक दिये गये हैं। उच्च अंक विद्यार्थियों के उच्च तार्किक क्षमता को दर्शाता है।

प्रदत्तों का संग्रहण

प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोधकर्ता द्वारा चयनित न्यादर्श से वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता से सम्बन्धित प्रदत्तों का संग्रहण किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु शोधकर्ता द्वारा सांख्यिकीय विधि (मध्यमान, मानक विचलन, 'टी' परीक्षण एवं सहसम्बन्ध) का उपयोग किया गया।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति

प्रथम उद्देश्य : माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना करना।

H_{01} **:** माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 2
माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का N, मध्यमान, मानक विचलन एवं 't' मान

वैज्ञानिक अभिवृत्ति	N	मध्यमान	मानक विचलन	df	't'	सार्थक
छात्र	76	161.95	11.03	105	0.89	नहीं
छात्रा	31	163.65	8.01			

0.05 स्तर पर सारणी मान=1.98

तालिका 2 के अवलोकन से ज्ञात है कि अवलोकित 't' का मान 0.89 है जो मुक्तांश (df) 105 पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान 1.98 से कम है अत: शून्य परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है' को निरस्त नहीं किया जाता है। छात्र-छात्राओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अंकों के मध्यमान की तुलना करने पर छात्राओं का मध्यमान, छात्रों के मध्यमान से अधिक है, इसलिये यह कहा जा सकता है कि दोनों की वैज्ञानिक अभिवृंत्ति में अन्तर है किन्तु यह अन्तर सार्थक नहीं है। प्राप्त परिणाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अत: माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति समान है। साहू (2012), प्रसाद (2012), रंजन (2014), सेठी (2015), तिवारी, बरोदिया, सिंह एवं चौधरी (2016) द्वारा किये गये अध्ययन के परिणाम वर्तमान शोध परिणाम के समतुल्य हैं।

चित्र 1
छात्र-छात्राओं के वैज्ञानिक अभिवृत्ति का मध्यमान

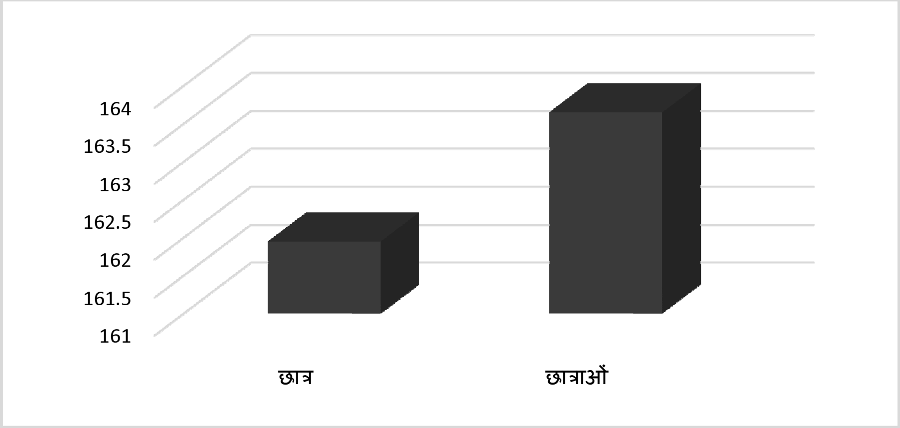

2. छात्र-छात्राओं की विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता

द्वितीय उद्देश्य : माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता की तुलना करना।

H_{02} : माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 3

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता का N, मध्यमान, मानक विचलन एवं 't' मान

विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता	N	मध्यमान	मानक विचलन	df	't'	सार्थक
छात्र	76	13.53	3.74	105	1.99	हाँ
छात्रा	31	15.03	3.71			

0.05 स्तर पर सारणी मान=1.98

तालिका 3 के अवलोकन से ज्ञात है कि अवलोकित 't' का मान 1.99 है जो मुक्तांश (df) 105 पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान 1.98 से अधिक है अत: शून्य परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है', निरस्त की जाती है।

छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता के अंकों के मध्यमान की तुलना करने पर छात्राओं का मध्यमान, छात्रों के मध्यमान से अधिक है इसलिये यह कहा जा सकता है कि दोनों के विज्ञान में तार्किक क्षमता में अन्तर है। अत: प्राप्त परिणाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता में सार्थक अन्तर है।

यादव (2018) द्वारा किये गये अध्ययन के परिणाम वर्तमान शोध अध्ययन के परिणाम के समतुल्य है। जबकि तिवारी एवं सिंह (2016) द्वारा किये गये अध्ययन के परिणाम वर्तमान शोध के परिणाम के विपरीत है। इसका कारण विद्यार्थियों की परिपक्वता स्तर, क्षेत्र एवं शिक्षण माध्यम हो सकते हैं।

चित्र 2

छात्र-छात्राओं के विज्ञान में तार्किक क्षमता का मध्यमान

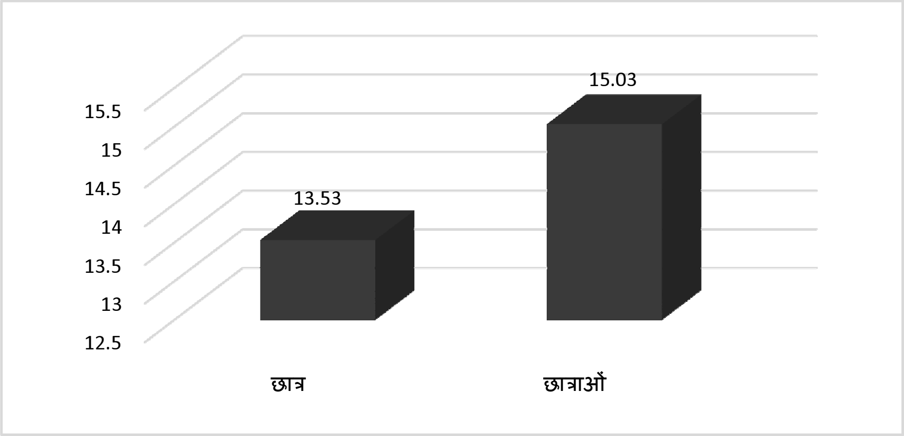

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति

तृतीय उद्देश्य : माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति की तुलना करना।

H_{03} : माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 4

माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का N, मध्यमान, मानक विचलन एवं 't' मान

विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति	N	मध्यमान	मानक विचलन	df	't'	सार्थक
ग्रामीण	54	165.07	8.64	105	2.77	हाँ
शहरी	53	159.75	11.09			

0.05 स्तर पर सारणी मान=1.98

तालिका 4 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अवलोकित 't' का मान 2.77 है जो मुक्तांश (df) 105 पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान 1.98 से अधिक है अत: शून्य परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है', निरस्त की जाती है। ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के अंकों के मध्यमान की तुलना करने पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान, शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान से अधिक है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के वैज्ञानिक अभिवृत्ति में अन्तर है। अत: प्राप्त परिणाम के आधार पर यह कहा

जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है। तिवारी एवं बड़ौदिया (2016), तिवारी (2018) द्वारा किये गये अध्ययन के परिणाम वर्तमान शोध के परिणाम के विपरीत है। इसका कारण विद्यालय की संस्कृति एवं वातावरण हो सकते है।

चित्र 3

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति का मध्यमान

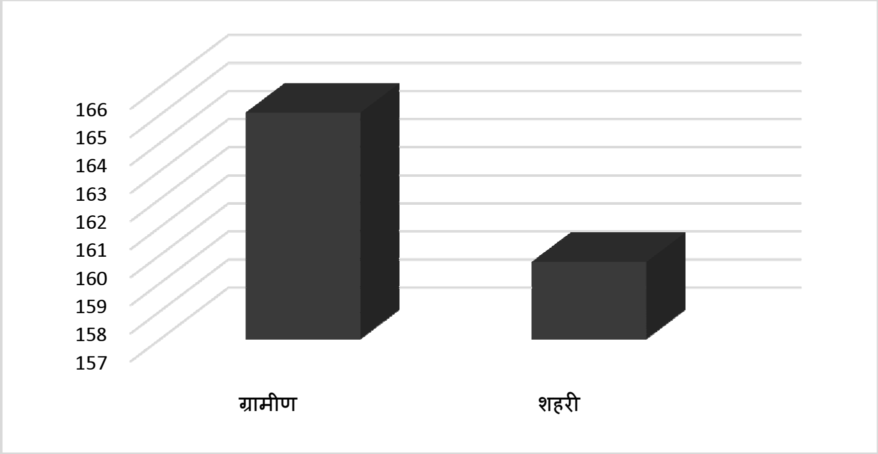

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता

चतुर्थ उद्देश्य : माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता की तुलना करना।

H_{04} : माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका 5

माध्यमिक स्तर के छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता का N, मध्यमान, मानक विचलन एवं 't' मान

विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता	N	मध्यमान	मानक विचलन	df	't'	सार्थक
ग्रामीण	54	14.74	2.93	105	2.158	हाँ
शहरी	53	13.19	4.37			

0.05 स्तर पर सारणी मान=1.98

तालिका 5 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अवलोकित 't' का मान 2.158 है जो मुक्तांश (df) 105 पर 0.05 सार्थकता स्तर के सारणी मान 1.98 से अधिक है अत: शून्य परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है', निरस्त की जाती है। ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता के अंकों के मध्यमान की तुलना करने पर ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान, शहरी विद्यार्थियों के मध्यमान से अधिक है इसलिये यह कहा जा सकता है कि दोनों समूहों के विज्ञान में तार्किक क्षमता में अन्तर है। अत: प्राप्त परिणाम के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता में सार्थक अन्तर है। इसका कारण विद्यालय में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया, विद्यालयी वातावरण एवं विज्ञान गतिविधियों में संलग्नता हो सकता है।

चित्र 4

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता का मध्यमान

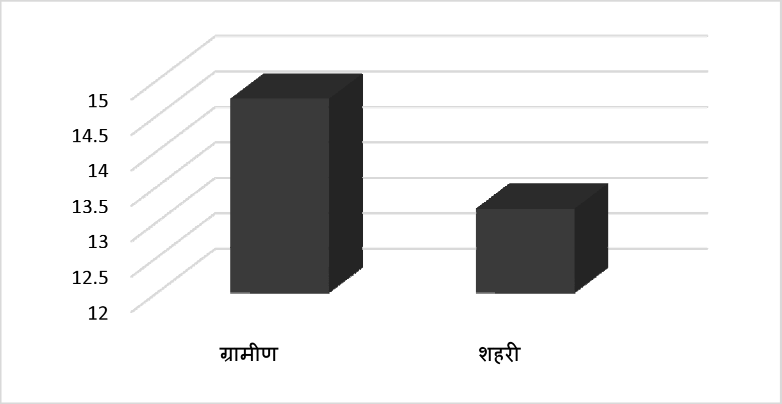

वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता

पंचम उद्देश्य : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।

H_{05} : माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है।

तालिका 6

वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य 'r' की सार्थकता

चर	N	df	'r'	सार्थक
वैज्ञानिक अभिवृत्ति	107	105	0.07	नहीं
विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता				

तालिका 6 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि अवलोकित 'r' का मान 0.07 है जो कि मुक्तांश (df) 105 पर 0.05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अत: परिकल्पना 'माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है', निरस्त नहीं की जाती है। यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है। प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य सहसम्बन्ध सार्थक नहीं है किन्तु इन चरों के मध्य सहसम्बन्ध धनात्मक है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में वृद्धि होने पर विज्ञान में तार्किक क्षमता में भी विकास होगा। पनागर (2011) द्वारा किये गये अध्ययन के परिणाम वर्तमान शोध परिणाम के समतुल्य हैं। अत: कक्षा शिक्षण के दौरान विषय वस्तु को विद्यार्थियों के समक्ष विभिन्न उपागमों एवं विधियों द्वारा प्रस्तुत करते हुए सन्दर्भित किया जाना चाहिए जिससे उनमें कक्षा संलग्नता के साथ-साथ वैज्ञानिक अभिवृत्ति का भी विकास हो।

शोध अध्ययन के परिणाम एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता का अध्ययन किया गया है जिससे प्राप्त प्रदत्तों द्वारा निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए हैं -

- माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्रदत्तों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि छात्र-छात्राओं की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अत: कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में लिंगगत आधार पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति में कोई अन्तर नहीं है।
- माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता से सम्बन्धित प्रदत्तों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि छात्र-छात्राओं की विज्ञान में तार्किक क्षमता में सार्थक अन्तर है। अत: कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों में लिंगगत आधार पर विज्ञान विषय के तार्किक क्षमता में अन्तर है।
- माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति से सम्बन्धित प्रदत्तों का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है। प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर कहा जा सकता है ग्रामीण विद्यालय के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति शहरी विद्यालय के विद्यार्थियों से अधिक है।
- माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की विज्ञान में तार्किक क्षमता से सम्बन्धित प्रदत्तों का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात होता है कि ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के विज्ञान में तार्किक क्षमता में सार्थक अन्तर है। प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर कहा जा

सकता है ग्रामीण विद्यालय के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में तार्किक क्षमता, शहरी विद्यालय के विद्यार्थियों से अधिक है।

- माध्यमिक स्तर में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के मध्य कोई सार्थक सहसम्बन्ध नहीं है किन्तु माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं तार्किक क्षमता के मध्य धनात्मक सहसम्बन्ध है। अत: वैज्ञानिक अभिवृत्ति के विकास द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान में तार्किक क्षमता का विकास किया जा सकता है।

शैक्षिक निहितार्थ

किसी भी शोध की सार्थकता उसके शैक्षिक निहितार्थ पर निर्भर करती है। ज्ञातव्य है कि विद्यार्थियों में विज्ञान के अध्ययन से किसी प्राकृतिक घटना के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है। अन्धविश्वासों से दूर रहने के लिए वैज्ञानिक अभिवृत्ति उपयोगी है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति द्वारा विद्यार्थी वस्तुनिष्ठता की ओर आकृष्ट होता है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति से विद्यार्थियों में धैर्य की क्षमता उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों में चिन्तन की प्रक्रिया के विकास के लिए तार्किक क्षमता का उपयोग किया जाता सकता है। तार्किक क्षमता का समस्या से निपटने के लिए विभिन्न स्तर पर उपयोग किया जाता है। विद्यार्थियों के सीखने की प्रक्रिया को आसान और सुगम बनाने के लिए विज्ञान को इस प्रकार पढ़ाया जाए जिससे विद्यार्थियों में तार्किक क्षमता का विकास हो सके। नये तथ्यों की खोज करने के लिए तार्किक क्षमता और वैज्ञानिक अभिवृत्ति का उपयोग किया जाना वांछनीय है। तार्किक क्षमता और वैज्ञानिक अभिवृत्ति गणितीय तर्क शक्ति का विकास करने के लिए उपयोगी है। वैज्ञानिक अभिवृत्ति केवल विज्ञान विषय के अध्ययन से ही विकसित नहीं होती अपितु इसका विकास तब होता है जब विज्ञान को अन्तरानुशासनिक कर पढ़ाया जाए। विज्ञान शिक्षण विद्यालयी शिक्षण का अभिन्न अंग है एवं विज्ञान शिक्षण का मुख्य लक्ष्य विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास है अत: वर्तमान शोध के द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान एवं विज्ञान विषय से सम्बन्धित कैरियर चयन के प्रति रुझान देखा जा सकता है। इस शोध के द्वारा विद्यार्थियों के जीवन, उनकी सोच एवं उनके कार्य करने के तरीकों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता को ज्ञात किया जा सकता है। शिक्षकों द्वारा भी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के दौरान नवाचारी पद्धति जैसे वर्चुअल लैब, तकनीकी शिक्षण शास्त्रीय विषयवस्तु, मिश्रित अधिगम, सहकारी अधिगम आदि को अपनाकर विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता का विकास किया जा सकता है। विद्यालय प्रशासकों द्वारा भी विद्यार्थियों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं विज्ञान में तार्किक क्षमता के विकास हेतु विद्यालय में विज्ञान सम्बन्धी गतिविधियाँ, जैसे - प्रश्नोत्तरी, संगोष्ठी, विज्ञान मेला, क्षेत्र भ्रमण, परिचर्चा, आदि का आयोजन कराया जाना चाहिए। इन गतिविधियों को अन्तर-विद्यालयी, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर भी आयोजित किया जा सकता

है। इस शोध के माध्यम से विद्यार्थियों को वर्तमान वैज्ञानिक समाज में प्रभावी नागरिक के रूप में स्थापित किया जा सकता है।

सन्दर्भ

बाबल, जगदीश (2017). *सरकारी एवं निजी विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं कम्प्यूटर अभिवृत्ति का अध्ययन,* अंक 4. http://www.socialresearchfoundation.com

बरोदिया एवं अन्य (2016). 'माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विज्ञान विषय के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन', *वर्ल्डवाइड जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट,* 2(2), पृ. 44-48

भटनागर, शिवानी एवं कक्कड़, सोनिया (2020). 'किशोर विद्यार्थियों में लिंग के आधार पर वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विश्लेषणात्मक अध्ययन', *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च एंड इनोवेशन,* 5(8), पृ. 1-10

कुमार, जे.आर. एवं जोसेफ, मारिया (2018). 'हाई स्कूल विद्यार्थियों की विज्ञान में तर्क क्षमता का अध्ययन', *रिसर्च एंड रिफ्लेक्शन ऑन एजुकेशन,* 17(1)

शिक्षा मन्त्रालय. (1996). *एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट* (1964-66 की रिपोर्ट)

एन.सी.ई.आर.टी. (1975). *द करिकुलम फॉर द टेन ईयर स्कूल,* नई दिल्ली

एन.सी.ई.आर.टी. (2005). *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,* नई दिल्ली, https://ncert.nic.in/pdf/nc-framework/hindi.pdf

एन.सी.ई.आर.टी. (2005). *विज्ञान शिक्षण : राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र,* नई दिल्ली, https://ncert.nic.in/pdf/h_focus_group/Vigyan%20Shikshan.pdf

एन.सी.ई.आर.टी. (2023). *स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा,* नई दिल्ली, https://ncert.nic.in/pdf/NCFSE-2023-August_2023.pdf

पनागर, एन.पी. (2012). *विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति पर उपलब्धि अभिप्रेरणा के प्रभाव का अध्ययन,* पृ. 37, http://www.scert.cg.gov.in

पांडेय, दीपेन्द्र कुमार (2011). *छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी अनुसूचित जनजाति विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति एवं शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन,* रायपुर

साहू, लीलाराम (2012). *विद्यार्थियों की वैज्ञानिक अभिवृत्ति के सम्बन्ध में सृजनात्मकता का अध्ययन,* पृ. 94

सेठी, उर्मिल (2015). *गैर-सरकारी विद्यालयों के कारकों के सम्बन्ध में विज्ञान के प्रति विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अध्ययन,* http://www.ripublication.com

तिवारी एवं सिंह (2017). *उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के कला वर्ग के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं तार्किक योग्यता का अध्ययन,* पृ. 19-23, http://www.educationjournal.com

तिवारी, एम.एम. एवं सिंह, जे. (2016). *विज्ञान वर्ग के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं तार्किक क्षमता का अध्ययन,* पृ. 68-7, http://www.educationjournal.in

यादव, वि. (2018). *माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की तार्किक योग्यता का अध्ययन,* पृ. 46-49, http://www.alleducationjounal.com

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 173-181)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

भारतीय समाज के नैतिक पतन का लैंगिक अपराधों पर प्रभाव

अम्बुज कुमार शुक्ल* एवं सुशील कुमार त्रिपाठी†

हमारे समाज के नैतिक पतन होने के पीछे दो कारक मुख्य रूप से जिम्मेदार है, प्रथम - माता-पिता ने बच्चों के समक्ष कभी ऐसा कोई आदर्श नहीं स्थापित किया जिससे उनके मन में महिलाओं के प्रति स्नेह एवं आदर का भाव बन सके, बल्कि इसके स्थान पर महिलाओं के साथ अनेक प्रकार की घरेलू हिंसा और दुर्व्यवहार को प्रदर्शित किया गया है। बालपन से ही बालक और बालिका के मध्य होने वाले भेदभाव का बच्चों के मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। दूसरे कारक के रूप में हमारा आधुनिक परिवेश है और उसके साथ मनोरंजन के नाम पर अश्लीलता फैलाने वाले गीत, संगीत, नृत्य, फिल्म एवं पाश्चात्य संस्कृति जिम्मेदार है। बच्चों के समक्ष आदर्श स्थापित करना होगा, सामाजिक मूल्यों को बचपन से ही बच्चों के संस्कार में डालना होगा जिससे समाज का नैतिक उत्थान हो सके और देश को लैंगिक अपराधों से मुक्त बनाया जा सके।

*सहायक प्रोफेसर, श्रीरावतपुरा सरकार, विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)
E-mail: ambujshukla1709@gmail.com
†एसोसिएट प्रोफेसर, अध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग राज्य विश्वविद्यालय, चित्रकूट (म.प्र). **E-mail: drsushil.anand@gmail.com**

प्रस्तावना

भारत विश्व की प्राचीनतम संस्कृति को धारण करता है। देश के सभी राज्यों में भाषा, पहनावा, खान-पान, रहन-सहन, प्राकृतिक वातावरण आदि की भिन्नता है किन्तु समूचे भारतवर्ष में सामाजिक, नैतिक, मान्यता, परम्परा, सम्बन्धों की पवित्रता एक जैसी ही है। सामाजिक, नैतिक समानता ने ही देश को अलग-अलग भाषा, विचार, पन्थ होते हुए भी एक सूत्र में हजारों वर्षों से बाँधा हुआ है। सांस्कृतिक विशिष्टता ने ही देश को विश्व में एक विशेष स्थान दिलाया है। प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं को नवीन पाश्चात्य विचारों के आधार पर चुनौती दी जा रही है (अल्टेकर, 1938)। आज देश में पुरातन सांस्कृतिक परम्पराओं का पालन करने वालों को पिछड़ा और संकुचित मानसिकता का घोषित कर उनका उपहास उड़ाया जाता है। इस स्थिति तक आने में भारतीय समाज को अनेक प्रकार की विसंगतियों से गुजरना पड़ा है। सैकड़ों साल की पराधीनता से स्वतन्त्रता तो 1947 में ही प्राप्त हो गई किन्तु मानसिक रूप से खुलापन आज भी भारतीय समाज में नहीं है। आज के भारतीय समाज में निज गौरव के स्थान पर हीनता और पाश्चात्य संस्कृति का बोलबाला है। इस प्रकार इतने लम्बे समय से परतन्त्र रहने के कारण भारत को अनेक प्रकार की हानि हुई। आर्थिक, राजनीतिक क्षति की भरपाई समय के साथ होने लगी किन्तु सामाजिक रूप से जो नुकसान हुआ वो आज भी निरन्तर जारी है।

विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामाजिक संरचना को जानबूझ कर असन्तुलित करने का प्रयास किया गया। सामाजिक मूल्यों को क्षति पहुँचाने के लिए आक्रमणकारियों द्वारा योजना बनाकर कार्य किये गये और आक्रान्ताओं द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कभी प्रलोभन, कभी बल प्रयोग तो कभी षड़यन्त्र का प्रयोग किया गया। अन्ततः विधर्मी अपनी योजना में सफल भी हुए। इसी का परिणाम है कि आज भारतीय समाज में इतनी अधिक विसंगतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। समाज में हुए बदलाव का सबसे अधिक प्रभाव महिलाओं पर पड़ा, आज पुरुष वर्ग पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है किन्तु महिलाओं का आजाद होना शेष है (विप्लव, 2010)। महिलाओं ने इस देश में लगभग दोहरी पराधीनता को सहन किया है, प्रथम पुरुष से और दूसरा विदेशी आक्रमणकारियों से। इस तरह की दोहरी गुलामी ने महिलाओं को अत्यधिक पिछड़ा बना दिया, उनके अधिकारों का बलपूर्वक दमन किया गया। महिलाओं से सम्बन्धित कुछ खामियाँ हमारे समाज में पहले से ही थीं किन्तु विदेशी आक्रान्ताओं द्वारा निर्मित भय के वातावरण ने महिलाओं को और अधिक समस्या में डाल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि सुरक्षा एवं संरक्षण के नाम पर जीवनपर्यन्त महिलाओं को दासता के बन्धन में बाँध दिया गया।

शोध के उद्देश्य एवं प्रविधि

भारत में सामाजिक-नैतिक पतन का विश्लेषण करना एवं लैंगिक अपराधों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों को चिह्नित करना। लैंगिक अपराधों को समाप्त करने

वाले निराकरणों एवं सामाज के नैतिक उत्थान करने वाले उपायों को उजागर कर समाज के समक्ष लाना, जिससे इन अपराधों की पुनरावृत्ति से बचा जा सके।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में गुणात्मक और वर्णनात्मक प्रविधि का प्रयोग किया गया है तथा सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन कर उसका विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण

पुरातन भारतीय संस्कृति को इस्लामिक आक्रान्ताओं ने सबसे अधिक क्षति पहुँचाई, इसी युग में महिलाओं से सम्बन्धित सबसे अधिक कुरीतियों का जन्म हुआ, किन्तु ब्रिटिश भारत में भी महिलाओं का किसी प्रकार से कोई विकास नहीं हुआ। कुछ भारतीय समाज सुधारकों ने महिलाओं की समस्याओं को अंग्रेज सरकार के समक्ष रखा लेकिन भारत ब्रिटिश उपनिवेश था इसलिये महिलाओं से सम्बन्धित किसी भी समस्या का समाधान होना सम्भव ही नहीं था। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कुछ समाज सुधारकों के प्रयास से ब्रिटिश सरकार को महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं का निराकरण करना ही पड़ा। अत: सरकार ने कुछ नियम-कानून बनाकर महिलाओं के प्रति अपने कार्य को समाप्त समझ लिया। महिलाओं की समस्या प्रकृति जनित नहीं थी इसलिये इतने वर्षों से उसका निवारण नहीं हो पाया बल्कि समाज के एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण किया जाता रहा। स्वतन्त्रता के बाद भी देश में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। करोड़ों महिलाओं में से कुछ महिलाओं का सामाजिक विकास अवश्य हुआ है किन्तु उनकी संख्या बहुत ही कम है और उनके इस सामाजिक विकास में भी पराधीनता ही है क्योंकि इसके बाद भी उनको पुरुषवादी समाज द्वारा बनाये गये नियम के साथ ही जीना है। देश में महिलाओं की दयनीय सामाजिक स्थिति के सन्दर्भ में कुछ लोगों का यह भी तर्क है कि महिलाएँ शारीरिक रूप से शक्तिशाली नहीं होतीं, उनकी सुरक्षा या अन्य कार्य जो उनसे नहीं हो सकते उन्हें पुरुषों द्वारा किया जाता है। अत: पुरुष के संरक्षण में महिला का होना अनुचित नहीं है।

इस तथ्य को स्वीकार किया ही जा चुका है कि स्त्रियों की शारीरिक बनावट और क्षमता दोनों पुरुषों से भिन्न हैं, किन्तु यह भिन्नता किसी भी आधार पर महिलाओं से किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार करने की अनुमति नहीं देती। शहरी क्षेत्रों में थोड़ा बहुत लोगों के विचारों में महिलाओं के प्रति सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है किन्तु ग्रामीण भारत में आज भी महिलाओं की स्थिति अत्यन्त दयनीय है (शर्मा, 2010)। हमारा समाज नैतिक दृष्टि से भ्रष्ट हो चुका है किन्तु महिलाओं के सन्दर्भ में और अधिक भ्रष्ट है। महिलाओं का शोषण करने के लिए अनेक प्रकार के जतन किये जाते हैं जिसमें अन्धविश्वास और कुप्रथाओं के माध्यम से भी इनका शोषण किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में महिलाएँ अशिक्षित हैं इसलिये वे अस्वस्थ हैं, निर्धन हैं, बाल मजदूर हैं, अन्धविश्वासी हैं। आदर्श पत्नी की उपकल्पनाओं में फँस कर उनका अनेक प्रकार से शोषण होता है, इसका दुष्परिणाम यह होता है कि अनियोजित रूप से महिलाओं को बच्चा पैदा करना होता है। इतनी विषम परिस्थिति में रहते हुए भी महिलाओं को

अपनी मर्यादा का पूरा ध्यान रहता है किन्तु पुरुषवादी समाज ने यहाँ भी अपनी नैतिकता का नाश कर लिया है शायद इसलिये ही महिलाएँ घरेलू हिंसा की शिकार होते हुए भी अनेक प्रकार के दु:खों को सहन करती हैं। महिलाएँ बचपन से अपने साथ होने वाले भेद-भाव, रोक-टोक को सहन करती हैं, आये दिन परिवार, समाज में उनके साथ यौन हिंसा होती है जिसको कई बार महिलाएँ छिपा जाती हैं। हमारे देश में महिलाओं की यही वास्तविक स्थिति है। विगत कुछ वर्षों में हमारे समाज का नैतिक दृष्टि से और अधिक पतन हो गया है।

सम्पूर्ण देश में महिला सुरक्षा के प्रति एक नकारात्मक वातावरण का निर्माण हो चुका है। कुछ वर्षों तक स्थिति यह थी कि लोग दूसरे के घर की महिलाओं पर कुदृष्टि डालते थे किन्तु अपने घर की महिलाओं की सुरक्षा के लिए कत्ल और मार-पीट पर उतर आते थे। अब समाज इससे भी नीचे गिर चुका है महिलाएँ अपने ही घर-परिवार में सुरक्षित नहीं हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की मर्यादा संकटों से घिरी हुई है, ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ महिलाओं को यह आभास हो कि वे यहाँ सुरक्षित हैं और स्वच्छन्द रूप से अपना जीवन जी सकती हैं। कार्यकारी महिलाओं के साथ कार्यस्थल पर यौन हिंसा, मार्ग में महिलाओं के साथ छेड़छाड़ होना, छात्राओं के साथ विद्यालय में, बाजार में छेड़छाड़ जैसी घटनाएँ नित्य बढ़ती जा रही हैं। पुरुषवादी समाज का बड़ा ही अजीब नियम है कि दुष्कर्म पुरुष समाज द्वारा किया जाता है और दंड महिलाओं को मिलता है जिससे उनके आगे बढ़ने के अवसर छिन जाते हैं और महिलाओं को घर के अन्दर कैद कर रख दिया जाता है। देश ने ज्ञान-विज्ञान, तकनीकी, सुरक्षा, जैसे अन्य क्षेत्रों में पर्याप्त विकास किया है किन्तु समाज के नैतिक संस्कारों को नहीं बचा सका, समाज के नैतिक दायित्व में कोई वृद्धि नहीं कर सका, शिक्षा का औसत बढ़ा है किन्तु संस्कार पूरी तरह से नष्ट हो गये हैं इसलिये सम्बन्धों की पवित्रता को तिलांजलि देते हुए पुरुषवादी समाज ने अपनी ही माँ, बहन, बेटी, बहू, बुजुर्ग, जैसे सम्बन्धों को शर्मसार किया है। एक-दो नहीं देश में ऐसे हजारों उदाहरण हैं जहाँ अत्यन्त पवित्र सम्बन्धों को घर के ही पुरुष द्वारा कलंकित किया गया है। जब महिलाएँ स्वयं के घर में ही सुरक्षित नहीं हैं तो महिलाएँ कहाँ जाएँ, कैसे अपनी मर्यादा, अस्मिता एवं शील की सुरक्षा करें, यह जटिल प्रश्न हैं।

यद्यपि महिलाओं के साथ होने वाली घरेलू हिंसा, दुर्व्यवहार को रोकने के लिए भारतीय संविधान में कुछ उपबन्ध किये गये हैं जिसमें अनेक अनुच्छेद वर्णित हैं। इसके बाद अलग से भी कुछ अधिनियम लाये गये, जैसे - कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम 1984, महिलाओं का अशिष्ट रूपण निषेध अधिनियम 1986, सती निषेध अधिनियम 1987, राष्ट्रीय महिला आयोग 1990, लिंग चयन प्रतिषेध अधिनियम 1994, घरेलू हिंसा में महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005, बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम 2006, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन हिंसा प्रतिषेध अधिनियम 2013, आदि के बाद भी महिलाओं के साथ होने वाले दुर्व्यवहार में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। भारत में महिलाएँ कितनी प्रताड़ित हैं इसका उदाहरण राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़ों से लगाया जा सकता है। महिलाओं के साथ पिछले 10 वर्षों में होने वाले अपराधों का आँकड़ा निम्नानुसार है -

तालिका 1

महिलाओं के साथ हुए अपराध का प्रकार

क्र.	वर्ष	महिलाओं के साथ हुए अपराध का प्रकार	कुल संख्या
1	2010	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	2,13,585
2	2011	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	2, 28, 650
3	2012	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	2, 44, 270
4	2013	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3, 09,546
5	2014	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3, 37, 922
6	2015	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3, 27, 394
7	2016	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3, 38, 954
8	2017	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3, 59, 849
9	2018	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	3,78, 277
10	2019	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	4,05 लाख
11	2020	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	आँकड़े अपूर्ण हैं

स्रोत - राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत

उपर्युक्त आँकड़े समाज के नैतिक पतन की वास्तविक स्थिति का चित्रण प्रदर्शित करते हैं। प्रति वर्ष हमारे समाज का नैतिक पतन होता जा रहा है। घर, परिवार, समाज, बाजार, विद्यालय, कार्यस्थल ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ महिलाएँ स्वयं को सुरक्षित कर सकें। महिलाओं के प्रति समाज की स्थिति अत्यन्त भयावह है, संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार - "तीन में से एक महिला प्रतिदिन किसी न किसी रूप से हिंसा का शिकार हो जाती है अर्थात् एक तिहाई महिलाएँ नित्य हिंसा की शिकार होती हैं, प्रत्येक वर्ष तीन अरब महिलाएँ वैवाहिक बालात्कार का सामना करती हैं, 33 प्रतिशत महिलाओं को यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है, 15-19 वर्ष की लड़कियाँ कभी न कभी यौन उत्पीड़न का शिकार होती हैं, 50 प्रतिशत से अधिक महिलाओं की हत्या के मामले में दोषी परिवारजन ही होते हैं। संसार में महिलाओं की सुरक्षा को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र संघ ने 25 नवम्बर को विश्व महिला हिंसा उन्मूलन दिवस के रूप में मनाने का सर्वसम्मति से निर्णय लिया।" संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिला सुरक्षा की दृष्टि से अब तक अनेक प्रयास किये किन्तु उसका अब तक कोई प्रभाव दिखाई नहीं देता।

एक समय था जब भारतीय समाज महिलाओं के लिए सर्वाधिक उपयुक्त वातावरण प्रदान करता था, वहीं आज हमारे समाज में महिलाओं का जीवन ही संकट में रहता है (नारंग, 2009)। घर से बाहर निकलने वाली प्रत्येक महिला अपनी सुरक्षा को लेकर चिन्तित रहती हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने 2019 के रिपोर्ट में बताया है कि देश के भीतर हर तीसरे मिनट में कोई न कोई महिला घरेलू हिंसा की शिकार होती है, प्रति दूसरे मिनट लड़कियाँ उत्पीड़न की शिकार होती हैं। भारतीय समाज ने महिलाओं के लिए इस तरह का वातावरण बना दिया है कि वे अपनी मर्यादा को बचाये रखने के लिए अपने साथ हुई हिंसा को सहन कर जाती हैं। यद्यपि इसमें उनका कोई दोष नहीं होता किन्तु हेय दृष्टि से महिलाओं को ही देखा जाता है। पुरुष जो दोषी होते हुए भी स्वतन्त्र घूमते रहते हैं, इसलिये देश में हिंसा की शिकार हुई महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या है जो पुलिस के पास शिकायत दर्ज नहीं कराती है, अधिकांश महिलाएँ अपने साथ हुए उत्पीड़न को अपने तक ही रखने में अपना हित समझती हैं। महिलाओं के इस तरह के व्यवहार का ही प्रतिफल है कि अपराधियों का मनोबल बढ़ता जा रहा है। इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, भारत की रिपोर्ट बताती है कि किस प्रकार प्रति वर्ष महिलाओं के साथ अपराध में वृद्धि हुई है, 2018 में 33,356 प्रकरण बालात्कार के दर्ज हुए हैं। यदि भूतकाल का आँकड़ा देखें तो वर्ष 2017 में यह 32,599 था। जिस तरह से लोगों की सोच महिलाओं और बालिकाओं को लेकर बदली है यह निश्चित ही समूचे समाज और समाज की संरचना के लिए विनाशकारी है।

द वायर नामक एक वेब न्यूज चैनल ने 26 जून 2018 को एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसके अनुसार महिलाओं की सुरक्षा के लिहाज से 10 सबसे घातक देशों में भारत शीर्ष पर है। आज देश और सरकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती महिलाओं के सुरक्षा की है। करोड़ों की संख्या में महिलाएँ घर से बाहर निकलती हैं, किसी की नौकरी है तो किसी का अपना व्यवसाय, दुकान, आदि किन्तु सभी क्षेत्रों में महिलाओं को सुरक्षा की आवश्यकता है। अनेक कठोर कानून और नियम बनाकर महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित करने में सरकार पूर्णत: असफल रही है। अपराधियों को कानून और न्याय व्यवस्था का कोई भय नहीं रहा। अपराधी, पति और भाई के सामने ही महिला का बालात्कार कर देते हैं ऐसा उदाहरण मुगला जिले में आया, घर में सो रही महिला के साथ उसके पति को बन्धक बनाकर दुष्कर्म किया गया। दूसरा उदाहरण अलवर राजस्थान से है जहाँ पति को बन्धक बनाकर महिला के साथ बालात्कार करके वीडियो बनाया और सोशल मीडिया पर वायरल कर दिया। इस तरह के जघन्य अपराधों की सूची बहुत बड़ी संख्या में है।

महिलाओं के प्रति घृणित मानसिकता और अपराध का वातावरण समूचे देश में है, किन्तु कुछ राज्य ऐसे हैं जहाँ इसकी संख्या अन्य राज्यों से अधिक है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, भारत ऐसे राज्यों की सूची जारी करती है जहाँ महिलाओं के लिए उचित वातावरण नहीं है, और ऐसे राज्यों की सूची भी जारी की जाती है जहाँ महिलाओं के लिए सकारात्मक सामाजिक वातावरण होता है। आश्चर्यजनक है कि देश के बड़े राज्य महिलाओं के लिए

अधिक घातक हैं, जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है इसलिये उस एक राज्य में महिलाओं के लिए किस तरह का सामाजिक वातावरण है इसका प्रभाव देश के आँकड़े पर भी पड़ता है।

उत्तर प्रदेश में ग्रामीण क्षेत्रों की अधिकता है, इसलिये यहाँ महिलाओं के साथ होने वाले अधिकतर अपराधों की शिकायत पुलिस तक नहीं पहुँच पाती है। फिर भी उत्तर प्रदेश महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों में शीर्ष पर है। उत्तर प्रदेश में महिलाओं के साथ हिंसा और अपराध बड़ी संख्या में होते हैं। हमारा समाज नैतिक रूप से इतना पतित हो चुका है कि उसे बड़े और बच्चों में कोई भेद ही नहीं दिखता, देश के न्यायालयों में लगभग 1,50,332 मामले लम्बित पड़े हैं जिनका सम्बन्ध प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रन फ्रॉम सेक्सुअल अफेंस (पॉक्सो) एक्ट से है। इससे अधिक पतन किसी समाज का नहीं हो सकता। यह देश और समाज के लिए अत्यन्त शर्मनाक है। हम अपनी अगली पीढ़ी को किस प्रकार का समाज देंगे यह सोच कर चिन्ता बढ़ जाती है। उत्तर प्रदेश, देश में सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य है और क्षेत्रफल की दृष्टि से भी विशाल है, इस बात को यहाँ के निवासी भली प्रकार जानते हैं और कहते हैं कि हमारे प्रदेश से देश में सरकार तय होती है। कितना बड़ा प्रदेश है, किन्तु महिला अपराध में इसका बड़ा होना अत्यन्त दु:खद है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, भारत की रिपोर्ट में पिछले एक दशक में महिलाओं के साथ हुए आपराधिक कृत्य में प्रदेश आगे रहा है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, भारत के अनुसार -

तालिका 2
महिलाओं से सम्बन्धित आपराधिक मामले

क्र.	वर्ष	महिलाओं से सम्बन्धित आपराधिक मामले	कुल आँकड़ा
1	2010	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	20169
2	2011	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	22639
3	2012	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	32546
4	2014	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	38467
5	2015	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	35527
6	2017	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	56011
7	2018	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	59445
8	2019	बालात्कार, धोखा और अपहरण, दहेज हत्या, घरेलू हिंसा, छेड़छाड़, यौन हिंसा, व्यापार, सती प्रथा	59853

स्रोत - राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, भारत

तालिका 2 से स्पष्ट होता है कि हमारा समाज महिलाओं के साथ किस तरह का सामाजिक व्यवहार करता है। बहुत से अनैतिक मामले और अपराध ऐसे हैं जो सामने नहीं आए हैं। इस तरह के समाज में जहाँ पुरुषों की प्रधानता है वहाँ महिला के साथ दोयम व्यवहार उचित नहीं है। लचर न्याय व्यवस्था और भ्रष्टाचार ने अपराधियों के लिए सुगम परिस्थितियों का निर्माण कर दिया है, यदि कठोर न्याय व्यवस्था रहती तो शायद देश में महिलाओं के साथ इतना दुर्व्यवहार नहीं होता। सामाजिक अन्याय इस हद तक बढ़ गया है कि यदि पीड़ित महिला किसी तरह हिम्मत जुटाकर पुलिस से शिकायत दर्ज कराती है तो अपराधियों द्वारा उसकी हत्या की सम्भावना बढ़ जाती है। महिलाओं के साथ होने वाले असामान्य व्यवहार का इतना घातक परिणाम हुआ है कि समाज के लैंगिक सन्तुलन पर इसका असर हुआ है। ऐसा नहीं है कि लिंग असमानता आज की समस्या है बल्कि इसकी जड़ें इतिहास से जुड़ी हुई हैं। आक्रमणकारी, अत्याचारियों के भय से बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, के साथ ही बालिकाओं की हत्या की एक परम्परा चल पड़ी थी। बालिका के पैदा होते ही उसकी हत्या कर देने से लोग स्वयं को अधिक सन्तुष्ट समझते थे। इस तरह के महापाप के पीछे सिर्फ एक कारण नहीं है बल्कि अनेक कारण जिम्मेदार हैं, उनमें से दहेज और सामाजिक कुदृष्टि सबसे अधिक घातक रहे हैं। दहेज प्रथा ने समाज में कन्याओं के जीवन को कष्टप्रद बनाया है, साथ ही कन्याओं के माता-पिता भी इससे अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करते हैं। धन के लालच में लोग अपनी ही बहुओं की हत्या कर रहे हैं। यद्यपि इन अपराधों को रोकने का प्रयास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले से हो रहा है किन्तु सफलता आज तक नहीं मिल पाई।

नवभारत टाइम्स (7 अप्रैल 2016) के लेख के अनुसार देश में हर घंटे लगभग एक महिला दहेज हत्या की शिकार होती है। दहेज के लिए महिलाओं की हत्या, शारीरिक, मानसिक शोषण का इस तरह की हिंसा में बड़ा योगदान है। जबकि दहेज हत्या को रोकने के लिए दहेज हत्या निषेध अधिनियम 1961, भारतीय दंड संहिता की धारा 304बी और धारा 498ए के आधार पर सजा का प्रावधान किया गया है। दहेज लेना और देना दोनों को ही अपराध के श्रेणी में रखा गया है लेकिन दहेज हत्या और शारीरिक, मानसिक यातनाएँ कम नहीं हो रही हैं। उत्तर प्रदेश और बिहार में दहेज विवाह की अनिवार्य शर्त है और सभी इससे प्रभावित हैं किन्तु शिकायत तभी दर्ज होती है जब महिला को यातना दी जाती है अथवा उसकी हत्या हो जाती है। जबकि दहेज माँगते समय ही शिकायत दर्ज होना चाहिए। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के अनुसार 2009 से 2015 तक 1,29,797 महिलाओं की हत्या दहेज के कारण हुई थी। दहेज इतनी भयानक प्रथा है कि कन्या के पिता को कई बार अपनी सम्पत्ति बेचकर बेटी का विवाह करना पड़ता है। इस कुप्रथा के कारण भी कन्या शिशु हत्या, भ्रूण हत्या जैसे पाप को बढ़ावा मिला।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि सबसे पहले हमें समाज को, उसकी सोच को बदलना होगा, बेटा या बेटी में भेद-भाव समाप्त करना होगा, बालिकाओं के लिए भी

बेहतर शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना होगा। प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत का आरक्षण देना ही होगा। बच्चों को अच्छे संस्कार देने होंगे, माता-पिता को बच्चों के समक्ष ऐसे आदर्श को स्थापित करना होगा कि वह स्वत: महिलाओं का सम्मान करना सीखे, रिस्तों की पवित्रता को पुन: स्थापित करना होगा, धार्मिक विभेद और हिंसा को समाप्त करना होगा, एक अपराध की एक ही सजा सुनिश्चित करनी पड़ेगी, कठोर न्याय व्यवस्था को लागू करना होगा, त्वरित न्याय देना होगा, समाज से अनैतिक गतिविधियों को समाप्त करना होगा, सरकारी कार्यों के इतर समाज को अपनी जिम्मेदारी उठानी होगी, क़ानूनों का पालन स्वत: ईमानदारी से करना होगा तब कहीं जाकर महिलाओं के लिए उचित वातावरण का निर्माण हो पाएगा और महिलाओं का विकास सम्भव हो पाएगा। इस प्रकार के प्रयासों से भारत में महिलाओं के नैतिक सामाजिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। सामाजिक मूल्यों को बचपन से ही बच्चों के संस्कार में डालना होगा जिससे समाज का नैतिक उत्थान हो सके और लैंगिक अपराधों से देश को मुक्त बनाया जा सके।

सन्दर्भ

अल्टेकर, ए.एस (1938). *द पोजीशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन*, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

नारंग, अमरजीत सिंह (2009) *भारतीय शासन एवं राजनीति*, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, आनन्द लोक, नई दिल्ली

शर्मा, कविता (2010). *स्त्री विकास की ऐतिहासिक रूपरेखा (अवधारणा, विकास, सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक सन्दर्भ)*, रजत प्रकाशन, नई दिल्ली

विप्लव (2010). *महिला सशक्तीकरण : विविध आयाम*, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 182-193)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के लिए भारत की महत्वाकांक्षा : सम्भावनाएँ तथा बाधाएँ

कमल कुमार* एवं जोया†

भारत 1 जनवरी 2021 को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् (यूएनएससी) का अस्थायी सदस्य बना, 2021-22 में दो वर्षों के लिए यूएनएससी में एक अस्थायी सीट जीतने के साथ अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भारत की उपस्थिति को बढ़ावा मिला। यह सुरक्षा परिषद् में भारत का आठवाँ कार्यकाल था। इस कार्यकाल के दौरान भारत का समग्र उद्देश्य सुधारित बहुपक्षीय प्रणाली के लिए एक नयी दिशा को प्राप्त करना था। यूएनएससी अपनी स्थापना के 75वें वर्ष को प्राप्त कर चुकी है, इसलिये बहुपक्षवाद के अस्तित्व के लिए इसका सुधार अपरिहार्य माना जाता है। भारत अन्य देशों के साथ मिलकर यूएनएससी में सुधारों के लिए प्रयास कर रहा है। भारत की नजर में संयुक्त राष्ट्र का कोई भी सुधार इक्कीसवीं सदी की समकालीन वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करने के लिए सुरक्षा

*आचार्य, राजनीतिशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail:
†शोधार्थी, राजनीतिशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.)
E-mail: zoyaajgtar867@gmail.com

परिषद् की संरचना में बदलाव के बिना पूरा नहीं होता है। इसके लिए सुरक्षा परिषद् की स्थायी और गैर-स्थायी दोनों श्रेणियों में विस्तार की आवश्यकता है। भारत एक वैश्विक शक्ति के रूप में अपनी स्थिति में सुधार करने और अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए यूएनएससी में स्थायी सदस्यता के लिए दावा करता है। भारत का मानना है कि बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था के उदय के कारण वैश्विक परिस्थितियाँ बहुत बदल गयी हैं और इस प्रकार, सुरक्षा परिषद् में सुधारों की आवश्यकता है। भारत दुनिया की सबसे बड़ी जनसंख्या वाला देश है और शुरूआत से ही संयुक्त राष्ट्र और इसकी गतिविधियों से जुड़ा रहा है। इसके अलावा, भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र, सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और दक्षिण एशिया में एक प्रमुख नेता है। इस लेख का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र के प्रतिष्ठित प्रमुख अंग, सुरक्षा परिषद् के विस्तार के बड़े अभियान के एक हिस्से के रूप में स्थायी सीट सुरक्षित करने के भारत के राजनीतिक और कूटनीतिक प्रयासों का विस्तार से विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : संयुक्त राष्ट्र, सुरक्षा परिषद्, वीटो शक्ति, स्थायी सदस्यता, बहुपक्षीयतावाद।

परिचय

संयुक्त राष्ट्र एक अन्तर-सरकारी संगठन है जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा बनाये रखना है, जिसका वह इतिहास में 75 वर्षों से दावा कर रहा है। जबकि यह राज्यों के बीच शंका का विषय बन गया है कि वे ऐसा वास्तव में कर रहा है या केवल दिखावा कर रहा है (मूर्ति, 1995)। आलोचकों के अनुसार-तीसरी दुनिया और विकासशील देशों में संयुक्त राष्ट्र केवल सहायता करने का अभिनय कर रहा है, लेकिन दूसरी ओर वास्तविकता में वे सिर्फ अमीर और विकसित देशों के लिए काम कर रहे हैं और उनके पक्ष में हैं और इस तरह अपनी शक्ति और आर्थिक क्षमता को बढ़ाने के लिए और विभिन्न तरीकों से लाभ उठाने के इच्छुक हैं तथा वे अन्य अल्प विकसित देशों का नये और आधुनिक उपनिवेशवाद की तरह नये तरीके से शोषण कर रहे हैं (मूर्ति, 1995)। संयुक्त राष्ट्र के भीतर महत्वपूर्ण निकाय संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् है और संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 23 में पाँच देशों को परिषद् के स्थायी सदस्यों के रूप में नामित किया गया है। किस आधार पर केवल उन पाँचों को - अन्य को नहीं - स्थायी सदस्यता का दर्जा प्रदान किया गया, साझा नहीं किया गया। बस यह एक स्व-प्रदत्त स्थिति थी जिसने द्वितीय विश्व युद्ध में अपनी जीत के आधार पर इन पाँच देशों में से कुछ को औपचारिक रूप से दुर्जेय कद प्रदान किया था। उनमें से कम से कम दो (चीन और फ्रांस) ने यह दर्जा अर्जित नहीं किया; वे केवल अन्य तीन - संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन और भूतपूर्व सोवियत संघ - की भू-राजनीतिक आवश्यकताओं में निहित होने से लाभार्थी थे (मूर्ति, 2020)। अधिक विचार-विमर्श और योगदान के लिए उनकी संरचना में 10 गैर-स्थायी सदस्यों को शामिल किया गया है जिनका कार्यकाल दो वर्षों के लिए होता हैं (थरूर, 2012)। संयुक्त राष्ट्र के लगभग सभी सदस्य सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य बनने की इच्छा रखते हैं और इस महत्वपूर्ण सदस्यता के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय

राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने और अपने राष्ट्रीय लाभ और राष्ट्रीय हित प्राप्त करना चाहते हैं।

सुरक्षा परिषद् में सुधार की समस्या एक ऐसी बीमारी के समान है जिसमें एक मरीज के आसपास कई डॉक्टर इकट्ठा हो जाते हैं; वे सभी निदान पर सहमत हैं, लेकिन वे नुस्खे पर सहमत नहीं हो सकते। निदान स्पष्ट है - सुरक्षा परिषद् आज की नहीं, बल्कि 1945 की भू-राजनीतिक वास्तविकताओं को प्रतिबिम्बित करती है। इस स्थिति का विश्लेषण गणितीय, भौगोलिक और राजनीतिक रूप से, साथ ही समानता के सन्दर्भ में भी किया जा सकता है (थरूर, 2012)।

- ***गणितीय रूप से :*** जब 1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई थी, तो संयुक्त राष्ट्र के कुल 51 देशों में से परिषद् में ग्यारह सदस्य शामिल थे; दूसरे शब्दों में, लगभग 22 प्रतिशत सदस्य देश सुरक्षा परिषद् में थे। आज, संयुक्त राष्ट्र के 193 सदस्य हैं, और परिषद् में केवल 15 सदस्य हैं, जो 8 प्रतिशत से भी कम हैं। इतने सारे देश, पूर्ण संख्या में और सदस्यता के अनुपात में, निकाय में पर्याप्त प्रतिनिधित्व महसूस नहीं करते हैं (गाउल्ड एवं रेब्लेन, 2017)।
- ***भौगोलिक दृष्टि से :*** परिषद् की संरचना उन दिनों के शक्ति सन्तुलन को भी अनुचित महत्व देती है, उदाहरण के लिए, यूरोप, जो दुनिया की आबादी का बमुश्किल 5 प्रतिशत है, फिर भी 33 प्रतिशत सीटों पर नियन्त्रण रखता है (इसमें रूस, एक अन्य यूरोपीय शक्ति, की गिनती नहीं है)।
- ***राजनीतिक रूप से :*** पाँच स्थायी सदस्य (संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस और चीन) दशकों पहले युद्ध जीतने के कारण अपनी स्थिति और किसी भी परिषद् के प्रस्ताव या निर्णय पर वीटो के विशेषाधिकार का आनन्द लेते हैं।
- ***समानता के सरल विचारों के सन्दर्भ में :*** यह स्थिति उन देशों के लिए अन्यायपूर्ण है जिनका संयुक्त राष्ट्र में वित्तीय योगदान पाँच स्थायी सदस्यों में से चार से अधिक है - जापान और जर्मनी दशकों से संयुक्त राष्ट्र बजट में क्रमशः 19 प्रतिशत और 12 प्रतिशत पर, दूसरे और तीसरे सबसे बड़े योगदानकर्ता रहे हैं, जबकि उन्हें अभी भी 'शत्रु राज्य' के रूप में सन्दर्भित किया जा रहा है (थरूर, 2012)!

भारत की दावेदारी (स्थायी सदस्यता के लिए)

भारत 1945 में संयुक्त राष्ट्र के गठन के बाद से ही इसके साथ जुड़ा हुआ है। इसने राष्ट्रों की सामान्य सम्पदा के एक हिस्से के रूप में अपना योगदान देना शुरू किया और स्वतन्त्रता के बाद से अब तक योगदान दे रहा है।

भारत एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति है और यूएनएससी में स्थायी सदस्यता के लिए सम्भावित उम्मीदवार है। सुरक्षा परिषद् में भारत के शामिल होने से यूएनएससी में शक्ति सन्तुलन और दक्षिण एशिया का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित होगा (माथुर, 2016)।

भारत की उम्मीदवारी वैध और उचित है क्योंकि यह स्थायी सदस्यता के लिए सभी वस्तुनिष्ठ मानदंडों को पूरा करता है।

महासभा के 49वें सत्र में पहली बार आधिकारिक और खुले तौर पर भारत के विदेश मन्त्री ने जोर देकर स्थायी सदस्यता के लिए अपना पक्ष रखा - "किसी भी मानदंड - जनसंख्या, अर्थव्यवस्था का आकार, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के रखरखाव में योगदान और शान्ति स्थापना या भविष्य की सम्भावनाओं के आधार पर - भारत सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनने का हकदार है। भारत की धारणा में, जब परिषद् के विस्तार के लिए कोई वस्तुनिष्ठ मानदंड लागू किया जाता है तो भारत एक स्पष्ट विकल्प बन जाता है" (मूर्ति, 2020)।

भारत का स्थायी सदस्यता के लिए अभियान

आरम्भ में, भारत यूएनएससी में अपनी स्थायी सदस्यता को लेकर असमंजस में था। 1945 में सैन फ्रांसिस्को सम्मेलन के बाद के विभिन्न समयों में, भारत ने यूएनएससी में अपने प्रतिनिधित्व के दावे को उचित ठहराया। भारत ने 1994 महासभा के सत्र में स्थायी सदस्यता के लिए आधिकारिक तौर पर अपनी माँग रखी। भारत द्वारा सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के लिए समय-समय पर विभिन्न अभियान चलाये गये हैं।

सर्वप्रथम निर्विवाद रूप में भारत ने विश्व राजनीतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान हासिल किया है और प्रभावशाली ढँग से स्वयं को प्रदर्शित किया है। 1998 के भूमिगत परमाणु हथियार परीक्षणों और सफल मध्यवर्ती और लम्बी दूरी की मिसाइल परीक्षणों की शृंखला ने इसकी शक्ति क्षमताओं को बढ़ाया। उन्नत अन्तरिक्ष प्रौद्योगिकी के उपयोग में भारत की प्रगति जारी है (मूर्ति, 2020)।

संयुक्त राज्य अमेरिका ने 2007 में एक प्रमुख नागरिक परमाणु सहयोग समझौता करके भारत के प्रति सकारात्मक सोच प्रदर्शित की और परमाणु प्रमुख (चीन को छोड़कर) चाहते हैं कि भारत परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह का हिस्सा बने। इसके अलावा आर्थिक वैश्वीकरण द्वारा प्रदान किये गये अवसरों और उदारीकरण की अपनी नीतियों के कारण भारत का अत्यधिक प्रभावशाली आर्थिक उत्थान हुआ है। नयी सदी के शुरूआती वर्षों में, विशाल भारतीय बाजार ने अभूतपूर्व स्तर पर विदेशी निवेश को आकर्षित किया, इसने विदेशी मुद्रा के आरामदायक स्तर का निर्माण किया, और इसने निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों की आय में वृद्धि की, इन सबसे बढ़कर देश हाल ही में तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है और दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है, जो पिछले लगभग एक दशक से औसतन 7-8 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है। विश्व आर्थिक मंच की दावोस बैठक में वैश्विक कॉर्पोरेट्स के लिए एक विशेष आकर्षण बनने के अलावा, भारत 20 प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं के समूह जी20 जैसे विश्व आर्थिक शक्तियों की नियमित सभा का हिस्सा बन गया है। संयुक्त राष्ट्र के अधिकांश प्रमुख शान्ति अभियानों के लिए पूरी तरह से गठित सेना

और पुलिस टुकड़ियों का योगदान करने की भारत की तत्परता ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा प्रयासों में भारत की एक जिम्मेदार और विश्वसनीय भागीदार के रूप में फिर से पुष्टि की है। भारत की पहल पर, संयुक्त राष्ट्र ने 2014 में भारतीय प्राचीन योग परम्परा के लाभों को मान्यता दी और अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के वार्षिक पालन के लिए माग प्रशस्त किया। इस तथ्य के अलावा कि भारत अब सहायता प्राप्त करने वाला देश नहीं है, वास्तव में, यह पड़ोस और उससे परे विकासशील देशों के लिए एक महत्वपूर्ण विकास भागीदार के रूप में उभरा है।

भारत के अभियान का दूसरा पहलू द्विपक्षीय सम्पर्कों के माध्यम से अपनी उम्मीदवारी के लिए समर्थन प्राप्त करना है। भारत के राजनेताओं का विदेशी राजधानियों का दौरा करने और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि बड़ी, मध्यम और छोटी शक्तियों से आने वाले लगभग हर विदेशी गणमान्य व्यक्ति के साथ बातचीत को महत्व देना भारत की आकांक्षा के लिए समर्थन प्राप्त करना था।

संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, रूस और ब्रिटेन जैसे स्थायी सदस्यों के अलावा अधिकांश पड़ोसी देशों, अफ्रीकी देशों, छोटे द्वीपों तथा विकासशील देशों ने भारत की आकांक्षा के प्रति अपना समर्थन दिया है। अधिकारियों ने 2012 में दावा किया था कि लम्बे वर्षों से शुरू की गयी लॉबिंग की बदौलत भारत को लगभग 130 देशों का समर्थन प्राप्त है (राजन, 1973)।

पचासवीं वर्षगाँठ की स्मारक बैठक में बोलते हुए, भारतीय प्रधानमन्त्री ने इस बात पर जोर देते हुए कहा कि संयुक्त राष्ट्र न तो विशिष्टतावादी या अधूरा देखा जा सकता है, न तो उपस्थिति में और न ही दृष्टिकोण में। स्थायी सदस्यता की सभी जिम्मेदारियाँ सँभालने के लिए भारत की तत्परता की घोषणा करते हुए, एक अन्य प्रधानमन्त्री ने 1997 के महासभा सत्र में भारत की स्थायी सदस्यता की आकांक्षा को विस्तार से बताया है - “हम दुनिया में सबसे बड़े लोकतन्त्र हैं, हमारी सभ्यता प्राचीन मूल्यों और उपलब्धियों से परिपूर्ण है, साथ ही सार्वभौमिक प्रेरणा, सहभागी शासन पर आधारित विश्व दृष्टिकोण भी है। विविधता और बहुलवाद के प्रति सम्मान, साथ ही विश्व मामलों में रचनात्मक भागीदारी के लिए तत्परता भारत की विलक्षण शक्ति को दर्शाता है। हमारा मानना है कि ये ताकतें विस्तारित सुरक्षा परिषद् के लिए सम्पत्ति होंगी। दुनिया की अग्रणी अर्थव्यवस्थाओं में से एक के रूप में भारत की स्थिति उत्तरोत्तर मजबूत होगी और हम स्थायी सदस्यता की जिम्मेदारी पूरी तरह से उठाने के लिए तैयार हैं। संयुक्त राष्ट्र के शान्ति अभियानों में भारत की दीर्घकालिक भागीदारी न केवल भारतीय सैनिकों के समर्पण और व्यावसायिकता की गवाही देती है, बल्कि इन अभियानों में सक्रिय रूप से योगदान देने की सरकार की राजनीतिक इच्छाशक्ति की भी गवाही देती हैं।”

प्रत्येक प्रधानमन्त्री, चाहे वह अटल बिहारी वाजपेयी हों, मनमोहन सिंह हों या नरेन्द्र मोदी हों, उन्होंने सुरक्षा परिषद् की सदस्यता में समय पर बदलाव का आह्वान किया और कहा कि भारत विस्तारित परिषद् में अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार है।

भारत में सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनने की योग्यता

जनसंख्या

1.38 अरब जनसंख्या के साथ भारत दुनिया में सबसे बड़ी आबादी वाला देश है, और भारत पूरी दुनिया की 18 प्रतिशत आबादी का प्रतिनिधित्व करता है जो एक बड़ा हिस्सा है।

तीव्र आर्थिक विकास

नवीनतम रिपोर्टों के अनुसार भारत दुनिया की पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है और देश 1990 से और विशेष रूप से 2006 के बाद से दुनिया में बड़े आर्थिक सौदों और विकास में शामिल रहा है और दुनिया की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक रहा है (मुखर्जी एवं मलोल, 2013)। पिछले दो दशकों में और दुनिया में सबसे युवा मानव संसाधन रखने वाले और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था के लिए सभी महत्वपूर्ण मुद्दों में दुनिया की महान आर्थिक शक्तियों के साथ अत्यधिक योगदान देने वाले और ग्लोबल वार्मिंग काउंटर देशों में सक्रिय सदस्य भी रहा हैं।

भारत : एक जिम्मेदार और सबसे बड़ा लोकतन्त्र

जब लोकतन्त्र की बात आती है तो भारत दुनिया का सबसे बड़ा प्रतिनिधि लोकतन्त्र धारक है। वर्तमान में भारत की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 18 प्रतिशत है। अमेरिकी जनसंख्या सन्दर्भ ब्यूरो का दावा है कि भारत की जनसंख्या 2025 तक 140 करोड़ और 2050 तक 170 करोड़ तक पहुँच जाएगी। दो तिहाई आबादी स्थायी श्रेणी में प्रतिनिधित्व के बिना रह गयी। ये दोनों तथ्य यूएनएससी में स्थायी सीट के लिए भारत के दावे के लिए पर्याप्त कारण बताते हैं।

उदारीकरण और वैश्वीकरण के बाद भारत का आर्थिक उदय

महामारी के बाद भी भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बना हुआ है और जी20 तथा विश्व आर्थिक मंच जैसी वैश्विक आर्थिक शक्तियों की सभाओं में सहभागी है। भारत इस बात पर उचित रूप से जोर देता है कि अर्थव्यवस्था में आकार, लचीलापन और आत्मनिर्भरता प्रमुख कारक हैं जो किसी राष्ट्र को निर्णय की स्वतन्त्रता का प्रयोग करने और कार्रवाई को प्रभावित करने के लिए सशक्त बनाता है।

संयुक्त राष्ट्र शान्ति सेना और शान्ति स्थापना संचालन में भूमिका

भारत शान्ति स्थापना अभियानों में प्रमुख योगदान देता है और एक जिम्मेदार देश के रूप में उभरा है। भारत ने शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विश्वसनीय भागीदारी निभाई है। भारत के पास 14 लाख से अधिक शान्ति सेना है, हाल के

आँकड़ों के अनुसार संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की शान्ति सेना में भारत का योगदान बहुत अधिक है और भारत के पास चीन के बाद दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी शान्ति सेना है, जिसका अर्थ है कि शेष चार महान शक्तियों से भी अधिक शान्ति सेना के द्वारा भारत ने संयुक्त राष्ट्र के शान्ति अभियान में योगदान दिया हैं। निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि भारत सार्वभौमिक शान्ति सेना के योगदान के तहत यूएनएससी में स्थायी सदस्य बनने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम है।

अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस

भारत अपनी प्राचीन संस्कृति के महत्व को घर-घर पहुँचाने में सक्षम है। योग परम्परा भारत के 'सॉफ्ट पॉवर' की परिचायक है।

विकासशील देशों का नेता

भारत दूसरे विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद से विकासशील देशों का नेता है और विशेष रूप से 1947 में उपनिवेशवाद की लम्बी अवधि और औपनिवेशिक शासन के अधीन रहने के बाद ब्रिटिशों से अपनी आजादी हासिल करने के बाद से भारत विकासशील देशों का नेतृत्व कर रहा है, विकासशील देशों में पहली सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और दुनिया में सबसे तेज आर्थिक और सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि के साथ दुनिया की पाँचवीं सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति और 505 करोड़ डॉलर के निर्यात के साथ दुनिया का चौथा सबसे बड़ा निर्यातक देश है। दुनिया के चार बड़े आर्थिक क्षेत्रों यूरोपीय संघ, चीन, अमेरिका और रूस के साथ उसके मजबूत आर्थिक सम्बन्ध हैं।

एक विकासशील देश के रूप में भारत के सम्बन्ध में इन सभी मजबूत बिन्दुओं के साथ यह स्पष्ट है कि भारत बड़ी संख्या में विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य हो सकता है। विश्व के महत्वपूर्ण निर्णय लेने में शामिल होने के लिए भारत एक आदर्श विकल्प और नेता है जो इन देशों के अधिकारों और अवसरों का प्रतिनिधित्व और दावा कर सकता है (पन्त एवं जोशी, 2016)।

सदस्यता के विस्तार से सम्बन्धित भारत का व्यावहारिक एवं लचीला प्रारूप

भारत ने स्थायी सीट के मामले में काफी समझदारी और परिपक्वता का परिचय दिया है। हालाँकि इस सम्बन्ध में भारत का दृष्टिकोण रूढ़िवादी रहा है, यह किसी भी क्रान्तिकारी सुधार का विरोध करता है, लेकिन यह दिखावटी सुधारों से कहीं अधिक की आवश्यकता पर भी जोर देता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसने रूढ़िवादी तरीके से सुधारों का सुझाव दिया है

गैर-स्थायी सदस्यों के मामले में लागू समान भौगोलिक प्रतिनिधित्व के आधार पर चुने गये वर्तमान और भविष्य के सदस्यों के बीच भेदभाव किये बिना स्थायी और गैर-स्थायी

दोनों सदस्यों को बढ़ाकर एक ही ढाँचे के भीतर समावेश किया। इसने यह भी सुझाव दिया है कि नयी स्थायी सीटें देशों के समूह का प्रतिनिधित्व करने की अपेक्षा एकल देशों की होनी चाहिए। इसने नये स्थायी सदस्यों को वीटो शक्ति देने पर भी अपना रुख नर्म कर लिया है और 15 साल के अन्तराल के बाद इसकी समीक्षा करने के लिए तैयार है।

स्थायी सीट हेतु प्रयास करने के लिए भारत ने विभिन्न राष्ट्रों के समान विचारधारा वाले समूहों के साथ संघ और गठबन्धन बनाये और सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह जापान, जर्मनी और ब्राजील वाले जी-4 में शामिल हो गया है।

इन देशों और भारत को, कम से कम दो-तिहाई देशों का अनिवार्य समर्थन प्राप्त हो रहा है। वीटो के सवाल पर जी-4 देशों ने स्पष्ट कर दिया है कि जब तक समीक्षा में मामले पर निर्णय नहीं हो जाता तब तक वे वीटो शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे, जो इसके लागू होने के 15 साल बाद आयोजित किया जाना है। भारत ने छोटे और विकासशील देशों का एक बड़ा समूह तैयार करने में भी पहल की, जिसमें कैरेबियाई और प्रशान्त द्वीपीय देश शामिल हैं जिन्हें एल69 समूह कहा जाता है जो छह नये स्थायी सदस्यों को सुरक्षा परिषद् में शामिल करने की अनुशंसा करता है लेकिन वीटो शक्ति के सम्बन्ध में उनका रुख कट्टरपन्थी है कि या तो सभी स्थायी सदस्यों को वीटो शक्ति का आनन्द लेना चाहिए या किसी को भी नहीं। भारत ने स्वयं को इन दोनों समूहों के साथ जोड़ लिया है ताकि स्थायी सदस्यता के समर्थन के लिए अधिकतम लाभ प्राप्त कर सके।

भारत के लक्ष्य में बाधाएँ

चार्टर

1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार - पाँच परमाणु शक्ति सम्पन्न देश स्थायी सदस्य होंगे और केवल छह सदस्य देश ही गैर-स्थायी सदस्य हो सकते हैं जिसकी संख्या 1963 में बढ़कर 10 हो गयी। ये कुल 15 स्थायी और गैर-स्थायी सदस्य अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के लिए निर्णय लेने वाले बोर्ड में हैं और प्रत्येक निर्णय के लिए 15 में से नौ वोटों की आवश्यकता होती है, जिसमें सभी पाँच स्थायी सदस्यों के वोट शामिल हैं। इसका मतलब है कि ये गैर-स्थायी सदस्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं। भारत एक अस्थायी सदस्य है लेकिन वह इस सदस्यता से सन्तुष्ट नहीं है क्योंकि जब संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में भारत के पक्ष की बात आएगी तो चीन को विरोधी पक्ष मिल जाएगा और वह अपनी वीटो शक्ति का उपयोग करेगा और सम्भवत: मामले को खारिज कर देगा। जिससे यह समझ आता है कि इस अस्थायी सदस्यता का भारत के लिए कोई मतलब नहीं है। उदाहरण के लिए, एक अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी मसूद अजहर के मामले में भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के माध्यम से दुनिया के सभी देशों से उस पर प्रतिबन्ध लगाने का अनुरोध करता है, लगभग सभी सदस्य सहमत हो जाते हैं, लेकिन एकमात्र देश चीन इसे अस्वीकार करता है, जो इस सम्बन्ध में अपनी वीटो शक्ति का उपयोग कर भारत के प्रस्ताव को पारित होने से रोक देता है।

चार्टर संशोधन

भारत के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनने का एकमात्र रास्ता यह है कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन कर संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की संरचना में कुछ बदलाव किये जाएँ, जिसके तहत उल्लिखित स्थायी सदस्यों की संख्या पाँच से बढ़ाकर छह या अधिक कर दी जाए। तो सवाल यह है कि ये संशोधन कैसे हो सकता है?

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार यदि महासभा संयुक्त राष्ट्र चार्टर में बदलाव करना चाहती है तो उसे सभी सदस्यों के साथ एक आम सभा बैठक की आवश्यकता होती है और फिर चार्टर में बदलाव को पूरा करने के लिए इस निर्णय के लिए आवश्यक वोट का दो तिहाई वोट प्राप्त करना होता है। सदस्य बनने वाले देशों को 129 देशों का समर्थन प्राप्त करना होगा, जिससे भारत के लिए संशोधन के लिए इतने वोट को प्राप्त करना बहुत आसान हो सकता है, पिछले चुनाव के अनुसार गैर-स्थायी सदस्य बनने के लिए भारत 184 वोट को हासिल करने में कामयाब रहा। इसलिये यह काफी स्पष्ट है कि भारत संयुक्त राष्ट्र चार्टर में संशोधन के लिए अपने पक्ष में 129 देशों के वोट तक आसानी से पहुँच सकता है, लेकिन बाधा यह है कि ये 129 देश संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्यों के पाँच वोटों की शर्त के साथ संशोधन के लिए मतदान करने के लिए सहमत हों। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में वीटो शक्ति होने के कारण वर्तमान स्थिति के अनुसार चीन की उपस्थिति के कारण इन पाँच मतों तक पहुँचना कठिन है।

चीन द्वारा उत्पन्न अवरोध

जी-4 समूह (भारत, जर्मनी, ब्राजील और जापान) यूएनएससी में वीटो शक्तियों के साथ स्थायी सदस्यों के रूप में शामिल होने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं, लेकिन सभी जी-4 सदस्यों को अपने पड़ोसी देशों, जैसे - ब्राजील से अर्जेंटीना, जर्मनी से इटली, जापान से चीन और दक्षिण कोरिया और भारत को पाकिस्तान और चीन से कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि भारत को सभी पी-5 सदस्यों (चीन सहित) द्वारा स्थायी सीट का आश्वासन दिया गया है, लेकिन फ्रांस को छोड़कर सभी यूएनएससी में भारत के प्रवेश के किसी न किसी चरण में पीछे हट गये हैं।

सबसे बड़े कारणों और कारकों में से एक जो भारत की यूएनएससी में स्थायी सदस्यता की प्राप्ति को कठिन बनायेगा वह चीन की उपस्थिति है। चीन द्वारा भारत की स्थायी सदस्यता को लेकर बार-बार अवरोध पैदा किये गये हैं, चीन के पास भारत के यूएनएससी में स्थायी सीट के सपने को तोड़ने के अपने कारण हैं - चीन भारत को अपना स्वाभाविक शत्रु मानता है, और वह एशिया में अपना क्षेत्रीय वर्चस्व चाहता है और उसका मानना है कि भारत को स्थायी दर्जा देने से उसका अधिकार कमजोर हो जाएगा, इसके अलावा भारत लम्बे समय से अपनी धरती पर दलाई लामा की मेजबानी करता आ रहा है। अब समस्या यह है कि तिब्बत पर चीन का दावा है, जो भारत में तिब्बत के आध्यात्मिक नेता की उपस्थिति में थोड़ा कमजोर

हो जाता है, जिसके कारण चीन भारत के साथ खराब रिश्ते रखता है और उसे यूएनएससी में प्रवेश नहीं करने देता है। कुछ सूत्रों का दावा है कि चीन पाकिस्तान का रणनीतिक साझेदार होने के कारण भारत के यूएनएससी प्रयासों का विरोध कर रहा है (गुप्ता, 2020)।

सदस्य देशों के बीच आपसी मतभेद

"नये स्थायी सदस्यों को वीटो के विस्तार पर एल-69 की स्थिति जी-4 की तुलना में अधिक मजबूत है। एल69 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वीटो शक्ति को समाप्त किया जाना चाहिए, या फिर इसे श्रेणी के सभी नये सदस्यों तक बढ़ाया जाना चाहिए।" कोई भी सुरक्षा परिषद् में सुधारों की प्रकृति और दायरे पर ग्लोबल साउथ के भीतर क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर दोनों तरह के गम्भीर मतभेदों के बारे में कठोर वास्तविकता से बच नहीं सकता है (मूर्ति, 2011)। इस धारणा के विपरीत कि विस्तारित सुरक्षा परिषद् पर आम सहमति की कमी के लिए स्थायी सदस्य जिम्मेदार हैं, यह एक कड़वी सच्चाई है कि एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के क्षेत्रों के विकासशील देश विस्तार के मुद्दे पर गहराई से विभाजित हैं। ये मतभेद मुख्य रूप से स्थायी सीटों के जुड़ने की स्थिति में पहले से ही असहज अन्तर्राज्यीय सम्बन्धों पर गम्भीर उप-क्षेत्रीय भू-राजनीतिक परिणामों के कारण हैं। उदाहरण के लिए, लैटिन अमेरिकी देश ब्राजील की उम्मीदवारी पर सहमत नहीं हैं; विशेष रूप से, अर्जेंटीना और मैक्सिको उनके विरोध में हैं। इसी तरह, पाकिस्तान स्वाभाविक रूप से इस बात को लेकर चिन्तित है कि अगर भारत को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया तो इसके अपरिवर्तनीय भू-राजनीतिक प्रभाव होंगे। इसके अलावा, दोनों कोरिया जापान के स्थायी सदस्य बनने की उम्मीदों के सख्त विरोधी हैं। इसी तरह, इटली और स्पेन को अपने स्तर पर जर्मनी की उम्मीदवारी पर आपत्ति है। अफ्रीकी देशों के अपने आन्तरिक मतभेद हैं और वे दक्षिण अफ्रीका, नाइजीरिया या किसी अन्य देश के दावों का समर्थन करने में असमर्थ हैं, अरब देश इस बात से नाखुश हैं कि वे मौजूदा भौगोलिक समूह में फिट नहीं बैठते हैं, और अपने लिये एक स्थायी सीट की माँग करते हैं। इसके अलावा, कई छोटे देशों को लगता है कि वर्तमान दावेदारों की अपेक्षा वे ही स्थायी सीट के हकदार हैं, जो अपने बल पर अपनी सुरक्षा का ख्याल रख सकते हैं। सैद्धान्तिक रूप से, सभी वर्गों के सदस्यों के बीच दृढ़ विश्वास है कि वीटो शक्ति संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय की गयी एक गलती थी; इसलिये वीटो शक्ति वाले नये स्थायी सदस्यों को जोड़कर इसे सुदृढ़ करने के लिए कुछ नहीं किया जाना चाहिए। वहीं कुछ प्रभावशाली छोटे देशों ने विस्तार की अपेक्षा कामकाज के तरीकों में सुधार पर ध्यान देने की वकालत की है। दरअसल, विकासशील देश इस विषय पर लम्बे समय से विभाजित हैं, यह इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि न तो गुटनिरपेक्ष समूह और न ही जी-77 देशों के बीच आम सहमति वाली स्थिति है। अब से बिल्कुल विपरीत, 1960 के दशक के मध्य में गैर-स्थायी श्रेणी के सदस्यों के विस्तार की सफलता मुख्य रूप से उस समय गुटनिरपेक्ष और विकासशील देशों के संयुक्त प्रयास के कारण देखने को मिली थी।

अन्य बाधाएँ

परिषद् की स्थायी सदस्यता के विस्तार के प्रयासों में सबसे बड़ा व्यवधान होने का श्रेय लगभग 30 देशों के हाई-प्रोफाइल गठबन्धन को जाता है, जो खुद को यूनाइटिंग फॉर कंसेंसस (यूएफसी) समूह के रूप में पहचाने जाते हैं। समूह में अर्जेंटीना, कनाडा, कोलम्बिया, इटली, मैक्सिको, स्पेन और पाकिस्तान सक्रिय हैं। वे स्थायी श्रेणी को अक्षुण्ण और अपरिवर्तित बनाये रखने के लिए एकजुट हैं, और स्थायी श्रेणी के विस्तार के जी-4 के कदम को अलोकतान्त्रिक बताते हुए दृढ़तापूर्वक अस्वीकार करते हैं (मूर्ति, 2020)। अन्यायपूर्ण यथास्थिति का बनाये रखने के समर्थन के साथ यूएफसी केवल गैर-स्थायी सीटों को जोड़ने की वकालत करता है, जिसमें से कुछ के तत्काल पुनः चुनाव का प्रावधान हैं। इस डर से कि भारत और जी-4 देश मतदान प्रक्रियाओं के लिए कोई संक्षिप्त मार्ग ढूँढ सकते हैं, यूएफसी देशों ने किसी भी प्रकार के बहुमत द्वारा रेल-रोडिंग का विरोध किया है और व्यापक सम्भव समझौते, अर्थात् सर्वसम्मति को प्राथमिकता दी है। इसके बाद, 'लम्बी अवधि की गैर-स्थायी सीटों के आधार पर, सदस्यता की एक नयी श्रेणी की अनुमति देने के लिए' प्रस्ताव को दोबारा दोहराया गया।

निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र का गठन 1945 में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा बनाये रखने और देशों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 51 देशों द्वारा किया गया था और 78 वर्षों के बाद यह संख्या बढ़कर 193 देशों तक पहुँच गयी है। हालाँकि, बदलती विश्व गतिशीलता से संकेत मिलता है कि यूएनएससी में सुधारों की तत्काल आवश्यकता है क्योंकि संगठन विकासशील दुनिया और उनकी जरूरतों का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की संरचना मौजूदा वीटो शक्ति के कारण पक्षपाती और गैर-प्रतिनिधित्वपूर्ण है जो पाँच स्थायी सदस्यों - संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, चीन और फ्रांस के बीच साझा की गयी है, ये सभी स्थायी सदस्य वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं (माथुर, 2016)। भारत, जापान, जर्मनी और ब्राजील (जी4) जैसे कई अन्य देश सुरक्षा परिषद् को अधिक लोकतान्त्रिक और प्रतिनिधि बनाने के लिए स्थायी सदस्यता का दावा करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सुरक्षा परिषद् की संरचना के विस्तार का प्रश्न वह भी एक उच्च प्राथमिकता वाले मामले के रूप में भारत द्वारा अब तक उठाये गये सबसे जटिल कार्यों में से एक है, सकारात्मक पक्ष पर, भारत के प्रयासों से स्थायी और गैर-स्थायी दोनों श्रेणियों में विस्तार के लिए शुरूआती दिनों की तुलना में कहीं अधिक समर्थन प्राप्त हुआ है। साथ ही, विभिन्न वर्गों द्वारा यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया कि विस्तार के बाद परिषद् का आकार बीसवें दशक के अनुरूप होना चाहिए। हालाँकि, दूसरी ओर, पाठ-आधारित वार्ता के लिए आधार के रूप में काम करने के लिए पिछले 10 वर्षों से अन्तर-सरकारी वार्ता के कई दौर बिना किसी रुकावट के चल रहे हैं। लेकिन कोई अन्त नजर नहीं आने के कारण,

ऑस्ट्रेलिया जैसे कुछ देशों ने अनौपचारिक परामर्श में भाग लेना बन्द कर दिया है, और भारत इस प्रक्रिया से निराश है। जैसा कि देश के पूर्व विदेश मन्त्री ने सही कहा है - "सुरक्षा परिषद् सुधार किसी देश की प्रतिष्ठा या शक्ति के बारे में नहीं है, बल्कि दुनिया में शक्ति सन्तुलन को बदलने के बारे में है"।

सन्दर्भ

मूर्ति, सी.एस.आर., (1995) 'मेकिंग द यूएन सिक्योरिटी काउंसिल मोर रिप्रेजेंटेटिव इंडियाज़ प्रॉस्पेक्ट', इन सी.एस.आर. मूर्ति (एडि.) 1995, *इंडिया इन टुमॉरोज़ यूनाइटेड नेशन,* इंडिया इंटरनेशनल सेंटर, न्यू दिल्ली.

मूर्ति, सी.एस.आर. (2020). *इंडिया इन द यूनाइटेड नेशंस: इंटरप्ले ऑफ इंटरेस्ट एंड प्रिंसिपल्स.* सेज पब्लिकेशन्स.

थरूर, शशि. (2012). *पैक्स इंडिका : इंडिया एंड द वर्ल्ड ऑफ द ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी.* पेंगुइन बुक्स इंडिया.

गाउल्ड, एम., और रैब्लेन, एम.डी. (2017). 'रिफॉर्म ऑफ द यूनाइटेड नेशंस सिक्योरिटी काउंसिल : इक्विटी एंड एफिशिएंसी'. *पब्लिक चॉइस,* 173(1-2), 145-168.

माथुर, पवन, (2016) 'द नॉन-अलाइन्ड मूवमेंट एंड द यूनाइटेड नेशंस : रिफॉर्म ऑफ द यूनाइटेड नेशंस सिक्योरिटी काउंसिल', *वर्ल्ड अफेयर्स : द जर्नल ऑफ इंटरनेशनल इश्यूज,* 20. नंबर 2.

राजन, एम.एस. (1973). 'इंडिया एंड द मेकिंग ऑफ द यूएन चार्टर'. *इंटरनेशनल स्टडीज,* 12(3), 430-459.

मुखर्जी, रोहन एंड मलोन, डेविड एम. (2013) 'इंडिया एंड द यूएन सिक्योरिटी काउंसिल : एन एम्बिग्युअस टेल', *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* जुलाई 20, वॉल्यूम. XLVIII, नंबर. 29, पृ. 110-11

हर्ष वी. पंत, एंड योगेश जोशी, (2016), *द यूएस पिवट एंड इंडियन फॉरेन पॉलिसी: एशियाज इवॉल्विंग बैलेंस ऑफ पावर,* इंडिया: पालग्रेव मैकमिलन.

गुप्ता, शिशिर, (2020) 'चाइना इज बिगेस्ट स्टम्बलिंग ब्लॉक इन इंडियाज यूएनएससी परमानेंट मेंबरशिप'. *हिंदुस्तान टाइम्स,* नवंबर 19.

मूर्ति, सी.एस.आर. (2011). *इंडिया एज अ नॉन-परमानेंट मेंबर ऑफ द यूएन सिक्योरिटी काउंसिल इन 2011-12 परस्पेक्टिव,* बर्लिन: फ्रेडरिक एबर्ट स्टिफ्टंग, मे

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 194-208)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

जल जीवन मिशन का सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास पर प्रभाव : मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र का एक अनुभवजन्य अध्ययन*

मनु गौतम† एवं अमित तिवारी‡

जल जीवन मिशन भारत सरकार की एक महत्त्वाकांक्षी पहल है, जिसका उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण परिवार को सुरक्षित एवं कार्यशील घरेलू नल जल कनेक्शन प्रदान कर सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास को सुदृढ़ करना है। प्रस्तुत शोध पत्र में मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र के नीमच एवं आगर-मालवा जिलों के सन्दर्भ में जल जीवन मिशन के सामाजिक प्रभावों का अनुभवजन्य विश्लेषण किया गया है। जल जीवन मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन से ग्रामीण परिवारों तक सुरक्षित पेयजल सेवाओं की पहुँच में उल्लेखनीय विस्तार हुआ है। तथापि, जलापूर्ति की अनियमितता, गैर-कार्यशील नल कनेक्शन, भू-जल पर अत्यधिक निर्भरता, जल गुणवत्ता निगरानी की सीमित

---

*यह शोधपत्र भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रायोजित एक शोध परियोजना के आगतों पर आधारित है।

†एसोसिएट प्रोफेसर, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.)
E-mail: gautam.ujjain@gmail.com
‡रिसर्च फेलो, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन (म.प्र.). **E-mail: ujjamit@gmail.com**

प्रभावशीलता, संचालन एवं अनुरक्षण सम्बन्धी कमियाँ तथा सिंगल विलेज स्कीम की संरचनात्मक सीमाएँ मिशन के प्रभावी एवं दीर्घकालिक क्रियान्वयन में प्रमुख चुनौतियों के रूप में उभरकर सामने आई है। अत: जल जीवन मिशन के अन्तर्गत जल स्रोत संरक्षण, वर्षाजल संचयन, भू-जल पुनर्भरण, मल्टी विलेज स्कीम का विस्तार, नियमित जल गुणवत्ता परीक्षण, ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की संस्थागत क्षमता का सुदृढ़ीकरण तथा सामुदायिक सहभागिता को प्रोत्साहित कर जल जीवन मिशन की प्रभावशीलता को सुदृढ़ किया जा सकता है, जिससे जल जीवन मिशन की दीर्घकालिक प्रभावशीलता एवं ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित, सतत एवं समावेशी विकास को अधिक सुदृढ़ किया जा सकता है।

मुख्य शब्द : जल जीवन मिशन, सुरक्षित पेयजल, महिला सशक्तीकरण, समावेशी ग्रामीण विकास।

प्रस्तावना

सुरक्षित एवं पर्याप्त पेयजल की उपलब्धता मानव जीवन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक-आर्थिक विकास की आधारभूत आवश्यकता है। जल केवल जीवन-निर्वाह के लिए महत्त्वपूर्ण ही नहीं, बल्कि मानव गरिमा, स्वास्थ्य सुरक्षा, लैंगिक समानता तथा समावेशी विकास का एक महत्त्वपूर्ण आधार भी है। ग्रामीण भारत में लम्बे समय तक पेयजल की उपलब्धता असमानताओं, मौसमी जल संकट, भू-जल पर अत्यधिक निर्भरता तथा अपर्याप्त आधारभूत संरचनाओं की कमी जैसी समस्याओं से प्रभावित रही है। विशेष रूप से महिलाओं एवं बालिकाओं को प्रतिदिन दूरस्थ एवं असुरक्षित जल स्रोतों से पानी लाने में अत्यधिक समय और श्रम व्यय करना पड़ता था, जिससे उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक सहभागिता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। इस प्रकार सुरक्षित पेयजल तक सीमित पहुँच ग्रामीण निर्धनता, सामाजिक बहिष्करण तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं को और अधिक गम्भीर बनाती रही है (पाटिल एवं अन्य 2023)। इन चुनौतियों के समाधान हेतु भारत सरकार ने 15 अगस्त 2019 को जल जीवन मिशन का शुभारम्भ किया। इस मिशन का उद्देश्य प्रत्येक ग्रामीण परिवार को कार्यशील घरेलू नल कनेक्शन के माध्यम से प्रतिदिन 55 लीटर प्रति व्यक्ति सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराना है। यह मिशन केवल पेयजल अवसंरचना के विस्तार तक सीमित नहीं है, बल्कि सेवा-आधारित जलापूर्ति, जल स्रोतों की दीर्घकालीक स्थिरता, सामुदायिक सहभागिता तथा विकेन्द्रीकृत जल शासन पर आधारित एक समग्र विकास मॉडल प्रस्तुत करता है (साहू एवं अन्य, 2023)। मिशन के अन्तर्गत ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों के गठन तथा उनमें न्यूनतम 50 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित कर स्थानीय समुदायों को जल प्रबन्धन की प्रक्रिया में सहभागी बनाया गया है। यह पहल सतत विकास लक्ष्य-6 की प्राप्ति के साथ-साथ समावेशी एवं उत्तरदायी ग्रामीण विकास की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है (जल शक्ति मन्त्रालय, 2021)।

समावेशी विकास की अवधारणा इस सिद्धान्त पर आधारित है कि विकास के लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक समान रूप से पहुँचें तथा सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय

न्याय सुनिश्चित हो। इस दृष्टि से जल जीवन मिशन केवल पेयजल उपलब्ध कराने वाला कार्यक्रम नहीं, बल्कि स्वास्थ्य सुधार, महिलाओं के सशक्तीकरण, सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करने वाला बहुआयामी विकास कार्यक्रम है। अत: जल सुरक्षा को सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास का प्रमुख आधार माना जाता है (सरकार एवं अन्य, 2021)।

मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र पिछले कुछ दशकों से भू-जल के अत्यधिक दोहन, अनियमित वर्षा, जलवायु परिवर्तन तथा पारम्परिक जल स्रोतों के क्षरण जैसी गम्भीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। जल शक्ति मन्त्रालय की वर्ष 2023 की रिपोर्ट के अनुसार मालवा क्षेत्र के नीमच तथा आगर-मालवा जिलों में भू-जल दोहन वार्षिक पुनर्भरण क्षमता से अधिक हो चुका है, इस कारण यह क्षेत्र गम्भीर जल संकट की स्थिति में है। ऐसी परिस्थितियों में जल जीवन मिशन की प्रभावशीलता, जल स्रोतों की स्थिरता तथा इसके सामाजिक प्रभावों का अनुभवजन्य मूल्यांकन अत्यन्त आवश्यक है। इस शोध पत्र का उद्देश्य मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र के ग्रामीण परिवारों को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने में जल जीवन मिशन की प्रभावशीलता तथा उसके सामाजिक प्रभावों का मूल्यांकन करना तथा जल जीवन मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन तथा सुरक्षित एवं सतत पेयजल उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए व्यवहारिक एवं नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना है।

प्रस्तुत शोध पत्र अनुभवजन्य एवं वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन का क्षेत्र मध्य प्रदेश का मालवा क्षेत्र है, जिसमें भू-जल दोहन एवं पेयजल संकट की गम्भीरता को दृष्टिगत रखते हुए मालवा क्षेत्र के दो जिलों - नीमच एवं आगर-मालवा - का चयन किया गया है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया। अध्ययन क्षेत्र के चयन हेतु क्लस्टर निदर्शन पद्धति अपनाई गई। प्रत्येक जिले से दो विकासखण्ड तथा प्रत्येक विकासखण्ड से जल जीवन मिशन संचालित तीन-तीन ग्रामों का चयन किया गया। इस प्रकार अध्ययन में कुल दो जिले, दो विकासखण्ड एवं 12 ग्राम सम्मिलित किए गए हैं। प्राथमिक आँकड़ों का संकलन संरचित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से पंचायती राज प्रतिनिधियों, क्रियान्वयन एजेंसियों के कार्मिकों, ग्रामीण परिवारों, ग्राम जल एवं स्वच्छता समिति के सदस्यों तथा ग्रामीण युवाओं से किया गया। कुल 120 उत्तरदाताओं को अध्ययन में सम्मिलित किया गया है।

साहित्य की समीक्षा

जल जीवन मिशन पर उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि यह कार्यक्रम केवल ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने तक सीमित नहीं है, बल्कि स्वास्थ्य, महिला सशक्तीकरण, सामाजिक-आर्थिक विकास, रोजगार सृजन तथा सतत जल प्रबन्धन को भी प्रोत्साहित करता है। विभिन्न अध्ययनों ने इसके बहुआयामी प्रभावों एवं क्रियान्वयन सम्बन्धी चुनौतियों का विश्लेषण किया है। पाटिल एवं अन्य (2023) ने कर्नाटक के ग्रामीण क्षेत्रों में किए गए अध्ययन में पाया कि घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने से जलजनित रोगों एवं

स्वास्थ्य व्ययों में कमी आई तथा महिलाओं के जल संग्रहण में लगने वाले समय की बचत हुई, जिससे उनकी आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियों में सहभागिता बढ़ी। विश्व स्वास्थ्य संगठन (2023) के अनुसार सुरक्षित पेयजल की सार्वभौमिक उपलब्धता से जलजनित रोगों में कमी, महिलाओं एवं बालिकाओं के समय की बचत तथा उनकी शिक्षा एवं उत्पादकता में वृद्धि सम्भव है। इसी प्रकार नाइक, सिंह एवं अन्य (2024) ने जल जीवन मिशन को ग्रामीण रोजगार सृजन का प्रभावी माध्यम बताया है तथा इसके निर्माण एवं संचालन-अनुरक्षण चरणों में व्यापक रोजगार सृजन की पुष्टि की है। बिलावा एवं अन्य (2023) ने ग्राम पंचायतों एवं ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की सक्रिय भागीदारी को मिशन की दीर्घकालिक सफलता का प्रमुख आधार माना है। वहीं सरकार एवं भरत (2021) ने सतत विकास लक्ष्य-6 की प्राप्ति हेतु जल गुणवत्ता, जल संरक्षण तथा स्थानीय संस्थागत क्षमता को अत्यन्त आवश्यक बताया है। जोशी एवं पटेल (2024) ने मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल उपलब्धता में सुधार स्वीकार करते हुए भू-जल दोहन, तकनीकी सीमाएँ तथा सामुदायिक सहभागिता की कमी जैसी चुनौतियों को रेखांकित किया है। उपलब्ध साहित्य की समीक्षा से स्पष्ट है कि जल जीवन मिशन ने सुरक्षित पेयजल, स्वास्थ्य सुधार, महिला सशक्तीकरण एवं ग्रामीण विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। तथापि, विशेष रूप से मध्य प्रदेश के मालवा क्षेत्र में मिशन के सामाजिक, आर्थिक एवं संस्थागत प्रभावों का समग्र अनुभवजन्य अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित है।

सम्पूर्ण भारत एवं मध्य प्रदेश में जल जीवन मिशन की प्रगति का परिदृश्य

जल जीवन मिशन की प्रगति पर दृष्टिपात करें तो राष्ट्रीय स्तर पर जल जीवन मिशन ने ग्रामीण पेयजल आपूर्ति के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति दर्ज की है। मिशन के प्रारम्भिक काल में देश के 19.36 करोड़ ग्रामीण परिवारों में से केवल 3.24 करोड़ (16.72 प्रतिशत) परिवारों के पास नल जल कनेक्शन उपलब्ध था, जबकि 16.12 करोड़ (83.28 प्रतिशत) परिवार सुरक्षित नल जल सुविधा से वंचित थे। दिसम्बर 2025 तक मिशन के अन्तर्गत 12.53 करोड़ नये घरेलू नल कनेक्शन प्रदान किए गए, जिसके परिणामस्वरूप कुल 15.77 करोड़ (81.43 प्रतिशत) ग्रामीण परिवारों तक नल जल सुविधा पहुँच गई है। इसी अवधि में 9,23,297 विद्यालय (89.62 प्रतिशत), 9,66,876 आँगनवाड़ी केन्द्र (85.60 प्रतिशत) तथा 3,93,696 ग्राम पंचायत एवं स्वास्थ्य संस्थान (77.27 प्रतिशत) भी नल जल सुविधा से लाभान्वित हुए हैं। यह प्रगति ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा स्वच्छता में सुधार का संकेत देती है। जल जीवन मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को पर्याप्त वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। वर्ष 2019-20 में मिशन के लिए ₹9,951 करोड़ की केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराई गई, जो 2023-24 में बढ़कर ₹69,886 करोड़ तक पहुँच गई। वर्ष 2024-25 में ₹22,541 करोड़ का प्रावधान

किया गया, जिससे जलापूर्ति अवसंरचना के सुदृढ़ीकरण एवं परियोजनाओं के संचालन एवं अनुरक्षण को गति मिली है (जल शक्ति मन्त्रालय, 2025)।

मध्य प्रदेश के सन्दर्भ में भी जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। मिशन प्रारम्भ होने के समय राज्य के 1.11 करोड़ ग्रामीण परिवारों में से केवल 13.53 लाख (12.14 प्रतिशत) परिवारों के पास नल जल सुविधा उपलब्ध थी। मिशन के अन्तर्गत 67.69 लाख नये घरेलू नल कनेक्शन प्रदान किए गए, जिसके परिणामस्वरूप दिसम्बर 2025 तक 81.22 लाख (72.89 प्रतिशत) ग्रामीण परिवार नल जल सुविधा से लाभान्वित हो गए। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता में वृद्धि, महिलाओं के जल संग्रहण में लगने वाले समय एवं श्रम में कमी, जलजनित रोगों में कमी तथा जीवन स्तर में सुधार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है (जल शक्ति मन्त्रालय, 2025)। अध्ययन क्षेत्र मालवा में भी जल जीवन मिशन के अन्तर्गत पेयजल अवसंरचना का विस्तार हुआ है, किन्तु भू-जल के अत्यधिक दोहन, जल स्रोतों की स्थिरता तथा क्षेत्रीय विषमताएँ अभी भी महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी हुई हैं। इसलिए मिशन की दीर्घकालिक सफलता के लिए जल स्रोत संरक्षण, सामुदायिक सहभागिता, स्थानीय संस्थागत क्षमता तथा प्रभावी संचालन एवं अनुरक्षण व्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ करना आवश्यक है।

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत पेयजल उपलब्धता एवं गुणवत्ता की स्थिति

जल जीवन मिशन की प्रभावशीलता का आकलन पेयजल की उपलब्धता एवं गुणवत्ता के आधार पर किया जा सकता है। प्रस्तुत अनुभाग में अध्ययन क्षेत्र की जलापूर्ति एवं पेयजल गुणवत्ता की स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

तालिका 1
जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन एवं जलापूर्ति की स्थिति

घरेलू नल कनेक्शन एवं जलापूर्ति की उपलब्धता	नीमच	आगर-मालवा	कुल
हाँ	60 (100.0)	57 (96.6)	117 (97.5)
नहीं	0 (0.0)	3 (3.3)	3 (2.5)
कुल	60 (100.0)	60 (100.0)	120 (100.0)
नल कनेक्शन की स्थिति	**नीमच**	**आगर-मालवा**	**कुल**
कार्यशील	56 (93.3)	40 (70.2)	96 (82.1)
गैर-कार्यशील	4 (6.7)	17 (29.8)	21 (17.9)
कुल	60 (100.0)	57 (100.0)	117 (100.0)
गैर-कार्यशील नल कनेक्शनों के कारण	**नीमच**	**आगर-मालवा**	**कुल**
जलापूर्ति प्रारम्भ नहीं हुई	1 (25.0)	10 (58.8)	11 (52.4)
पाइपलाइन क्षतिग्रस्त	1 (25.0)	5 (29.4)	6 (28.6)
जलदाब कम	2 (50.0)	2 (11.8)	4 (19.0)
कुल	4 (100.0)	17 (100.0)	21 (100.0)

जलापूर्ति की पर्याप्तता	नीमच	आगर-मालवा	कुल
पूर्णत: पर्याप्त	39 (69.6)	18 (45.0)	57 (59.4)
आंशिक रूप से पर्याप्त	13 (23.2)	21 (52.5)	34 (35.4)
अपर्याप्त	4 (7.2)	1 (2.5)	5 (5.2)
कुल	56 (100.0)	40 (100.0)	96 (100.0)

स्रोत : प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर।

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत नीमच एवं आगर-मालवा जिलों में ग्रामीण परिवारों तक घरेलू नल कनेक्शन पहुँचाने में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। सर्वेक्षित 120 परिवारों में से 117 (97.5 प्रतिशत) परिवारों के पास घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध था। नीमच जिले में सभी परिवारों (100 प्रतिशत) को नल कनेक्शन प्राप्त था, जबकि आगर-मालवा में यह 96.6 प्रतिशत पाया गया। हालांकि, कार्यशीलता के सन्दर्भ में दोनों जिलों के बीच स्पष्ट अन्तर देखा गया। नीमच में 93.3 प्रतिशत नल कनेक्शन कार्यशील थे, जबकि आगर-मालवा में केवल 70.2 प्रतिशत कनेक्शन ही कार्यशील पाए गए। गैर-कार्यशील कनेक्शनों का प्रमुख कारण नल स्थापित होने के बाद भी जलापूर्ति प्रारम्भ न होना, पाइपलाइन क्षतिग्रस्त होना तथा कम जलदबाव की समस्या रही, जो विशेष रूप से आगर-मालवा में अधिक दिखाई दी।

जलापूर्ति की पर्याप्तता के सन्दर्भ में नीमच जिले की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर रही, जहाँ 69.6 प्रतिशत परिवारों ने जलापूर्ति को पूर्णत: पर्याप्त बताया, जबकि आगर-मालवा में केवल 45 प्रतिशत परिवारों ने ऐसा अनुभव किया। इसके विपरीत आगर-मालवा के 52.5 प्रतिशत परिवारों ने जलापूर्ति को केवल आंशिक रूप से पर्याप्त बताया। समूह चर्चा से यह भी ज्ञात हुआ कि दोनों जिलों के अधिकांश ग्राम सिंगल विलेज स्कीम अर्थात् ग्राम की पेयजल आवश्यकता उसी ग्राम अथवा उसके निकट उपलब्ध स्थानीय जल स्रोत से पूरी की जाती है और यह योजना केवल उसी ग्राम तक सीमित है। इस व्यवस्था में ग्रीष्मकाल में भू-जल स्तर में गिरावट तथा स्रोतों की सीमित क्षमता के कारण जलापूर्ति की नियमितता एवं पर्याप्तता प्रभावित होती है। विशेष रूप से आगर-मालवा में अधिकांश परिवारों को सप्ताह में कुछ दिन ही जलापूर्ति होती है, जबकि नीमच में 41.1 प्रतिशत परिवारों ने अनियमित जलापूर्ति की जानकारी दी। इससे स्पष्ट होता है कि जल जीवन मिशन ने पेयजल तक पहुँच में महत्त्वपूर्ण सुधार किया है, किन्तु इसकी दीर्घकालिक प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए जल स्रोतों की स्थिरता, मल्टी विलेज स्कीम, प्रभावी संचालन एवं अनुरक्षण तथा जल वितरण प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता है।

तालिका 2

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत पेयजल गुणवत्ता की स्थिति

जल गुणवत्ता संकेतक	श्रेणी	नीमच	आगर-मालवा	कुल
जल का रंग एवं पारदर्शिता	सदैव स्वच्छ	48 (85.7)	37 (92.5)	85 (88.5)
	कभी-कभी गन्दा	7 (12.5)	3 (7.5)	10 (10.4)
	प्राय: गन्दा	1 (1.8)	0 (0.0)	1 (1.1)
	कुल	56 (100.0)	40 (100.0)	96 (100.0)

जल गुणवत्ता संकेतक	श्रेणी	नीमच	आगर-मालवा	कुल
जल गुणवत्ता परीक्षण की स्थिति	परीक्षण हुआ एवं जल सुरक्षित पाया गया	12 (21.4)	8 (20.0)	20 (20.8)
	परीक्षण हुआ पर जल असुरक्षित पाया गया	0 (0.0)	1 (2.5)	1 (1.0)
	परीक्षण नहीं हुआ	5 (8.9)	12 (30.0)	17 (17.7)
	जानकारी नहीं	39 (69.6)	19 (47.5)	58 (60.4)
	कुल	56 (100.0)	40 (100.0)	96 (100.0)
उत्तरदाताओं की जल गुणवत्ता सम्बन्धी धारणा	उच्च गुणवत्ता	48 (85.7)	32 (79.5)	80 (83.3)
	मध्यम गुणवत्ता	7 (12.5)	8 (20.5)	15 (15.6)
	निम्न गुणवत्ता	1 (1.8)	1 (2.5)	2 (2.1)
	कुल	56 (100.0)	40 (100.0)	96 (100.0)

स्रोत : प्राथमिक आँकड़ों के आधार पर।

तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जल जीवन मिशन के अन्तर्गत दोनों जिलों में अधिकांश ग्रामीण परिवारों को स्वच्छ एवं गुणवत्तापूर्ण पेयजल उपलब्ध हो रहा है। समूह चर्चा के दौरान अधिकांश उत्तरदाताओं ने जल के रंग एवं पारदर्शिता के प्रति सन्तोष व्यक्त किया, जिससे यह संकेत मिलता है कि जल शोधन एवं वितरण प्रणाली अपेक्षाकृत प्रभावी रूप से कार्य कर रही है। तथापि, आगर-मालवा के कुछ ग्रामों में जल की गुणवत्ता के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक शिकायतें प्राप्त हुईं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सभी क्षेत्रों में जल की गुणवत्ता समान नहीं है। क्षेत्रीय अवलोकन से ज्ञात हुआ कि अधिकांश ग्रामीण परिवार पेयजल की गुणवत्ता का मूल्यांकन उसके रंग, पारदर्शिता एवं स्वाद के आधार पर करते हैं, जबकि वैज्ञानिक परीक्षणों के बारे में उनकी जानकारी सीमित है। बड़ी संख्या में उत्तरदाता यह नहीं बता सके कि उनके क्षेत्र में जल गुणवत्ता का प्रयोगशाला परीक्षण हुआ है या नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि जल गुणवत्ता परीक्षण की व्यवस्था होने के बावजूद उसकी सूचना एवं परिणाम समुदाय तक प्रभावी ढंग से नहीं पहुँच रहे हैं।

समूह चर्चा के दौरान यह भी सामने आया कि जिन ग्रामों में छत पर रखी टंकियों की नियमित सफाई, पाइपलाइन का समय-समय पर रखरखाव तथा ग्राम जल एवं स्वच्छता समिति द्वारा सक्रिय निगरानी की जाती है, वहाँ पेयजल की गुणवत्ता के प्रति ग्रामीणों का विश्वास अधिक है। इसके विपरीत, जिन क्षेत्रों में वितरण व्यवस्था का रखरखाव नियमित नहीं है, वहाँ जल की गुणवत्ता को लेकर शंकाएँ अधिक दिखाई देती हैं। अध्ययन से यह भी संकेत मिलता है कि जल जीवन मिशन की दीर्घकालिक सफलता केवल नल कनेक्शन उपलब्ध कराने पर निर्भर नहीं करती, बल्कि नियमित जल गुणवत्ता परीक्षण, परीक्षण परिणामों का सार्वजनिक प्रदर्शन, जल स्रोतों की स्वच्छता तथा ग्राम स्तर पर समुदाय की सक्रिय भागीदारी पर भी समान रूप से निर्भर करती है। इसलिए जल गुणवत्ता निगरानी प्रणाली को अधिक पारदर्शी एवं सहभागितापूर्ण बनाने की आवश्यकता है, जिससे ग्रामीण परिवारों का पेयजल सुरक्षा के प्रति विश्वास और अधिक सुदृढ़ हो सके।

जल जीवन मिशन का ग्रामीण महिलाओं पर प्रभाव

ग्रामीण क्षेत्रों में जल संग्रहण का दायित्व परम्परागत रूप से महिलाओं एवं बालिकाओं पर रहा है, जिसके कारण उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्जीविका तथा सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता रहा है। जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने से इस स्थिति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया है। प्रस्तुत अनुभाग में अध्ययन क्षेत्र के प्राथमिक आँकड़ों एवं केन्द्रित समूह चर्चाओं के आधार पर महिलाओं के स्वास्थ्य, बालिकाओं की शिक्षा तथा सामाजिक जीवन पर जल जीवन मिशन के प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

महिलाओं के स्वास्थ्य, श्रम एवं जीवन-गुणवत्ता पर प्रभाव

जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल संग्रहण का दायित्व मुख्यत: महिलाओं पर था, जिसके कारण उन्हें अनेक शारीरिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता था। अध्ययन में नीमच जिले की ८०.0 प्रतिशत तथा आगर-मालवा जिले की ८3.0 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने बताया कि प्रतिदिन जल लाने के कारण उन्हें कमर, गर्दन, कन्धों एवं जोड़ों में दर्द तथा लगातार शारीरिक थकान का अनुभव होता था। समूह चर्चा से यह भी ज्ञात हुआ कि महिलाएँ घरेलू एवं कृषि कार्यों के साथ-साथ हैंडपम्प, कुएँ अथवा अन्य सार्वजनिक जल स्रोतों से दिन में कई बार पानी लाने के लिए लम्बी दूरी तय करती थीं। पानी से भरे बर्तनों को सिर अथवा कमर पर उठाकर ऊबड़-खाबड़ मार्गों से गुजरने के कारण उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। वर्षा ऋतु में फिसलने एवं चोट लगने की घटनाएँ भी सामने आईं।

समूह चर्चा से यह भी स्पष्ट हुआ कि गर्भवती महिलाओं को भी जल संग्रहण जैसे श्रमसाध्य कार्य करने पड़ते थे। सार्वजनिक जल स्रोतों पर लम्बी कतारों में प्रतीक्षा तथा भारी बर्तन उठाने से उनके स्वास्थ्य पर अतिरिक्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ता था। जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने से महिलाओं के शारीरिक श्रम एवं समय की बचत हुई है, सुरक्षित पेयजल तक पहुँच सुनिश्चित हुई है तथा उनके स्वास्थ्य, कार्यक्षमता और जीवन-गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार आया है। विशेष रूप से गर्भवती महिलाओं के लिए यह परिवर्तन मातृ स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उपलब्धि सिद्ध हुई है।

बालिकाओं की शिक्षा पर प्रभाव

जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन से पूर्व ग्रामीण क्षेत्रों में जल संग्रहण का दायित्व केवल महिलाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि अनेक परिवारों में बालिकाएँ भी जल संग्रहण कार्य में अपनी माताओं की सहायता करती थीं। समूह चर्चा से ज्ञात हुआ कि जल स्रोतों की दूरी एवं बार-बार पानी लाने की आवश्यकता के कारण अनेक बालिकाएँ विद्यालय देर से

पहुँचती थीं, जिससे उनकी नियमित उपस्थिति और अध्ययन प्रभावित होता था। यह स्थिति ग्रामीण समाज में विद्यमान लैंगिक कार्य-विभाजन को भी दर्शाती है। किन्तु जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने के बाद बालिकाओं की जल संग्रहण सम्बन्धी जिम्मेदारियों में उल्लेखनीय कमी आई। इस सन्दर्भ में विद्यालय में शिक्षकों से प्राप्त जानकारी के अनुसार उनकी विद्यालय में नियमित उपस्थिति, अध्ययन के लिए उपलब्ध समय तथा शैक्षिक सहभागिता में सुधार हुआ है। इस प्रकार, जल जीवन मिशन ने बालिकाओं की शिक्षा की निरन्तरता को सुदृढ़ करने के साथ-साथ लैंगिक समानता को भी प्रोत्साहित किया है।

सार्वजनिक जल स्रोतों पर होने वाले विवाद, मानसिक तनाव एवं असुरक्षा में कमी

जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन से पूर्व विशेषकर आगर-मालवा के अनेक ग्रामीण परिवार खुले कुओं, तालाबों जैसे असुरक्षित अथवा दूरस्थ जल स्रोतों पर निर्भर थे। समूह चर्चा में महिलाओं ने बताया कि इन स्रोतों तक पहुँचने के लिए लम्बी दूरी तय करनी पड़ती थी। साथ ही जल की गुणवत्ता सुरक्षित नहीं होने के कारण जलजनित रोगों की समस्या बनी रहती थी। हेंडपम्पों पर विशेषकर ग्रीष्मकाल में लम्बी कतारें लगती थीं, जहाँ जल भरने के क्रम को लेकर विवाद, अपमानजनक व्यवहार तथा सामाजिक तनाव की स्थिति उत्पन्न होती थी। अनेक महिलाओं ने बताया कि इस कारण उन्हें मानसिक तनाव एवं असुरक्षा की भावना का भी सामना करना पड़ता था। नीमच जिले में यह समस्या अपेक्षाकृत कम थी, किन्तु कुछ दूरस्थ बस्तियों में महिलाओं को वैकल्पिक जल स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता था। जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने के पश्चात् असुरक्षित एवं सार्वजनिक जल स्रोतों पर निर्भरता में उल्लेखनीय कमी आई है। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के समय एवं श्रम की बचत, जलजनित रोगों के जोखिम में कमी तथा सामाजिक विवाद, मानसिक तनाव और असुरक्षा की भावना में भी उल्लेखनीय कमी आई है। इस प्रकार, जल जीवन मिशन ने महिलाओं के स्वास्थ्य, सुरक्षा एवं जीवन-गुणवत्ता में सकारात्मक सुधार सुनिश्चित किये हैं।

शौचालय उपयोग एवं जल जीवन मिशन का सामाजिक प्रभाव

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध होने के पश्चात् शौचालयों के नियमित उपयोग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। पूर्व में पर्याप्त जल उपलब्ध न होने के कारण अनेक परिवार शौचालय होने के बावजूद उनका नियमित उपयोग नहीं कर पाते थे, जिससे खुले में शौच की प्रवृत्ति बनी रहती थी। समूह चर्चा से स्पष्ट हुआ कि घर पर नियमित एवं पर्याप्त जल उपलब्ध होने से शौचालयों का उपयोग बढ़ा है तथा खुले में शौच की प्रवृत्ति में कमी आई है। इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता व्यवहार में सुधार हुआ है तथा विशेष रूप से महिलाओं की सुरक्षा और गरिमा को सुदृढ़ता मिली है। इस प्रकार, जल जीवन मिशन ने केवल सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने तक ही अपनी भूमिका सीमित नहीं रखी,

बल्कि स्वच्छता सम्बन्धी व्यवहारगत परिवर्तन को भी प्रोत्साहित कर ग्रामीण जीवन की गुणवत्ता में महत्त्वपूर्ण सुधार किया है।

जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन में प्रमुख बाधक तत्त्व

जल जीवन मिशन ने ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने की दिशा में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं, तथापि इसके प्रभावी क्रियान्वयन एवं दीर्घकालिक स्थिरता के समक्ष अनेक संरचनात्मक, तकनीकी, संस्थागत एवं सामाजिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। प्राथमिक सर्वेक्षण, समूह चर्चा तथा विभिन्न हितधारकों के साथ साक्षात्कार से यह स्पष्ट हुआ कि केवल घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है, बल्कि नियमित जलापूर्ति, जल स्रोतों की स्थिरता, जल गुणवत्ता की निगरानी, संचालन एवं अनुरक्षण व्यवस्था, सामुदायिक सहभागिता तथा संस्थागत समन्वय जैसे पहलू भी मिशन की सफलता के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। इन चुनौतियों का समयबद्ध समाधान किए बिना जल जीवन मिशन के उद्देश्यों की दीर्घकालिक एवं सतत प्राप्ति सम्भव नहीं होगी। इस आधार पर जल जीवन मिशन के क्रियान्वयन में प्रमुख बाधक तत्त्वों का विवरण निम्नानुसार है।

जलापूर्ति की नियमितता एवं जल स्रोतों की दीर्घकालिक स्थिरता की चुनौतियाँ

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत अधिकांश ग्रामीण परिवारों को घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध हो चुके हैं, फिर भी सभी क्षेत्रों में नियमित एवं पर्याप्त जलापूर्ति सुनिश्चित नहीं हो सकी है। विशेषकर ग्रीष्मकाल में जलापूर्ति की आवृत्ति एवं मात्रा में कमी देखी गई। आगर-मालवा में कुछ गाँवों में पाइपलाइन स्थापित होने के बावजूद जलापूर्ति प्रारम्भ नहीं हुई अथवा कम जलदबाव एवं तकनीकी समस्याओं के कारण पर्याप्त पानी उपलब्ध नहीं हो सका, जिससे मिशन द्वारा निर्धारित मानदंड के अनुसार 55 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन के लक्ष्य की प्राप्ति प्रभावित होती है। लोक स्वास्थ्य यान्त्रिकी विभाग एवं जल निगम के अधिकारियों एवं कर्मचारियों से विस्तृत चर्चा से स्पष्ट हुआ कि मालवा क्षेत्र में भू-जल का अत्यधिक दोहन, वर्षा की अनिश्चितता तथा प्राकृतिक जल स्रोतों के क्षरण के कारण पेयजल योजनाओं की दीर्घकालिक स्थिरता एक महत्त्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है। वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण तथा जल संरक्षण गतिविधियों का प्रभावी क्रियान्वयन सभी क्षेत्रों में समान रूप से नहीं हो पाया है। यदि जल स्रोतों के संरक्षण एवं पुनर्भरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया, तो भविष्य में पेयजल योजनाओं की निरन्तरता एवं जलापूर्ति की विश्वसनीयता प्रभावित हो सकती है।

जल गुणवत्ता निगरानी एवं संचालन-अनुरक्षण सम्बन्धी चुनौतियाँ

जल जीवन मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन में जल गुणवत्ता की नियमित निगरानी तथा संचालन एवं अनुरक्षण व्यवस्था अभी भी महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। अधिकांश ग्रामीण

परिवारों को जल गुणवत्ता परीक्षण की प्रक्रिया, परीक्षण प्रयोगशालाओं तथा परीक्षण परिणामों की पर्याप्त जानकारी नहीं है। कई स्थानों पर नियमित जल गुणवत्ता परीक्षण एवं परीक्षण रिपोर्टों का सार्वजनिक प्रदर्शन भी नहीं हो रहा है, जिससे समुदाय में पेयजल की गुणवत्ता के प्रति जागरूकता एवं विश्वास प्रभावित होता है। साथ ही कई स्थानों पर पाइपलाइन क्षतिग्रस्त होने, वाल्व एवं मोटर में खराबी आने तथा तकनीकी सहायता समय पर उपलब्ध न होने के कारण जलापूर्ति बाधित होती है। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षित तकनीकी मानव संसाधन तथा त्वरित मरम्मत व्यवस्था का अभाव इन समस्याओं को और गम्भीर बनाता है। इससे स्पष्ट होता है कि जल जीवन मिशन की दीर्घकालिक सफलता केवल आधारभूत अवसंरचना के निर्माण पर निर्भर नहीं करती, बल्कि जल गुणवत्ता की नियमित निगरानी तथा संचालन एवं अनुरक्षण व्यवस्था के प्रभावी सुदृढ़ीकरण पर भी समान रूप से निर्भर करती है।

सिंगल विलेज स्कीम की सीमाएँ एवं मल्टी विलेज स्कीम की आवश्यकता

मालवा क्षेत्र के दोनों जिलों में अधिकांश ग्राम वर्तमान में सिंगल विलेज स्कीम के अन्तर्गत जलापूर्ति प्राप्त कर रहे हैं। सिंगल विलेज स्कीम वह व्यवस्था है, जिसमें किसी एक ग्राम की पेयजल आवश्यकता उसी ग्राम के निकट उपलब्ध स्थानीय जल स्रोतों (बोरवेल, नलकूप या कुएँ) से पूरी की जाती है। इसके विपरीत, मल्टी विलेज स्कीम में किसी स्थायी एवं अपेक्षाकृत सुरक्षित जल स्रोत, जैसे - नदी, बाँध अथवा बड़े जलाशय से उपचारित जल पाइपलाइन के माध्यम से एक साथ अनेक ग्रामों को उपलब्ध कराया जाता है। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि भू-जल स्तर में गिरावट, वर्षा की अनिश्चितता तथा सीमित स्थानीय जल स्रोतों के कारण सिंगल विलेज स्कीम की दीर्घकालिक स्थिरता प्रभावित हो रही है। विशेषकर ग्रीष्मकाल में कई ग्रामों में जलापूर्ति की नियमितता एवं पर्याप्तता बनाए रखना चुनौतीपूर्ण हो जाता है। ऐसी स्थिति में मल्टी विलेज स्कीम का विस्तार आवश्यक है, क्योंकि इससे स्थानीय भू-जल स्रोतों पर निर्भरता कम होगी, जलापूर्ति की नियमितता एवं गुणवत्ता में सुधार होगा तथा दीर्घकालिक रूप से सुरक्षित एवं सतत पेयजल उपलब्धता सुनिश्चित की जा सकेगी।

ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की क्षमता एवं सामुदायिक सहभागिता की चुनौतियाँ

जल जीवन मिशन के अन्तर्गत गठित ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियाँ जल जीवन मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन, संचालन एवं अनुरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, किन्तु अनेक समितियों की संस्थागत क्षमता अभी भी अपेक्षित स्तर तक विकसित नहीं हो सकी है। समूह चर्चा के दौरान ज्ञात हुआ कि कई समितियों के सदस्यों को तकनीकी, वित्तीय एवं प्रबन्धन सम्बन्धी पर्याप्त प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है। इसके परिणामस्वरूप नियमित बैठकों का आयोजन, अभिलेख सन्धारण, वित्तीय प्रबन्धन, जलापूर्ति व्यवस्था की निगरानी तथा स्थानीय स्तर पर समस्याओं के त्वरित समाधान में कमियाँ देखी गईं। यह भी ज्ञात हुआ कि अनेक ग्रामों में स्थानीय समुदाय की सक्रिय सहभागिता अपेक्षाकृत सीमित है। जल संरक्षण,

वर्षा जल संचयन, जल के विवेकपूर्ण उपयोग तथा जल स्रोतों के संरक्षण के प्रति पर्याप्त जन-जागरूकता का अभाव भी पाया गया। ग्रामीणों के साथ आयोजित समूह चर्चा से यह भी स्पष्ट हुआ कि अधिकांश ग्रामीण जलापूर्ति व्यवस्था के संचालन एवं संरक्षण को मुख्यत: सरकारी विभागों की जिम्मेदारी मानते हैं, जिससे सामुदायिक स्वामित्व एवं उत्तरदायित्व की भावना अपेक्षित रूप से विकसित नहीं हो पाई है। परिणामस्वरूप जलापूर्ति व्यवस्था के दीर्घकालिक संचालन एवं अनुरक्षण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जल जीवन मिशन की दीर्घकालिक सफलता केवल आधारभूत अवसंरचना के निर्माण पर निर्भर नहीं करती, बल्कि ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों के क्षमता विकास, नियमित प्रशिक्षण, पारदर्शी कार्यप्रणाली तथा स्थानीय समुदाय की सक्रिय सहभागिता और जन-जागरूकता को सुदृढ़ बनाने पर भी समान रूप से निर्भर करती है।

वित्तीय संसाधन एवं संस्थागत समन्वय सम्बन्धी चुनौतियाँ

जल जीवन मिशन के प्रभावी संचालन एवं दीर्घकालिक स्थिरता के लिए वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता तथा संस्थागत समन्वय दोनों महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। अध्ययन में पाया गया कि अधिकांश ग्रामों में जल उपयोगकर्ता शुल्क के नियमित संग्रह में कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि अनेक ग्रामीण परिवार जलापूर्ति सेवा को पूर्णत: सरकारी उत्तरदायित्व मानते हैं। इसके परिणामस्वरूप संचालन एवं अनुरक्षण के लिए आवश्यक वित्तीय संसाधनों की उपलब्धता प्रभावित होती है, जिससे योजनाओं के नियमित रखरखाव एवं मरम्मत कार्यों में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि विभिन्न विभागों, ग्राम पंचायतों, लोक स्वास्थ्य यान्त्रिकी विभाग तथा ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों के मध्य समन्वय सभी स्थानों पर समान रूप से प्रभावी नहीं है। तकनीकी मार्गदर्शन, नियमित पर्यवेक्षण, वित्तीय प्रबन्धन तथा समयबद्ध समस्या समाधान की व्यवस्था को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। प्रभावी संस्थागत समन्वय एवं पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के अभाव में जलापूर्ति व्यवस्था का सतत संचालन प्रभावित हो सकता है। अत: मिशन की दीर्घकालीन सफलता के लिए उपयोगकर्ता शुल्क संग्रह प्रणाली को सुदृढ़ बनाने, स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय एवं प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने तथा सम्बन्धित विभागों के मध्य बेहतर समन्वय स्थापित करना आवश्यक है।

निष्कर्ष

जल जीवन मिशन ने सुरक्षित एवं कार्यशील पेयजल उपलब्ध कराने की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति की है तथा सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस योजना के परिणामस्वरूप अधिकांश ग्रामीण परिवारों को घरेलू नल कनेक्शन उपलब्ध हो चुके हैं, जिससे महिलाओं एवं बालिकाओं के जल संग्रहण में लगने वाले समय, श्रम तथा शारीरिक कठिनाइयों में उल्लेखनीय कमी आई है। साथ ही इसके परिणामस्वरूप महिलाओं के स्वास्थ्य, सामाजिक सहभागिता तथा आर्जीविका सम्बन्धी

गतिविधियों में सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिले हैं, वहीं बालिकाओं की विद्यालयीन उपस्थिति एवं अध्ययन के लिए अधिक समय उपलब्ध हुआ है। सुरक्षित पेयजल की उपलब्धता से जलजनित रोगों के जोखिम में कमी, स्वच्छता व्यवहार में सुधार, शौचालयों के नियमित उपयोग में वृद्धि तथा महिलाओं की सुरक्षा एवं गरिमा में भी सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हुआ। ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की भागीदारी ने स्थानीय स्तर पर जल प्रबन्धन को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। तथापि, अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि कुछ क्षेत्रों में जलापूर्ति की अनियमितता, गैर-कार्यशील नल कनेक्शन, भू-जल पर अत्यधिक निर्भरता, जल स्रोतों की दीर्घकालिक स्थिरता, मल्टी विलेज स्कीम की आवश्यकता, जल गुणवत्ता परीक्षण के प्रति सीमित जागरूकता तथा संचालन एवं अनुरक्षण व्यवस्था की कमजोरियाँ मिशन की प्रभावशीलता को प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से आगर-मालवा जिले में इन चुनौतियों का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पाया गया। इसलिए जल जीवन मिशन की दीर्घकालिक सफलता सुनिश्चित करने के लिए जल स्रोत संरक्षण, वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण, नियमित जल गुणवत्ता परीक्षण, प्रभावी संचालन एवं अनुरक्षण, ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की संस्थागत क्षमता वृद्धि तथा व्यापक जन-जागरूकता को प्राथमिकता देना आवश्यक है।

समग्रत: स्पष्ट है कि जल जीवन मिशन केवल पेयजल उपलब्ध कराने की योजना नहीं है, बल्कि यह स्वास्थ्य सुधार, महिला सशक्तीकरण, शिक्षा, स्वच्छता, सामुदायिक सहभागिता तथा सामाजिक समावेशन को प्रोत्साहित करने वाला एक बहुआयामी विकास कार्यक्रम है। यदि मिशन के क्रियान्वयन में विद्यमान चुनौतियों का प्रभावी समाधान किया जाए तथा जल संसाधनों के सतत प्रबन्धन को प्राथमिकता दी जाए, तो यह कार्यक्रम सतत एवं समावेशी ग्रामीण विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में अधिक प्रभावी एवं दीर्घकालिक योगदान देने में सक्षम होगा।

जल जीवन मिशन के प्रभावी एवं सतत क्रियान्वयन हेतु नीतिगत सुझाव

- जल जीवन मिशन की सतत सफलता सुनिश्चित करने के लिए भू-जल पर अत्यधिक निर्भरता को कम करते हुए वर्षा जल संचयन, भू-जल पुनर्भरण, जलग्रहण प्रबन्धन तथा स्थानीय जल संरक्षण उपायों का मिशन के साथ प्रभावी अभिसरण सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।
- जलापूर्ति अवसंरचना के नियमित रखरखाव, त्वरित तकनीकी सहायता तथा स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षित मानव संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित कर योजनाओं की कार्यशीलता बनाए रखने हेतु आवश्यक कदम उठाने की महती आवश्यकता प्रतीत होती है।
- जल गुणवत्ता निगरानी प्रणाली को अधिक प्रभावी एवं पारदर्शी बनाए जाने की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत पेयजल की नियमित गुणवत्ता जाँच, परीक्षण

परिणामों का सार्वजनिक प्रकटीकरण तथा समुदाय की सक्रिय भागीदारी के माध्यम से सुरक्षित पेयजल आपूर्ति सुनिश्चित की जानी चाहिए।

- ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों की संस्थागत एवं प्रबन्धकीय क्षमता का सुदृढ़ीकरण अत्यन्त आवश्यक है जिनमें समितियों को नियमित प्रशिक्षण, वित्तीय प्रबन्धन, अभिलेख सन्धारण तथा जलापूर्ति प्रणाली के संचालन एवं निगरानी सम्बन्धी पर्याप्त अधिकार एवं तकनीकी सहयोग उपलब्ध कराये जाने की आवश्यकता है।
- सामुदायिक सहभागिता एवं व्यवहार परिवर्तन आधारित जन-जागरूकता कार्यक्रमों के सुदृढ़ीकरण के माध्यम से जल संरक्षण, जल के विवेकपूर्ण उपयोग, स्रोत संरक्षण तथा जलापूर्ति अवसंरचना के रखरखाव के प्रति समुदाय में उत्तरदायित्व एवं स्वामित्व की भावना विकसित करने हेतु सतत सूचना, शिक्षा एवं संचार गतिविधियाँ संचालित की जानी चाहिए।
- जल जीवन मिशन कार्यक्रम में महिलाओं की निर्णयात्मक एवं नेतृत्वकारी भूमिका को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है जिसके अन्तर्गत ग्राम जल एवं स्वच्छता समितियों तथा जल प्रबन्धन से सम्बन्धित स्थानीय संस्थाओं में महिलाओं की सार्थक सहभागिता सुनिश्चित कर उनके नेतृत्व एवं क्षमता निर्माण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- वित्तीय स्थिरता एवं उत्तरदायी प्रबन्धन के सुदृढ़ीकरण के अन्तर्गत संचालन एवं अनुरक्षण हेतु व्यावहारिक जल उपयोगकर्ता शुल्क प्रणाली, वित्तीय पारदर्शिता तथा स्थानीय स्तर पर संसाधनों के प्रभावी प्रबन्धन की व्यवस्था विकसित की जानी चाहिए।
- जल जीवन मिशन का अन्य ग्रामीण विकास एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन कार्यक्रमों के साथ प्रभावी अभिसरण सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है जिसके अन्तर्गत विशेष रूप से मनरेगा, जलग्रहण विकास कार्यक्रम, अटल भू-जल योजना तथा अन्य जल संरक्षण योजनाओं के समन्वित क्रियान्वयन के माध्यम से पेयजल स्रोतों की दीर्घकालिक सुरक्षा एवं मिशन की सततता को सुदृढ़ किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

बिलावा, एम. (2023). 'रोल ऑफ ग्राम पंचायत्स इन द इम्प्लीमेंटेशन ऑफ जल जीवन मिशन इन कर्नाटक'. *जर्नल ऑफ रूरल डेवलपमेंट स्टडीज,* 39(2), 115-134.

जल शक्ति मन्त्रालय. (2025). *जल जीवन मिशन प्रोग्राम इन मध्य प्रदेश - राज्यसभा अतारांकित प्रश्न नं. 1206,* नई दिल्ली.

जोशी, ए. एवं पटेल, आर. (2024). 'रूरल वाटर चैलेंजेस एंड कम्युनिटी पार्टिसिपेशन अंडर हर घर जल योजना : ए केस स्टडी ऑफ सीहोर डिस्ट्रिक्ट'. *इंडियन जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज,* 14(1), 77-94.

जल शक्ति मन्त्रालय, भारत सरकार (2021). *रिफॉर्म्स इन रूरल ड्रिंकिंग वाटर सप्लाई : जल जीवन मिशन हर घर जल*, नई दिल्ली.

नाइक, जी., सिंह, ए. एवं जस, ए. (2023). *असेसमेंट ऑफ एम्प्लॉयमेंट जनरेशन पोटेंशियल्स ऑफ जल जीवन मिशन* (वर्किंग पेपर नं. 687). सेंटर फॉर पब्लिक पॉलिसी, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट बैंगलोर.

पाटिल, एल., देशमुख, आर. एवं शेट्टी, एम. (2023). 'सोशियो-इकोनॉमिक इम्पैक्ट ऑफ जल जीवन मिशन इन रूरल कर्नाटक'. *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, 69(3), 233-252.

साहू, एस., महापात्र, आर. एवं सेन, पी. (2023). 'अटेनिंग एसडीजीज थ्रू पब्लिक प्रोग्राम इंटरवेंशन्स : द केस ऑफ स्वच्छ भारत अभियान एंड जल जीवन मिशन'. *डेवलपमेंट स्टडीज रिव्यू*, 45(2), 101-119.

सरकार, एस.के. एवं भरत, जी.के. (2021). 'अचीविंग सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल्स इन वाटर एंड सैनिटेशन सेक्टर्स इन इंडिया'. इन ए. शर्मा, *सस्टेनेबल डेवलपमेंट रिसर्च इन द एशिया-पैसिफिक रीजन* (पृ. 123-140). स्प्रिंगर. DOI: 10.1007/978-981-33-4065-1, अभिगमन तिथि 15 जुलाई 2025, समय 12:30 बजे.

सरकार, ए., सिंह, ए. एवं कुमार, एस. (2021). 'पॉलिसी इंटीग्रेशन फॉर वाटर एंड सैनिटेशन प्रोग्राम्स इन इंडिया : टुवर्ड्स सस्टेनेबल डेवलपमेंट'. *जर्नल ऑफ एनवायरनमेंटल पॉलिसी एंड प्लानिंग*, 23(4), 579-598.

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाइजेशन. (2023). *एस्टिमेटिंग पोटेंशियल हेल्थ गेन्स फ्रॉम इंक्रीज्ड एक्सेस टू सेफली मैनेज्ड ड्रिंकिंग-वाटर सर्विसेज फॉलोइंग द जल जीवन मिशन इनिशिएटिव (समरी रिपोर्ट)*. डिपार्टमेंट ऑफ ड्रिंकिंग वाटर एंड सैनिटेशन, जल शक्ति मन्त्रालय, भारत सरकार.

मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल
(म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान का समीक्षित अर्द्धवार्षिक जर्नल)
ISSN: 0973-8568 (वर्ष 23, अंक 2, दिसम्बर 2025, पृ. 209-212)
Previously in UGC-CARE (Group-I)

पुस्तक समीक्षा

कन्ज्यूमिंग लाइफ

जिग्मंट बाउमैन

पॉलिटी प्रेस, 2007, 168 पृष्ठ, मूल्य ₹ 1,801

ISBN 9780745640020

अरुण कुमार गोंड*

क्या आज का इंसान सिर्फ उपभोक्ता रह गया है, या अब वह खुद भी एक 'उत्पाद' बन चुका है? बाउमैन की चर्चित पुस्तक कन्ज्यूमिंग लाइफ इसी सवाल से हमें आईना दिखाती है। पुस्तक बताती है कि उपभोग की यह नयी दुनिया सिर्फ वस्तुओं तक सीमित नहीं रही, अब पहचान, रिश्ते और सामाजिक स्थिति भी बाजार की भाषा में परखे जाते हैं। बाउमैन का तर्क है कि जिस समाज में 'प्रस्तुति' ही असली पहचान बन जाए, वहाँ इंसान अपनी असलियत खो देता है। वह बताते हैं कि डिजिटल जुड़ाव के इस दौर में हम पहले से कहीं ज्यादा 'कनेक्टेड' होकर भी भीतर से अकेले हैं। यह पुस्तक केवल उपभोक्तावाद की आलोचना नहीं करती, वरन् एक गहरी सामाजिक चेतावनी भी देती है कि अगर हमने समय रहते नहीं समझा, तो हम न सिर्फ अपने सम्बन्ध, बल्कि अपनी 'मानवता' भी खो देंगे।

पुस्तक के प्रारम्भ में, बाउमैन ने इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रसार के माध्यम से उदाहरण दिया है कि कैसे हमारे जीवन में निजी और सार्वजनिक के बीच की सीमाएँ धुँधली हो गई हैं। वह बताते हैं कि आजकल सोशल नेटवर्किंग साइट्स न केवल

*शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (उ.प्र.)
E-mail: arungond413@gmail.com

समाजिक जुड़ाव का माध्यम बन गई हैं, बल्कि एक ऐसी दुनिया की स्थापना कर रही हैं जहाँ आत्म-अभिव्यक्ति और आत्म-प्रदर्शन का महत्व बढ़ गया है। बाउमैन के अनुसार, इन साइट्स पर लोग अपनी निजी जानकारी को सार्वजनिक रूप से साझा करते हैं, और इस तरह एक नये प्रकार के सामाजिक जीवन का निर्माण हो रहा है जहाँ हर किसी को अपने 'सेल्फ' को दिखाना और स्वीकार करना पड़ता है। लेकिन बाउमैन इस परिवर्तन को केवल एक पीढ़ी विशेष की समस्या नहीं मानते। वह कहते हैं कि यह समाज के हर वर्ग और उम्र के लोगों की आदत बन चुकी है। आज का समाज 'कन्फेशनल समाज' बन चुका है, जहाँ व्यक्तिगत और सार्वजनिक के बीच की सीमाएँ समाप्त हो चुकी हैं। अब हर किसी को अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी को सार्वजनिक रूप से दिखाने का दबाव महसूस होता है, और जो इसे नहीं करते, उन्हें समाज से बाहर कर दिया जाता है।

जिग्मंट बाउमैन की कन्ज्यूमिंग लाइफ का यह अंश उपभोक्तावादी समाज में इंसानी पहचान, सम्बन्धों और सामाजिक व्यवहारों में आये गहरे बदलावों को उजागर करता है। तीन अलग-अलग केस स्टडीज के माध्यम से बाउमैन दिखाते हैं कि किस तरह आधुनिक जीवन में व्यक्ति स्वयं एक उत्पाद में बदलता जा रहा है - बेचा जाने वाला, विज्ञापित होने योग्य, और बाजार के मूल्यांकन के योग्य।

पहला मामला स्कूली बच्चों का है, जो सोशल मीडिया पर स्वयं को लोकप्रिय बनाने के लिए अपनी छवि को ब्रांड की तरह प्रस्तुत करते हैं। वे अपने आत्म-मूल्य को 'लाइक', 'कमेंट्स' और 'फॉलोअर्स' की संख्या से मापते हैं। दूसरा मामला कम्पनियों का है, जो तकनीकी 'टूल्स' के माध्यम से उपभोक्ताओं की 'वांछनीयता' तय करती हैं - लाभकारी ग्राहकों को वरीयता मिलती है, शेष को पीछे छोड़ दिया जाता है। तीसरा मामला इंग्लैंड की पॉइंट-बेस्ड अप्रवासन नीति का है, जहाँ केवल आर्थिक रूप से सक्षम और कुशल व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है। इन तीनों मामलों में समानता यह है कि व्यक्ति को उसकी उपयोगिता के आधार पर परखा जाता है।

इसी क्रम में, इंटरनेट डेटिंग सेवाओं का विश्लेषण यह दिखाता है कि निजी सम्बन्ध भी अब एक 'उत्पाद चयन' की प्रक्रिया में बदल चुके हैं। रिश्तों में भावनात्मकता की जगह अब सुविधा और नियन्त्रण ने ले ली है। बाउमैन के अनुसार, यह बदलाव केवल तकनीकी नहीं, बल्कि गहरे सामाजिक और भावनात्मक अवसाद का संकेत है - जहाँ जुड़ाव की जगह चयन और सम्बन्धों की जगह उपभोग ने ले ली है।

लेखक उपभोक्तावाद और शुद्ध सम्बन्धों के बीच अन्तर को स्पष्ट करते हैं। उपभोक्तावाद रिश्तों को केवल इच्छाओं की वस्तु बना देता है, जबकि सच्चे प्रेम और सम्बन्धों में गहरी समझ, आत्म-त्याग और सम्मान की आवश्यकता होती है। बाउमैन के अनुसार, उपभोक्तावाद में रिश्तों की गहराई को नजर-अन्दाज कर दिया जाता है, और उन्हें केवल भोग की वस्तु के रूप में देखा जाता है। इसके विपरीत, सच्चे सम्बन्धों में दीर्घकालिक प्रयास और साझीदार की पूरी समझ की आवश्यकता होती है। लेखक यह भी बताते हैं कि उपभोक्तावाद

केवल व्यक्तिगत क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज के हर पहलू को प्रभावित करता है, जैसे - राजनीति, पहचान, सामाजिक विभाजन, और यहाँ तक कि साझेदारी। उपभोक्तावाद समाज के मुख्य संरचनात्मक तत्वों में बदल गया है, जहाँ उपभोग की प्रक्रिया को समाज की गतिशीलता और व्यक्तिगत पहचान बनाने की भूमिका मिलती है। यह 'उपभोक्तावादी क्रान्ति' के रूप में समाज में बदलाव लाता है, जिससे समाज की संरचना और व्यक्तिगत जीवन के निर्णय प्रभावित होते हैं। इस प्रक्रिया में, व्यक्तिगत इच्छाएँ बाहरी शक्ति के रूप में बदल जाती हैं, और उपभोक्तावाद हर पहलू को नये दृष्टिकोण से आकार देता है।

उपभोक्तावादी समाज में, व्यक्ति को अपनी पहचान और मूल्य को सिद्ध करने के लिए बाजार और उपभोग के माध्यम से अपनी भूमिका निभानी होती है। यहाँ सदस्य की पहचान पूरी तरह से उसकी उपभोक्ता भूमिका से जुड़ी होती है। यह समाज उन सिद्धान्तों का पालन करता है जो उपभोक्ता संस्कृति को बढ़ावा देते हैं और वैकल्पिक सांस्कृतिक विकल्पों को नकारते हैं। एरिक्सन के अनुसार, सूचना के इस समाज में, सार्थक सन्देश और 'बैकग्राउंड' शोर के बीच की रेखा लगभग मिट चुकी है, जिससे उपभोक्ताओं को वे सन्देश मिलते हैं, जिनकी उन्हें जरूरत नहीं होती, बल्कि जो आपूर्तिकर्ता चाहते हैं। इस समाज में व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, और उसकी स्थिति तथा प्रतिष्ठा उपभोक्ता क्रियाओं पर निर्भर करती है। उपभोक्तावादी समाज में यह मान्यता बन चुकी है कि हर व्यक्ति को उपभोक्ता के रूप में अपनी भूमिका निभानी चाहिए, और यही एकमात्र स्वीकृत जीवनशैली बन गई है।

उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभावों को गहराई से उजागर करता है, जिसमें समय, पहचान और सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाये गये हैं। उपभोक्तावादी समाज में व्यक्ति की पहचान और स्वीकृति उपभोक्ता वस्त्रों और प्रतीकों के माध्यम से प्राप्त होती है, जिससे निरन्तर बदलाव और प्रतिस्पर्धा की भावना बनी रहती है। यहाँ, समय को एक 'पॉइंटिलाइज्ड' (बिन्दुवत् रूप में विभाजित) रूप में देखा जाता है, जहाँ अतीत और भविष्य के प्रभावों को नकारते हुए व्यक्ति को केवल वर्तमान में जीने का दबाव होता है। इस संस्कृति में जिम्मेदारी का अहसास घटता जा रहा है, और समाज में पहचान पाने के लिए व्यक्ति को निरन्तर बदलते रूप में ढालने की कोशिश की जाती है। इसके साथ ही इंटरनेट और वर्चुअल स्पेस एक नयी राजनीतिक और सामाजिक मानसिकता को जन्म दे रहे हैं, जो मूल रूप से 'अपॉलिटिकल' है और नागरिकों को केवल सतही राजनीतिक दृष्टिकोण अपनाने का भ्रम देते हैं।

उपभोक्तावाद की आलोचना करते हुए समाज में पहचान की निरन्तर निर्माण प्रक्रिया और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले 'कॉलेटरल डैमेज' (अनजाने में हुई क्षति) पर विचार करता है। उपभोक्तावादी समाज में व्यक्ति को अपनी पहचान बाजार की आवश्यकताओं के अनुसार बनानी पड़ती है, और यह प्रक्रिया कभी भी सन्तुष्टि का अनुभव नहीं कराती। यहाँ पहचान का निर्माण अस्थायी और निरन्तर चलता रहने वाला प्रयास बन जाता है। उपभोक्तावाद

ने प्यार, रिश्तों और मानवीय मूल्यों को भौतिक वस्तुओं में बदल दिया है, जिससे मानव जीवन को एक वस्तु के रूप में देखा जाता है। इसके परिणामस्वरूप, गरीबों को 'नॉन-कन्ज्यूमर्स' (बाजार से बाहर के लोग) के रूप में देखा जाता है और उन्हें समाज से बाहर किया जाता है। उन्हें न केवल आर्थिक रूप से बल्कि नैतिक रूप से भी बहिष्कृत किया जाता है। यह स्थिति उपभोक्तावाद की आलोचना करते हुए यह दर्शाती है कि कैसे समाज में गरीबों को अनदेखा किया जाता है और उन्हें अपवित्र या अपराधी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

उपभोक्तावाद और राजनीतिक निष्क्रियता के बीच सम्बन्ध पर विचार करते हुए लेखक का कहना है कि 'उपभोक्ता सक्रियता' (खरीदारी की आदत) यह दर्शाती है कि लोग पारम्परिक राजनीति से निराश हो चुके हैं और बाजार को अपनी जरूरतों का समाधान मानते हैं। हालाँकि यह सवाल उठता है कि क्या यह सक्रियता सामाजिक एकजुटता के लिए उतनी प्रभावी है जितनी पारम्परिक राजनीतिक सहभागिता थी। अध्ययन से पता चलता है कि लोग राष्ट्रीय मुद्दों में रुचि रखते हैं, लेकिन चुनावी प्रक्रिया में भाग लेने को अप्रासंगिक मानते हैं। उपभोक्तावाद ने नागरिकों को उपभोक्ता बना दिया है, और अब वे अपनी नागरिक भूमिका को छोड़कर केवल उपभोक्ता की तरह जीने लगे हैं, जैसे 'चेक ड्रीम' जैसी फिल्मों में देखा जाता है।

जिग्मंट बाउमैन की कन्ज्यूमिंग लाइफ उपभोक्तावाद के प्रभावों की गहरी आलोचना करती है तथा इसे समाज की अस्थिरता और संकटों का कारण मानती है। बाउमैन के अनुसार, आज के समाज में उपभोक्तावाद ने व्यक्तियों को अपनी पहचान और सामाजिक सम्बन्धों से अधिक वस्तुओं और उनके उपभोग से जोड़ा है, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक साझेदारी कमजोर हो रही है। यह स्थिति 'मौलिक रूप से अस्थिर' और 'अलगाव' की ओर इशारा करती है, जहाँ लोग व्यक्तिगत उपभोग में अधिक लीन होते हैं और लोकतान्त्रिक भागीदारी में उनकी रुचि घटती जाती है। हालाँकि बाउमैन उपभोक्तावाद के नकारात्मक पक्षों पर ज्यादा जोर देते हैं, लेकिन उन्होंने इसके सकारात्मक पहलुओं जैसे सामाजिक आन्दोलनों और वैश्विक समुदायों के विकास पर सीमित चर्चा की है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तिगत एजेंसी और प्रतिरोध के अवसरों की अनदेखी करते हुए उन्होंने उपभोक्तावाद को केवल नकारात्मक रूप में प्रस्तुत किया है, जो इसे एक व्यापक दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता को दर्शाता है।

लेखकों के लिए अनुदेश

मध्य प्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल में समाज विज्ञान से सम्बन्धित सैद्धान्तिक आलेख, अनुभवजन्य शोध आधारित आलेख, टिप्पणियाँ और पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित की जाएँगी। लेखकों से निवेदन है कि अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु प्रेषित करते समय निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखें -

- कृपया अपनी रचना को यूनीकोड फॉन्ट में टंकित कर एमएस-वर्ड फाइल में mpissrhindijournal@gmail.com अथवा mailboxmpissr@gmail.com पर ई-मेल के माध्यम से प्रेषित करें। शोध आलेख की शब्द सीमा 3500 से 5000 के बीच होना चाहिए। शोध आलेख के साथ 100-150 शब्दों में शोध आलेख का सारांश भी अनिवार्य है।
- विशेष परिमाण संख्या जैसे 2 प्रतिशत या 5 किलोमीटर को सूचित करने के अतिरिक्त इकाई अंकों (1-9) को शब्दों में ही लिखें जबकि दहाई एवं उससे अधिक की संख्या को अंकों में लिखें।
- किसी भी वर्तनी के लिए एकरूपता महत्वपूर्ण होती है। सम्पूर्ण रचना में एक ही शब्द को विभिन्न प्रकार से नहीं लिखा जाना चाहिए। इसमें प्रचलन और तकनीकी सुविधा का ध्यान रखा जाना चाहिए।
- रचना में उद्धृत वाक्यांशों को दोहरे उद्धरण चिह्न ("...") के मध्य दें। यदि उद्धृत अंश तीन वाक्यों से अधिक का हो तो उसे अलग पैरा में दें। उद्धृत अंश में लेखन की शैली और वर्तनी में कोई भी परिवर्तन अपनी ओर से न करें।
- सभी टिप्पणियाँ एवं सन्दर्भ शोध आलेख के अंत में दिये जाएँ तथा शोध आलेख में यथास्थान उनका आवश्यक रूप से उल्लेख करें। सन्दर्भ सूची में किसी भी सन्दर्भ का अनुवाद करके न लिखें। सन्दर्भों को उनकी मूल भाषा में ही रहने दें। यदि सन्दर्भ में हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषा का मिश्रण हो तो सन्दर्भ को लिप्यान्तरित कर देवनागरी लिपि में ही लिखें।
- समसामयिक प्रासंगिकता, स्पष्ट एवं तार्किक विश्लेषण, सरल एवं बोधगम्य भाषा, उचित प्रविधि आदि शोध आलेख के प्रकाशन हेतु स्वीकृति के मानदण्ड होंगे। प्राप्त रचनाओं की समीक्षा प्रकाशन से पूर्व विषय विशेषज्ञों द्वारा की जाती है। यदि समीक्षक रचना में संशोधन हेतु अभिमत देते हैं तो रचनाकार को वांछित संशोधन करने होंगे। किसी भी शोध आलेख को स्वीकृत/अस्वीकृत करने का अधिकार सम्पादक का होगा।
- पत्र व्यवहार का पता : सम्पादक, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल, म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, 6, प्रो. रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (म.प्र.)।

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा उच्च शिक्षा मन्त्रालय, मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित स्वायत्त शोध संस्थान है। कार्य एवं स्वरूप की दृष्टि से मध्यप्रदेश में यह अपनी तरह का एकमात्र शोध संस्थान है। समाज विज्ञानों में समकालीन अन्तरशास्त्रीय संदृष्टि को बढ़ावा देते हुए समाज विज्ञान मनीषा का सशक्त संवाहक बनना संस्थान का मूल उद्देश्य है।

अपनी संस्थापना से ही यह संस्थान सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं विकास की विभिन्न समस्याओं, मुद्दों और प्रक्रिया ओं पर अन्तरशास्त्रीय शोध को संचालित और प्रोत्साहित करते हुए सामाजिक, आर्थिक और नीतिगत महत्त्व की शोध परियोजनाओं को क्रियान्वित करता है।

संस्थान की शोध गतिविधियाँ मुख्यतः पंचायत राज एवं ग्रामीण विकास, अनुसूचित जाति एवं जनजाति से सम्बन्धित मुद्दे, विकास एवं संस्थापन, पर्यावरण अध्ययन, सामाजिक न्याय, लोकतन्त्र एवं मानवाधिकार, सूचना तकनीकी तथा समाज, शिक्षा एवं बाल अधिकार एवं नवीन आर्थिक नीतियाँ आदि संकेन्द्रण क्षेत्रों पर केन्द्रित हैं।

परिसंवादों, संगोष्ठियों, कार्यशालाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों आदि अकादमिक अनुष्ठानों का आयोजन, समाज विज्ञानों में अनुसन्धानपरक नवोन्मेष एवं नवाचारों का प्रवर्तन, मन्त्रालयों एवं अन्य सामाजिक अभिकरणों को परामर्श एवं शोधपरक सहयोग प्रदान करना संस्थान की अन्य प्रमुख गतिविधियाँ हैं। संस्थान में एक संवर्द्धनशील पुस्तकालय एवं प्रलेखन केन्द्र है जिसमें समाज विज्ञानों पर पुस्तकें, शोध जर्नल्स और प्रलेख उपलब्ध हैं।

संस्थान शोध कार्यों को अवसरिक पत्रों, विनिबन्धों, शोध-पत्रों एवं पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करता है। इसके अतिरिक्त दो षाण्मासिक शोध जर्नल - मध्यप्रदेश जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़ (अँग्रेजी) एवं मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान जर्नल (हिन्दी) का प्रकाशन भी संस्थान द्वारा किया जाता है।

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के कार्यालय में
पं.क्र. MPHIN/2003/10172 द्वारा पंजीकृत

म.प्र. सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान के लिए
डॉ. यतीन्द्रसिंह सिसोदिया द्वारा
6, रामसखा गौतम मार्ग, भरतपुरी प्रशासनिक प्रक्षेत्र, उज्जैन - 456010 (मध्यप्रदेश) से
प्रकाशित एवं मुद्रित